श्री परमात्मने नम. ।

श्रीमल्लिनाथ पुराण ।



भाषाकारका मंगलाचरण ।

सर्व विघ्नहर्ता प्रभू मल्लिनाथ जिनराज । निज मंगल कारण नमूं धारि माथ पद आज ॥ १ ॥
ज्ञान योग तप लीन नित रहितपरिग्रह धीर । विषयवासनाविमुख गुरु मैटो मम भवपीर ॥ २ ॥
वंदू वाणी भगवती स्याद्वादमय शुद्ध । जा प्रसादतें होत हैं भव्यजीव परिबुद्ध ॥ ३ ॥

ग्रन्थकारका मंगलाचरण ।

नम श्रीमल्लिनाथाय कर्ममल्लविनाशिने । अनन्तमहिमाप्ताय त्रिजगत्स्वामिनेऽनिशं ॥ १ ॥

शेषान् सर्वान् जिनान्वंदे धर्मचक्रप्रवर्तकान् । विश्वभव्यहितोद्युक्तान् पंचकल्याणनायकान् ॥ २ ॥ गुणाष्टकमयान् सिद्धास्त्रैलोक्याग्र-

जिनका जीतना बड़े क्लेशसे हो सकता है ऐसे ज्ञानावरण आदि कर्मरूपी मल्लोंको जड़से नष्ट करनेवाले, अनन्तविज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्त सौख्य और अनन्तदर्शन स्वरूप अनन्त चतुष्टय महिमाके धारक, एवं तीन लोकके स्वामी भगवान मल्लिनाथको मैं ग्रन्थकार (श्रीसकलकीर्ति भट्टारक) सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ भगवान मल्लिनाथसे अन्य जो ऋषभ आदि तीर्थंकर हैं उन्हें भी मैं ग्रन्थकी आदिमें मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं क्योंकि वे समस्त तीर्थंकर भी भगवान मल्लिनाथके ही समान धर्मचक्रके प्रवर्तानेवाले हैं। मोक्षाभिलाषी समस्त जीवोंको हितकारी मार्ग मोक्षमार्गमें लगानेवाले हैं एवं गर्भ जन्म तप ज्ञान और निर्वाण इन पांचों कल्याणोंके नायक हैं ॥ २ ॥ ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि घाति अघाति कर्मोंके नाशसे प्राप्त सम्यक्त्व आदि आठो गुणोंके स्वामी, तीन लोकके अग्रभागमें विराजने-

निवासिनः। ध्येयान् मुन्यादिभव्यौघै स्मरामि हृदये सदा ॥ ३ ॥ आर्हती भारती पूज्या लोकालोकप्रदीपिका। रजोविधूयने नित्यं तनोतु विपुला मति ॥ ४ ॥ आचार्यान पाठकान् साधून् गुरूनाचारतत्परान्। श्रुताब्धीन् शिरसा वदे सर्वांश्च योगसाधकान् ॥ ५ ॥

रत्नत्रय नमस्कृत्य कर्मघ्नं शर्मसागर। रत्नत्रयविधानस्य फलसूचनहेतवे ॥ ६ ॥ मल्लिनाथजिनेन्द्रस्य चरित्रं पावन परं। समासेन प्रवक्ष्यामि स्वान्ययोर्हितसिद्धये ॥ ७ ॥ अथ जवूमति द्वीपे विदेहे पूर्वनामनि। विषय कच्छकावत्यभिख्योऽस्ति धर्मवारिधिः ॥ ८ ॥ यत्र ग्रामाणि खेटानि पत्तनानि पुराणि च। मटवादीनि राजन्ते जिनागारैश्च धार्मिकैः ॥ ६ ॥ यत्रारण्ये वने रम्येऽचले तुंगे फलाकिते। सर्वत्र मुनयो धीरा दृश्यन्ते ध्यानतत्परा. ॥ १० ॥

वाले एवं मोक्षाभिलाषी भव्यजीव सदा जिनकी आनन्दमयी मूर्तिका ध्यान करते हैं उन सिद्ध भगवानको भी मैं अपने हृदयमें स्मरण करता हूं॥ ३ ॥ लोक और अलोकको स्पष्ट रूपसे प्रकाश करनेवाली एवं भगवान अरहंतकी दिव्यध्वनिसे प्रकाशमान भगवती सरस्वतीको भी मैं ग्रन्थकी आदिमें अभिवंदना करता हूं और उससे विनयपूर्वक यह प्रार्थना करता हूं कि वह विघ्नोंके नाश करनेमें सदा मेरी बुद्धिको प्रबल और निर्मल बनावे ॥ ४ ॥ ग्रन्थकी आदिमें आचार्य उपाध्याय और सर्व साधुओंको भी मेरा मस्तक झुकाकर नमस्कार है क्योंकि ये पवित्रात्मा ज्ञानाचार आदि आचारोंके आचरण करनेवाले हैं। आगमके समुद्र हैं और ध्यानके करनेमें प्रवीण हैं ॥ ५ ॥ समस्त कर्मोंको नाश करनेवाले और अनेक प्रकारके कल्याणोंके समुद्र उस सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रयको भी मैं प्रणाम करता हूं और हृदयमें यह पूरी अभिलाषा रखता हूं कि वह कल्याणकारी रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो ॥ ६ ॥ इस प्रकार कल्याणके कर्ता समस्त इष्ट देवोंको भक्तिपूर्वक नमस्कारकर मैं उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथके चरित्रको संक्षेपसे वर्णन करता हूं जो कि अत्यन्त पवित्र है और अपना पराया हित सिद्ध करनेवाला है ।७॥

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें धर्मका समुद्र अर्थात् जहांपर सदा वास्तविक धर्मकी प्रवृत्ति रहती है ऐसा कच्छकावती नामका प्रसिद्ध देश है ॥ ८ ॥ इस कच्छकावती देशके गांव, खेट, पत्तन, पुर, मटम्ब आदिमें जगह जगह जिनमन्दिर शोभायमान हैं एवं मोक्षाभिलाषी धर्मात्मा लोगोंके निवास स्थान बने हुए है। उनसे यह देश अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है ॥ ९ ॥ इसी कच्छकावती देशके महामनोहर अवि-

सख्यातीता जिनाधीशाश्चक्रिणश्चार्धचक्रिण तद्द्विपः कामदेवाश्च जायन्ते सुरपूजिताः ॥ ११ ॥ यत्र प्रवर्तते धर्मो जैनोह्येको दयामय । शाश्वतो यतिभिः श्रावकैश्च सारो न चापरं ॥ १२ ॥ विहरन्ति मुनीशा गणेशा केवलिन सदा । यत्र धर्मोपदेशाय सता न च कुलिगिन ॥ १३ ॥ सर्वत्र जिनचैत्याला विलोक्यन्ते महोन्नता । ग्रामारण्यपुरादौ च नान्यदेवमठा क्वचित् ॥ १४ ॥ यत्र वर्णत्रयोपेता जिनधमपरा. प्रजा । विनीता जिनगुर्वादौ सदाचारा वसत्यहो ॥ १५ ॥ अङ्गपूर्वाणि यत्रोच्चैर्जिनोक्तानि निरत. । श्रूयते च प्रपठ्यते न कुशास्त्राणि सज्जनै. ॥ १६ ॥ यत्रोत्पन्नैरहो स्वर्गो मोक्षश्च यदि साध्यते । तपसा

नाशो ऊंचे और नाना प्रकारके फलोसे शोभायमान जंगल और वनोंमे जगह जगह मुनिराज दीख पड़ते हैं जो कि घोर परीषहोंके सहनेमें परम धीर वीर हैं और सदा ध्यानमें लवलीन हैं ॥ १० ॥ इसी कच्छकावती देशमें असंख्याते भगवान जिनेन्द्र उत्पन्न होते हैं। असख्याते ही चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण और कामदेव उत्पन्न होते हैं जिनकी कि बड़े २ देव पूजा और सत्कार करते हैं ॥ ११ ॥ इस कच्छकावती देशमें केवल एक जैन धर्मको ही प्रवृत्ति रहती है जो धर्म सदा दयास्वरूप है। यति और श्रावकोंकी विद्यमानतासे जो शाश्वत है— सदाकाल विद्यमान रहता है और सारभूत है किन्तु जैनधर्मके सिवाय अन्य किसी धर्मकी उस देशमें प्रवृत्ति नहीं रहती ॥ १२ ॥ इस कच्छकावती देशमें मोक्षाभिलाषी जीवोंको धर्मका उपदेश सुनानेके लिये सदा मुनिगण गणधर और केवलियोंका विहार होता रहता है। कुलिगी—मिथ्यात्वी साधुओका वहांपर विहार नहीं होता ॥ १३ ॥ इस देशमें जहां देखो वहां ग्राम और नगर आदिमें ऊंचे ऊंचे जिनमन्दिर ही दीख पड़ते हैं मिथ्यादृष्टी देवोंके मन्दिर कहीं भी नजर नहीं पड़ते ॥ १४ ॥ इस देशमें भगवान जिनेन्द्रके धर्ममें सदा लवलीन क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तीनों वर्णोंकी प्रजा निवास करती है यह प्रजा भगवान जिनेन्द्र एवं गुरुओंमें सदा विनयालु है और सदा उत्तम आचरणको आचरनेवाली है ॥ १५ ॥ इस देशमें जहां सुनो वहांपर भगवान जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित वारह अङ्ग और चौदह पूर्वही सत्पुरुषोके द्वारा सुननेमें आते और पढ़े जाते हैं मिथ्या शास्त्रोंका वहांपर सुनना और पढ़ना नजर नहीं आता ॥ १६ ॥ विशेष क्या ? इस देशमें उत्पन्न होने वाले महानुभाव, जप, तप, व्रत, और दान

व्रतदानाद्यैस्तत्र का वर्णना परा ॥ १७ ॥ इत्यादि-वर्णनोपेते देशे धर्मकुलालये । वीतशोकाभिधं भाति पुरं देवपुरोपमं ॥ १८ ॥ दीर्घखातिकया तुंग-शालगोपुरतोरणैः । मनोज्ञैर्यद्भाज्जम्बूद्वीपवेद्यब्धिवत्तरां ॥ १९ ॥ पुण्यवद्धामकूटाग्रध्वजहस्तैर्मरुद्धशैः । नाकिनामाह्वयंतीव मुक्तये यद्भुवस्तरां ॥२०॥ केचित्पश्यंति दानाय गृहद्वारं च दानिनः । केचित्प्राप्य महापात्रं सुदानं ददते मुदा ॥ २१ ॥

केचिद्दानजपुण्येन रत्नवृष्टिं भजत्यहो । केचिदप्राप्य सत्पात्र खेदं चापि प्रयात्यहो ॥ २२ ॥ दिव्यरूपाणि युग्मानि भर्तृस्त्रीणा जिनालये । देवानामिव राजते यत्र पूजापराणि च ॥ २३ ॥ तुंगा हैममया यत्र जिनप्रासादपक्तयः । धर्माकरा इवात्यर्थं भ्राजते मणितौरणैः ॥ २४ ॥ मणिबिंबोच्छ्र-

आदिके द्वारा सुलभरूपसे न प्राप्त होनेवाले स्वग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेते हैं तब इससे अधिक उसकी कीर्तिका क्या वर्णन हो सकता है ॥ १७ ॥

इस प्रकारके उत्तम वर्णनके धारक एवं समीचीन धर्म और उमोत्तम कुलोंके स्थान उस कच्छकावती देशमें एक वीतशोका नामकी नगरो है जो कि अपनी शोभासे देवपुरी—स्वर्गके समान जान पड़ती है ॥ १८ ॥ विस्तीर्ण खाइयां मनोहर ऊंचे २ परकोट सदर दरवाजे और तोरणों (वंदनमालाओ) से वह नगर अत्यंत शोभित होता है सो ऐसा जान पड़ता है मानो वेदो और समुद्रसे वेष्टित यह जम्बूद्वीप हो है ॥ १९ ॥ उत्तमोत्तम धनिकोंकी अटारियोंके अग्रभागमें लगीं हुईं और पवनके झकोरोंसे हिलनेवाली जो ध्वजायें वे ही हुए हाथ, उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो उस नगरकी भूमियां देवोंको यह जतलाकर बुला रही है कि भाई देवो। यदि तुम्हें अपने निजस्थान स्वर्गसे मोक्ष नहीं प्राप्त होती है तो तुम यहांसे उसे प्राप्त करो। अतएव वह नगर अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥ २० ॥ उस नगरमें यह बड़ी हो आनन्दकी वात थी कि बहुतसे दानीपुरुष आहारके वेलाके समय मुनियोंको आहारदान देनेकेलिये अपने अपने घरोंके द्वार देखते थे अर्थात् द्वारापेक्षण करते थे और कोई २ मुनिरूप महापात्र—उत्तमपात्रको भक्ति-पूर्वक उत्तमदान देते थे ॥ २१ ॥ किन्ही किन्ही पुण्यात्माओंके घर दानसे जायमान पुण्यसे रत्नोंकी वर्षा होती थी और कोई २ पुरुष सत्पात्रको न पाकर दुःखित हो पश्चात्ताप भी करते थे ॥२२॥ उस वीतशोका नगरमें दिव्यरूपके धारक स्त्री पुरुषोंके जोड़े जिस समयमें जिनमन्दिरोंमें भगवान जिनेन्द्रकी पूजामें संलग्न होते थे उस समय वे देव देविओंके जोड़े सरीखे जान पड़ते थे ॥ २३ ॥ धर्मकी खानियोंके समान उस

जैर्दीप्रै रत्नोपकरणै. परै । गीतैर्नर्तनवाद्यैश्च स्तवै. स्त्रीभिर्नरोत्तमै ॥ २५॥ यत्रेहंते अहो जन्म सुरेशा मुक्तिसिद्धये । पुरे धर्माकरे तत्र वर्णना का परा धना ॥ २६ ॥

इत्यादिवर्णिते तस्मिन् पुरे धर्मैककारणे । नपो वैश्रवणो ह्यासीत्प्रतापी धर्मभूषितः ॥ २७ ॥ अभात्स रूपलावण्यवस्त्रालंकारसद्गुणै । दानशीलव्रताद्यैश्च सुरेश इव नीतिवित् ॥ २८ ॥ प्रजाना क्षेमकर्ता स न्यायमार्गरतो महान् । स्वराज्य पालयत्येव जितारातिर्विचक्षण ॥ २९ ॥ धर्मादर्थस्तथा काम क्रमान्मोक्षश्च धीमता । इति मत्वा स भूनाथो धर्मध्यानपरोऽभवत् ॥ ३० ॥ प्रत्यहं दानपूजादि प्रोषधान् सर्वपर्वसु । श्रावकव्रतसंपूर्ण करोति शीलवान्नृप ॥ ३१ ॥ पुण्योदयेन तस्यासीद्राज्यलक्ष्मी सुखप्रदा । पुण्यकर्मकरा सारा दासीव वशवर्तिनी ॥ ३२ ॥ अथैकदा लसद्भाल भूपालं

नगरकी ऊंची ऊंची और सुवर्णमयी जिनमन्दिरोंकी श्रेणियां मणिमयी तोरणोंसे ऊंचे ऊंचे मणिमयी प्रतिविम्बोंसे, देदीप्यमान रत्नमयी उपकरणोंसे गीत नृत्य वाजे और स्तवोंसे स्त्रियां और उत्तमोत्तम पुरुषोंसे अत्यन्त शोभामान जान पड़ती थी ॥ २४—२५ ॥ विशेष क्या ? धर्मकी खानि स्वरूप उस नगरमें मोक्षकी प्राप्तिकेलिये बड़े २ ऋद्धिके धारक इंद्र भी जन्म धारण करनेकी अभिलाषा करते थे इसलिये इस नगरका जितना भी अधिक वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥ २६ ॥

इस प्रकार उत्तम वर्णनके धारक और धर्मके प्रधान कारण उस वीतशोक नगरमें एक वैश्रवण नामका राजा था जो कि अत्यन्त प्रतापी होनेपर भी परम धर्मात्मा था। कमनीयरूप और लावण्यसे महामनोहर वस्त्र और भूषणोंसे एवं दान शील और व्रत आदिसे वह राजा अत्यन्त शोभायमान था तथा इंद्रके समान परम नीतिवान था। प्रधानरूपसे वह प्रजाओंके कल्याणका करनेवाला था। सदा न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाला था महान् था। समस्त शत्रुओंका विजेता और चतुर था एवं अपने राज्यका सुचारु रूपसे पालन करता था। उस वैश्रवण राजाका यह सदा ध्यान रहता था कि धर्मसे धनकी प्राप्ति होती है। धनसे काम पुरुषार्थ सिद्ध होता है एवं क्रमसे मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धि होती है ऐसा मानकर वह सदा धर्मध्यानमें लीन रहता था। वह शीलवान नरपाल प्रतिदिन दान पूजा आदिको करता था। समस्त अष्टमी और चतुर्दशी पर्वोंमें उपवासोंको आचरता था एवं समस्त श्रावकोंके व्रतोंका वह अच्छी तरह पालन करता था ॥ २७—३१ ॥ पुण्यकर्मके उदयसे राजा वैश्रवणको अत्यन्त सुख देनेवाली राज्यलक्ष्मीकी प्राप्ति थी जो कि

त्वसद.स्थितं । पुष्पहस्तो मुदागत्य वनपालो व्यजिज्ञपत् ॥ ३३ ॥

श्रीचन्दनवने देव ! मनोज्ञे मुनिपुंगव । आजगाम त्रिगुप्तात्मा सुगुप्ताख्योऽवधीक्षण. ॥ ३४ ॥ कृत्स्नसगपरित्यक्तः मयुक्तो गुणसम्पदा । भव्यसंबोधनायैव ध्यानाध्ययनतत्पर ॥ ३५ ॥ नत पीठात्समुत्थाय परमानन्दनिर्भर । गत्वा सप्तपदान्युच्चैस्ता दिश प्रणनाम स ॥ ३६ ॥ दापयित्वा महानन्दभेरीं स स्वजनैर्वृत । धर्मसिद्ध्यै मुने पादौ नंतुं तद्वनमासदत् ॥ ३७ ॥ शिलापट्टे निविष्टस्य मुनींद्रस्य हितात्मन । नि सगस्य गुणाब्धेर्महत क्रमसरोरुहौ ॥ ३८ ॥

पवित्र कामोंमें खच हानेवाली थी सारभूत थी और दासीके समान राजा वैश्रवणकी सदा आज्ञाकारिणी थी ॥३२॥

कदाचित् देदीप्यमान मुकुटसे जिनका मस्तक चमचमा रहा था ऐसे राजा वैश्रवण अपनी राजसभामें राजसिंहासनपर विराजमान थे कि उसी समय पुष्पोंको हाथमें लेकर अत्यन्त हर्षका भरा वनपाल राजसभामें आया और इसप्रकार निवेदन करने लगा ॥ ३३ ॥

हे देव । महामनोहर चन्दनवनमें मुनिराज सुगुप्त आकर विराजे हैं वे मुनिराज साधारण मुनिराज नहीं समस्त मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं । मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीनों गुप्तियोंसे उनकी आत्मा विभूपित है । अवधिज्ञानरूप नेत्रके धारक हैं । समस्त परिग्रहके त्यागी हैं । गुणरूप सम्पत्तिके धारक हैं तथा "मोक्ष प्राप्त करनेवाले भव्यप्राणी समीचीन ज्ञान प्राप्त करें" अर्थात्—संसारमें जो पदार्थ सारभूत है उसकी ओर झुकें, यही समझानेके लिए वे विशेषरूपसे ध्यान और अध्ययनमें अत्यन्त लीन हैं ॥ ३४—३५ ॥ वनपालके मुखसे परमानन्द देनेवाला समाचार सुन राजा वैश्रवणकी आत्मा मारे आनन्दके गद्गद् होगई । वह आनन्दसे पुलकित हो शीघ्र ही राजसिंहासनसे उठा । जिस पवित्र दिशाके अन्दर मुनिराज सुगुप्त विराजमान थे, सात पैड़ उस दिशाकी ओर गया और बड़ी भक्तिके साथ उस दिशाको साष्टांग नमस्कार किया ॥ ३६ ॥ मुनिराजके दर्शनोंकी शीघ्र उत्कंठासे उसने शीघ्र ही नगरमें आनन्द भेरी दिवाई । अपने सर्व कुटुम्बी जन भेले किये एवं धर्मोपदेशकी अभिलाषासे मुनिराज सुगुप्तके पूजनार्थ वह शीघ्र ही चन्दन वनमें पहुंच गया ॥ ३७ ॥ हितकारी मार्गके उपदेश देनेवाले, समस्त परिग्रहके त्यागी, गुणोंके

त्रि परीत्य प्रपूज्यातिभक्त्या दिव्यार्च्चनोत्करैः । सार्धं स्वपरिवारेण ननाम शिरसा नृप ॥ ३६ ॥ विश्वशर्मैकनीराजन् ! स धर्मवृद्धिरस्तु ते । मुक्तिश्रीदायिनीत्याशीवादमस्मै ददौ मुनिः ॥ ४६ ॥ श्रुत्वा तद्वचनं राजा धर्मवृद्धिप्रसूचकं । जिज्ञासुर्धर्मयाथात्म्य नत्वाऽवोचन्मुनिं प्रति ॥ ४१ ॥ भगवन् ! कीदृशो धर्म केन साध्योऽस्य किं फलं । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भवत श्रीमुखादहं ॥ ४५ ॥ यथा नैश तमोजातु विना सौर्यं न नश्यति । तथा भवद्वचोभानुं विना मे धर्मसंशय ॥ ४३ ॥

ततो जगौ मुनीन्द्रोऽसौ तदभिप्रेतसिद्धये । एकाग्रचेतसा धीमन् ! कथ्यमान नृप शृणु ॥ ४४ ॥ धरत्यपारससारदु खादुद्धृत्य योगिनः ।

समुद्र और पूज्य मुनिराज सुगुप्त एक विस्तीर्ण शिला पर विराजमान थे । राजा वैश्रवण शीघ्र ही उनके पास पहुंचा । तीन प्रदक्षिणा दीं । अपने परिवारके साथ उत्तमोत्तम सामग्रीसे मुनिराजके चरण कमलोंको भक्तिपूर्वक पूजा की एवं पूजाके अन्तमें उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ ३८—३६ ॥ मुनिराज लौकिक शिष्टाचारके अत्यन्त जानकार थे इसलिये उन्होंने—हे समस्त कल्याण-के स्थान राजन् ! मोक्षलक्ष्मीको प्रदान करनेवाली, तुम्हारी निरन्तर धर्मवृद्धि हो, यह आशीर्वाद दिया । ॥ ४० ॥ राजा वैश्रवणको इसप्रकार अपनेलिये धर्मवृद्धिका सूचक मुनिराजका वचन सुनकर यथार्थ धर्मके जाननेकी इच्छा प्रगट होगई इसलिये प्रणामपूर्वक उसने मुनिराजसे यह निवेदन किया ॥ ४१ ॥

भगवन् ! आपने जो मुझे धर्म वृद्धिस्वरूप आशीर्वाद दिया है मैं नहीं समझता कि वह धर्म क्या है, कौन उसे प्राप्त कर सकता है और क्या उसका फल है ? इसलिये आपके ही श्रीमुखसे मुझे उस धर्मकी प्राप्तिके उपायोंकी और उसके फलके जाननेकी इच्छा हुई है ॥ ४२ ॥ कृपानाथ ! जिसप्रकार रात्रिका प्रबल अंधकार विना सूर्यके प्रकाशके नष्ट नहीं होता उसीप्रकार मुझे भी धर्मके अन्दर जो संशय है अज्ञान अन्धकार है, वह भी आपके वचनरूपी सूर्यके विना मिट नहीं सकता ॥ ४३ ॥ राजा वैश्रवणकी इसप्रकार उत्कट धर्मजिज्ञासा सुन मुनिराजने कहा—राजन् ! तुम्हारे अभीष्ट पदार्थकी सिद्धि हो इसलिये मैं संक्षेपसे धर्मका व्याख्यान करता हूं तुम चित्तको एकाग्र कर ध्यानपूर्वक सुनो—

यह संसार अपार है और इसमें अगणित अनेक प्रकारका दुःख है । इस अगणित संसारके दुःखसे छुटाकर जो योगियोंको अनन्त सुख स्वरूप मोक्षमें लेजाकर रक्खे अर्थात् परमानन्दमय सुखका रसास्वा-

मोक्षेऽनन्तसुखे राजंस्तं धर्मं विद्धि तावत' ॥ ४५ ॥ नेन धर्मेण जायन्ते विविधा भोगसंपद' । चक्रवर्त्यादिसंसेव्या अत्रैवाद्भुतसौख्यदाः ॥ ४६ ॥ परत्रेंद्रपदं दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतं । अहमिंद्रपदं चान्यदुर्लभं लभ्यते वृषात् ॥ ४७ ॥ धर्मेण धार्मिका. सर्वाभ्युदयादिपरम्परा । प्राप्य लोकत्रये याति ह्यनन्तसुखदं शिवं ॥ ४८ ॥

सम्यक्त्वज्ञानचारित्रत्रयेण साध्यतेऽत्र स । व्यवहाराभिधेनैव निश्चयेन च संयतै. ॥ ४९ ॥ श्रद्धानं सप्ततत्वाना जिनतद्वाक्ययोगिन' ।

दन करावे उसीको हे राजन्! वास्तविक धर्म कहा गया है ॥ ४४—४५ ॥ इस धर्मकी कृपासे जिनकी सेवा करनेमें वड़े वड़े चक्रवर्ती आदि भी खड़े रहते हैं और जो इसी संसारमें आश्चर्यकारी उत्तमोत्तम सुखोंको प्रदान करते हैं ऐसे उत्तमोत्तम भोग और भांति भांतिकी संपदायें प्राप्त होती हैं परभवमें जिसे समस्त देव मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं और जो दिव्यपद माना जाता है ऐसा वह इन्द्रपद भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होता है एवं अहमिंद्र पद भी जो अन्यदुर्लभ है—दूसरे उपायसे नहीं प्राप्त किया जा सकता वह भी इस पवित्र धर्मकी कृपासे सुलभरूपसे प्राप्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ धर्मात्मा लोग धर्मके द्वारा तीनों लोकके समस्त ऐश्वर्योंको पाकर परम्परासे मोक्षको प्राप्त करते हैं जिसमें कि अविनाशी सुखकी प्राप्ति होती है। व्यवहार और निश्चयके भेदसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र दो दो प्रकारके है। गृहस्थोंके व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि होते हैं और निश्चय सम्यदग्दर्शन आदि संयमी मुनियोंके ही होते हैं। जिस धर्मका ऊपर उल्लेख किया गया है वह धर्म व्यवहार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे भी प्राप्त होता है और संयमी पुरुषोंको निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे प्राप्त होता है अर्थात् व्यवहार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी धर्म माना जाता है और निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी धम माना जाता है ॥ ४८—४९ ॥ व्यवहार सम्यग्दर्शनादिका स्वरूप इसप्रकार है:—

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वोंका, भगवान जिनेन्द्रका उनके आगमका और उत्तमतपके भंडार गुरुओंका जो यथार्थरूपसे श्रद्धान करना है उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन माना है

निस्संदेहं बुधा: प्राहुर्व्यवहाराख्यदर्शनं ॥ ५० ॥ तत्राद्यं त्यक्तसंदेहमंगं निःशंकिताभिधं । भोगाकांक्षादिनिःक्रांतं निःकांक्षितांगमेव हि ॥ ५१॥ मुनिकाये घृणाभावमंगनिर्विचिकित्सितं । मूढत्वभावलोकाचारहीनोऽमूढताभिधं ॥ ५२ ॥ सन्मार्गागतदोषस्याच्छादनं ह्युपगूहनं । धर्मादिस्खलतां स्थापनं स्थितीकरणं गिरा ॥ ५३ ॥ सधर्माणि महास्नेहंवात्सल्यांगं सुनिर्मलं । जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशनं प्रभावना ॥ ५४ ॥

इस सम्यग्दर्शनके निःशंकितादि आठ अंग हैं और उनका स्वरूप यह है—जिनवचनमें किसी प्रकारकी शंका न करना निःशंकित अंग है। भोगोंके अन्दर आकांक्षा न रखना निःकांक्षित अंग है। मुनि आदिके शरीरमें रोगादिके कारण दुर्गंधि उत्पन्न हो जानेपर भी किसी प्रकारकी घृणाका न करना निर्विचिकित्सित अङ्ग है। लोकाचारके अन्दर जो भी मिथ्यादृष्टियोंके साथ मूढ़ताका व्यवहार है उसका न होना अमूढ़दृष्टि नामका अंग है। असमर्थ अज्ञानी मनुष्य भगवान जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित सन्मार्गमें यदि किसी प्रकारके दोष लगावें तो उन दोषोंको आच्छादित कर देना—ढक देना, उपगूहन अङ्ग है। किसी कारणवश कोई धर्मात्मा धर्मसे चलायमान होजाय तो उन्हें कोमल वाणीसे समझा बुझाकर वा अन्य किसी उपायसे पुनः ज्योंका त्यों धर्ममें स्थिर कर देना स्थितीकरण अंग है। जैनधर्मके धारकोंमें अत्यन्त प्रेमका रखना वात्सल्य अंग है और किसी भी उत्तम उपायसे भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रगट करना आठवां अंग प्रभावना कहा जाता है ॥ ५०—५४ ॥ भगवान समन्त भद्राचार्यने इन अंगोंका स्वरूप इसप्रकार कहा है—

"भगवान जिनेन्द्रने वस्तुका जो स्वरूप कहा है वह वही है और उसी प्रकारका है अन्य नहीं है और न अन्य प्रकारका है इसप्रकार निश्चल तीक्ष्ण खड्गकी धाराके समान जो सन्मार्ग—श्रेष्ठमार्गमें संशयरहित निश्चलरूपसे रुचिका होना है वह सम्यग्दर्शनका पहिला अङ्ग निःशंकित नामका है। कर्मोंकी क्षायोपशमिक आदि अवस्थाओंके आधीन होनेके कारण जो सुख कर्माधीन है, विनाशीक है और सदा जिसका

१ इदमेवेदृशमेव तावं नान्यन्न चान्यथा। इत्यकपायसाभोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचि ॥ ११ ॥ कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरंतरितोदये। पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ॥ १२ ॥ स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते। निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥ १३ ॥ कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः। असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥१४॥

उदय दुःखसे मिश्रित है ऐसे पापके कारण सुखमें जो किसी प्रकारके विश्वासका न रखना है अर्थात् .ऐहिक विषयवासना जनित सुखमें जो किसी प्रकार लालसा नहीं रखना है वह दूसरा निःकांक्षित अंग है। रक्त मांस आदि निंदित धातु उपधातुओंका स्थान होनेसे स्वभावसे अपवित्र भी रत्नत्रय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रसे पवित्र अर्थात स्वभावसे निंदित भी सम्यग्दर्शन् आदिसे पवित्र मुनियोंके शरीरमें किसी प्रकारकी घृणा न कर जो उनके गुणोंमें प्रीति करना है वह तीसरा निर्विचिकित्सत अंग है। मिथ्यामार्ग दुःखोंका देनेवाला है तथा उसके अनुगामी किसी प्रकारके उत्तम मार्गपर चलनेवाले नहीं इसलिये जब कभी उस मिथ्यामार्ग और मिथ्यामार्गपर चलनेवालोंकी प्रशंसाका अवसर प्राप्त हो उस समय अपनी ओरसे किसी प्रकारसे सम्मति नहीं देना न सम्बन्ध रखना और न उनके चकमामें आकर किसी प्रकारकी प्रशंसा करना चौथा अमूढदृष्टि अंग है। यदपि भगवान जिनेंद्रद्वारा वताया गया मार्ग स्वयं शुद्ध है तथापि अत्यन्त कठिन होनेसे धारण न कर सकनेके कारण यदि कोई अज्ञानी और असमर्थ पुरुष उसकी निंदा कर बैठै तो किसी भी उपायसे उस निन्दाको दूर करना—निन्दा न होने देना, पांचवा उपगूहन अंग है किसी भी तीव्र दुःख आदि कारणोंसे धर्मात्मा मनुष्योंकी परिणति सम्यग्दर्शन वा सम्यक्चारित्रसे चल विचल हो उठी हो और वे उनसे विमुख रहना चाहते हों तो वास्तविक जैन शास्त्रके ज्ञानियोंका जो फिरसे उन धर्मात्माओंको सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्रके अन्दर दृढ कर देना है वह छठा स्थितीकरण अंग है। अपने साधर्मी भाइयोंका जो हृदयमें उत्तम भाव रखकर निश्चलरूपसे यथायोग्य आदर सत्कार करना है वह सातवां वात्सल्य अंग है तथा संसारमें जो वहुलरूपसे अज्ञान अन्धकार फैल रहा है उसे यथायोग्य किसी न किसी उपायसे दूरकर जो भगवान जिनेंद्रके शासनका माहात्म्य प्रगट करना है वह

स्वय शुद्धस्य मार्गस्य वालाशक्तजनाश्रया। वाच्यता यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहन ॥१५॥ दर्शनाच्चरणाद्वापि चलता धर्मवत्सलै। प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञै स्थितीकरणमुच्यते॥ १६॥ स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथापेतकैतवा। प्रतिपत्तिर्यथायोग्य वात्सल्यमभिलप्यते॥ १७॥ अज्ञानतिमिरव्याप्ति-मपाकृत्य यथायथ। जिनशासनमाहात्म्यप्रकाश स्यात्प्रभावना॥ १८॥

एतैः सारैः पराङ्गैः सबलीभूतदर्शनं । इति कर्मारिसन्तान यथा भूपो बलान्वित ॥ ५५ ॥ ज्ञानचारित्रयोर्मूलं दर्शनं भाषितं जिनैः । सोपानं प्रथम
मुक्तिधाम्नो बीज वृषस्य च ॥ ५६ ॥ मुक्तिमार्गस्थमेवाह त मन्ये पुरुषोत्तम । भोक्तार त्रिजगत्लक्ष्म्या स्वीकृत येन दर्शनं ॥ ५७ ॥ महाधनी स एवात्र
मतो दक्षै परत्र च । अनर्घ्यदृष्टिसद्रत्न हृदि यस्य विराजते ॥ ५८ ॥ केवल धनमत्रैव सुखे दु ख ददात्यहो । सम्यक्चिंतामणिर्विश्वसुख लोकत्रये
सता ॥ ५९ ॥

प्रभावना अंग कहा जाता है । इन आठ अंगोंके पालक अंजन चोर आदि महापुरुषोंने अनुपम फल प्राप्त
किया है और इन अंगोंका माहात्म्य वर्णन करते करते यहां तक कहा गया है कि जिसप्रकार एक भी
अक्षरको कमी रखनेवाला मंत्र विषकी वेदनाको दूर नही कर सकता उस प्रकार इन आठों अंगोंमें एक
भी अङ्गसे रहित सम्यग्दर्शन भो जन्मकी संततिको नष्ट नहीं कर सकता ।”

ग्रन्थकार सम्यग्दर्शनकी महिमा दिखाते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार बलवानराजा शत्रुओंके समूहको
भी देखते २ ही तितर बितरकर नष्ट कर देता है उसप्रकार सारभूत और उत्कृष्ट जिन आठ अंगोंका
ऊपर वर्णन किया गया है उनसे युक्त सम्यग्दर्शन जिस समय बलवान हो जाता है उस समय वह क्षण
भरमें वह कर्मरूप वैरियोंको जड़से उखाड़कर दूर फैंक देता है ॥ ५५ ॥ भगवान जिनेन्द्रने सम्यग्ज्ञान और
सम्यक्चारित्रका मूल कारण सम्यग्दर्शन ही कहा जाता है क्योंकि विना सम्यग्दर्शनके वे मिथ्याज्ञान और
मिथ्याचारित्र माने जाते हैं तथा सम्यग्दर्शनको ही मोक्षरूपी अनुपम महलकी पहिली सीढ़ी और धर्मका
बीज बतलाया है । ग्रन्थकार सम्यग्दर्शनके लिए यहां तक अपने पवित्र भाव प्रगट करते हैं कि जिस महा-
नुभाव पुरुषने सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया है वही पुरुष मोक्षमार्गमें स्थित है और वही तीन लोककी लक्ष्मी
का भोगनेवाला है ऐसा मैं मानता हूं तथा जिस महापुरुषके हृदयमें अमूल्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्न विराज-
मान है वही महानुभाव इसलोक और परलोकमें विद्वानोंकी दृष्टिमें महा धनवान है। उससे बढकर अन्य
कोई धनवान नहीं ॥ ५६—५८ ॥ धन तो केवल इसी लोकमें सुख और दु,खका देनेवाला है परन्तु सम्य-
ग्दर्शनरूपी चिंतामणि रत्न ऐसा है जिससे तीनों लोकमें सुख ही सुख मिलता है । सम्यग्दर्शनसे भिन्न न

'सम्यक्त्वान्नापरो बन्धुः स्वामी श्रद्धितंकरः। स्वर्गमुक्तिकरः पुंसां पापघ्नश्चैव वृषप्रद ॥ ६० ॥ मत्वेत्यादौ तदादेयं मुक्तिरामावशीकरं । हत्वा मिथ्यारिसंतानं तीर्थेशादिविभूतिदं ॥ ६१ ॥

याथातथ्यपरिज्ञान तत्त्वार्थागमयोगिना । देवादेव च तज्ज्ञानं व्यवहारसमाह्वय ॥ ६२ ॥ व्यजनोर्जितनामा स शुद्धाक्षरनिरूपकः । द्वितीयोऽ-

तो कोई संसारमें बन्धु है और न सदा हित करनेवाला स्वामी है क्योंकि यह सम्यग्दर्शन जीवोंको स्वर्ग और मोक्षके सुखोंका प्रदान करनेवाला है समस्त पापोंका जड़से नाश करनेवाला और धर्मको प्राप्त करानेवाला है ॥ ५९—६० ॥ इसलिये ग्रन्थकार इस बातपर जोर देते हैं कि जीवोंको चाहिये कि ऐसे परम उपकारी और सर्वदा हितकारी सम्यग्दर्शनकी सबसे पहिले प्राप्ति करें क्योंकि इस सम्यग्दर्शनकी सामर्थसे मुक्तिरूपी लक्ष्मी वश हो जाती है तथा मिथ्यात्वकी संतानको जड़से उखाड़कर यही सम्यग्दर्शन तीर्थंकर आदिकी अनुपम विभूतिको प्रदान करता है ॥

जिस ज्ञानके द्वारा जीव आदि पदार्थ आगम और गुरुओंका यथार्थ रूपसे जानना होता है तथा यह देव है और यह कुदेव है इस बातकी भी अच्छी तरह पहिचान होती है वह व्यवहार नामका सम्यग्ज्ञान है तथा *व्यंजनोर्जित १ अर्थसमग्र २ शब्दार्थोभयपूर्ण ३ कालाध्ययन ४ उपध्यानसमृद्धक ५ विनय ६ गुर्वाद्यनपह्नव ७ और बहुमानसमृद्धक ८ ये आठ प्रकारके आचार माने हैं। जहांपर शुद्ध अक्षरोंका निरूपण वह व्यंजनोर्जित नामका आचार माना है। जहांपर शुद्ध अर्थका प्रतिपादन हो वह अर्थसमग्र नामका आचार है जहांपर शब्द और अर्थ दोनोंका सूचन हो वह शब्दार्थोभयपूर्ण नामका आचार है। जहांपर समस्त काल अध्ययनकी मनाई हो, अर्थात्—जहांपर नियत समयमें अध्ययनका प्रतिपादन हो वह कालाध्ययन नामका आचार है। जहांपर तप आचरणके साथ साथ अध्ययनका विधान हो वह उपाध्यानसमृद्धक नामका आचार है। जहांपर विनयपूर्वक पाठका पढ़ना हो वह विनय नामका आचार है। जहांपर अपने गुरु आदिकी

*—सम्यग्ज्ञान पूजामें इन आठों आचारोंका भिन्न २ रूपसे अर्थ कहा गया है वर्तमानमें यह पूजा प्रचलित है इसलिये यहा वह उद्धृत नहीं की गई है।

र्थसमग्राख्य शुद्धार्थप्रतिपादक ॥ ६३ ॥ शब्दार्थोभयपूर्णाख्यः शब्दार्थोभयसूचक. । कालाध्ययनसञ्ज्ञोऽखिलकालाध्ययनातिग ॥ ६४ ॥ पठनं तपसा यत्स उपाध्यानसमृद्धक· । विनयेनात्र य. पाठो विनयो मुद्रितो हि स ॥६५॥ ख्यापनं य स्वगुर्वादे स गुर्वाद्यनपह्नव । वहुमानसमृद्धाख्यो नुतिपूजा-दिसयुत ॥ ६६ ॥ एतैश्चाष्टविधाचारैर्यज्ज्ञाना पठ्यते वुधै । ज्ञानाचार स निर्दिष्टो विश्वदोप शिवप्रद ॥ ६७ ॥ ज्ञानेन ज्ञायते विश्व सर्वं तत्त्व हिताहित । हेयाहेयौ च वंधो मोक्षो धर्मो दुरित परं ॥ ६८ ॥ कृत्याकृत्यं स्वरूपञ्च गुरुदेवश्रुतात्मनां । पात्रापात्रादिसद्दान कुदान स्वचिदात्मक ॥ ६९ ॥ ज्ञान नेत्रं जिनैः प्रोक्त लोकालोकविलोकने । वाह्याभ्यन्तरतत्त्वादौ तद्धीनोऽत्राध एव हि ॥ ७० ॥ ज्ञानजाल पर ज्ञेय पचाक्षमत्स्यवधने । ज्ञानसिंहो भवत्येव कामदंतिविघातने ॥ ७१ ॥ ज्ञानपाशो दृढो नृणां मनोमर्कटरुन्धने । ज्ञान-

कीर्तिका गान किया जाय वह गुर्वाद्यनपह्नव नामका आचार है और जहांपर गुरु आदिको स्तुति और पूजा आदिका समारोह हो वह वहुमानसमृद्धक नामका आठवां आचार भेद है । विद्वानोंके द्वारा इन आठ प्रकारके आचारोंके साथ जो ज्ञान पढा जाय वह ज्ञानाचार कहा जाता है यह ज्ञानाचार समस्त संसारका प्रकाश करनेवाला दीपक है और मोक्षका प्रदान करनेवाला है ॥ ६२—६७ ॥ इस सम्यग्ज्ञानके द्वारा ही समस्त संसारका ज्ञान होता है । कौन तत्व हितकारी है और कौन अहितकारी है यह भी पता इसी ज्ञानसे लगता है । यह पदार्थ त्यागने योग्य है और यह पदार्थ नही त्यागने योग्य है यह वात भी ज्ञान ही वतलाता है तथा यह वन्ध तत्त्व है यह मोक्ष तत्त्व है यह धर्म है यह पाप है यह कृत्य है यह अकृत्य है । देव गुरु और शास्त्रका स्वरूप यह है । पात्रको दान देना सम्यग्ज्ञान कहा जाता और कुपात्रको दान देना कुदान कहलाता है तथा आत्माका स्वरूप चैतन्य है यह सव वात भी सम्यग्ज्ञानके द्वारा ही प्रगट होती है ॥ ६८—६९ ॥ भगवान जिनेन्द्रने लोक और अलोकके देखनेमें और वाह्य अन्तरंग तत्वोंके परखनेके लिये ज्ञानको ही नेत्र कहा है जिसके यह ज्ञानरूपी नेत्र नहीं है वह इस संसारमें सर्वथा अन्धा ही है—केवल आंखोंके रहते वह सूझता नहीं कहा जा सकता ॥ ७० ॥ मछलियोंके वांधनेकेलिए जिसप्रकार जाल रहता है उसीप्रकार स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियां मछलियां हैं और उनके वांधनेकेलिए यह सम्यग्ज्ञान जाल है अर्थात् पांचों इन्द्रियोंका दमन सिवाय सम्यग्ज्ञानके दूसरेसे नहीं हो सकता तथा जिसप्रकार हाथियोंके विघात करनेके लिए सिंह समर्थ होता है उसीप्रकार कामरूपी मदोन्मत्त हाथीको सर्वथा नष्ट

मादित्य एवाखिलाज्ञानध्वान्तनाशने ॥ ७२ ॥

यत्कर्म भुज्यते विद्भिरज्ञैस्तच्च शुभाशुभं । वध्यते कर्मणाज्ञानी विद स्यात् कर्मनिर्जरा ॥ ७३ ॥ यत्कर्म क्षपयत्यज्ञस्तपसा भवकोटिभि । ज्ञानी तच्च क्षणार्धेन त्रिगुप्तात्मा स संवरः ॥ ७४ ॥ ज्ञानमन्त्रसमाकृष्टा ददात्यालिंगन सता । स्वयमागत्य मुक्तिस्त्री का कथा देवयोषिता ॥ ७५ ॥ मत्वेवं ज्ञानमाराध्यं प्रत्यहं जिनभाषितं । निःप्रमादेन यन्त्रेण विनयादिमुमुक्षुभि ॥ ७६ ॥ हिंसादिकृत्स्नसावद्य मनोवाक्कायकर्मभिः । त्यज्यते यत्सुचारित्रं व्यवहाराख्यमंजसा ॥ ७७ ॥

करनेवाला यह सम्यग्ज्ञान ही बलवान सिंह है ॥ ७१ ॥ यह संसारी जीवोंका मन वंदरके समान अत्यन्त चंचल है अर्थात् वंदरकी जिसप्रकार प्रतिक्षण क्रिया होती रहती है उसीप्रकार इस मनकी भी प्रतिक्षण क्रिया होती रहती है और उससे निरन्तर कर्मबंध होता रहता है उस मनरूपी वंदरके बांधनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान पास है तथा जिसप्रकार सूर्य समस्त अन्धकारको नष्ट कर देता है उसीप्रकार समस्त अज्ञान-रूप अन्धकारको नष्ट करनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान भी प्रखर सूर्य है ॥ ७२ ॥ मूलमें शुभ और अशुभके भेदसे कर्म दो प्रकारका माना है उसके फलका भोग ज्ञानी भी करते हैं और अज्ञानी भी करते हैं परन्तु आश्चर्य इस बातका है कि समानरूपसे भोग करनेपर भी अज्ञानीके तो कर्मोंका बंध होता है और ज्ञानी-के कर्मोंकी निर्जरा होती है तथा और भी विलक्षण बात यह है कि तीव्र तप तपनेपर भी जिस कर्मको अज्ञानी जीव करोड़ों भवमें खपा सकता है उसे मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिरूप तीनों गुप्तियोंका धारक एवं संवरसे भूषित ज्ञानी जीव आधे ही क्षणमें मूलसे उखाड़कर फैंक देता है ॥ ७३—७४ ॥ ग्रन्थ-कार सम्यग्ज्ञानकी सर्वोच्च प्रशंसा करते हुये कहते हैं—कि यह सम्यग्ज्ञान ऐसा अनुपम मंत्र है कि इसके द्वारा खींची गई मोक्षस्त्री भी आपसे आप आकर प्राप्त हो जाती है फिर अन्य देवांगनाओंकी प्राप्ति हो जाना यह तो बहुत ही सुलभ बात है इसलिये सम्यग्ज्ञान तत्व हमारा परम कल्याणकारी है ऐसा अच्छीत-रह जानकर जो महानुभाव मुमुक्षु हैं—मोक्ष प्राप्त करनेकी पूरी पूरी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे निःप्रमादरूप यंत्रसे अर्थात् किसी प्रकारका मनमें प्रमाद न रखकर भगवान जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित विनय आदि रूप ज्ञानका प्रतिदिन आराधन करें, कभी भी उसे चित्त से न विसारें ॥ ७६ ॥

विश्वाङ्गिरक्षकं ह्यायमहिंसाख्यमहाव्रत। निवृत्तिरनृताद्देर्यात तत्सत्याख्यमहाव्रतं॥७८॥ विरतिर्यत्रचौर्यादेस्तदस्तेयमहाव्रत। सर्वनारीनिराकांक्ष ब्रह्मचर्यमहाव्रतं॥७९॥ सर्वसंगपरित्यागमाकिंचन्यमहाव्रतं। विश्वसंकल्पहीनाद्याऽत्र मनोगुप्तिरद्भुता॥८०॥ शश्वन्मौनकरा सारा वाग्गुप्ति स वरप्रदा। शरीरविक्रियाहीना कायगुप्तिरर्थांतिका॥८१॥ पथान्वेषणसंजाता ह्यीर्यासमितिरद्भुता। निरवद्यगिरोद्भूना भाषा समितिरेवहि॥८२॥ एषनासमिति सर्वकृताद्याहारवर्जिता। अन्तरायातिगा षट्चत्वारिंशद्दोषनिर्गता॥८३॥ क्रियते यच्छु भादाननिक्षेप प्रतिलेख्य सा। दयया दाननिक्षेपणाख्या समितिरंजसा॥८४॥ निरीक्ष्य नयनाभ्या यन्मलमूत्रादिकोज्झन। विधी-

मन वचन कायकी क्रियाओंके द्वारा जो हिंसादि समस्त पापोंका त्याग कर देना है वह व्यवहार चारित्र कहा जाता है। हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह ये पांच पाप है और इन पांचों पापोंका त्याग अहिंसा आदि व्रत कहे जाते हैं। उन अहिंसा आदि व्रतोंका स्वरूप इसप्रकार है—

समस्त जीवोंकी रक्षा करना अहिंसा महाव्रत कहा जाता है। झूठ आदिका त्याग करना सत्यमहाव्रत है। चोरी आदिका सर्वथा त्याग अचौर्यव्रत है। स्वस्त्री परस्त्री आदि समस्त स्त्रियोंका सर्वथा त्याग करदेना ब्रह्मचर्य महाव्रत है और वाह्य अभ्यंतर समस्त प्रकारके परिग्रहका सर्वथा नाश कर देना आकिंचन्य—निष्परिग्रह महाव्रत हैं। गुप्तिका अर्थ रक्षा करना है और वह मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिके भेदसे तीन प्रकारकी है। किसी भी पदार्थमें अच्छे बुरे संकल्पोंका होना मनका विषय है जहांपर समस्त संकल्प विकल्पोंका त्याग हो वह मनोगुप्ति है। सदा मौन रखना वचनगुप्ति है इसको पालन करनेसे संवरकी प्राप्ति होती है तथा शरीरकी समस्त क्रियाओंका अभाव हो जाना अन्तकी कायगुप्ति है॥ ७७—८१॥ जूरा प्रमाण जमीनको शोधकर चलना ईर्यासमिति है निर्दोष हितकारी और परमित वचन वोलना भाषासमिति है। जहांपर कृत कारित और अनुमोदनासे किए गए आहारका त्याग है आहारमें आनेवाले अन्तरायोंका टालना है और उद्गम आदि छयालीस ४६ दोषोंका रहितपना है वह एषणा समिति है। पुस्तक पीछी कमंडलु आदिका दयापूर्वक अच्छीतरह देख भालकर ग्रहण करना और रखना आदान निक्षेपण समिति है और नेत्रोंसे अच्छीतरह देख भालकर जमीनपर मल मूत्र आदिका क्षेपण करना प्रतिष्ठापन नामकी

यते प्रतिष्ठापनाख्या सा समितिर्वरा । ८५ ।। त्रयोदशविधं होदं चारित्रं भुक्तिमुक्तिदं । महाधर्माकरं निश्चयरत्नत्रयकारणं ॥ ८६ ॥ सयमेन विनोत्कृष्टो (ष्टे) सम्यग्ज्ञानौ [ने] क्षमो [मे] सतां । प्रदातुं नैव मुक्तिश्रीं कथं न श्लाघ्यतेऽत्र स. ॥ ८७ ॥ वरं मुहूर्तमेकं हि जीवितं चारणान्वित । तद्धीनं च वृथा वर्षकोटीकोट्यादिजीवित ॥ ८८ ॥ दृढ़व्रतात्मनां कर्म प्रणश्यति पुरातनं । प्रतिक्षणं नवं नैव यात्यतो मुक्तिसंगमं ॥ ८९ ॥

वृतसिंहासनासीनं ह्यहो शक्रद्यो यदि । नमति सेवका वाऽतो माहात्म्य वर्णतेऽत्र किं ॥ ९० ॥ सर्वद्वंद्वपरित्यक्तं निश्चितवृत्तरत्नमान्। यथेह

समिति है इसका दूसरा नाम उत्सर्ग भी है। पांच महाव्रत तीन गुप्ति और पांच समिति इसप्रकार यह तेरह प्रकारका चारित्र संसारके समस्त भोगोंको प्रदान कर अन्तमें मोक्ष सुख प्रदान करनेवाला है। परम धर्मका कारण है और निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयका साधक है। इस सम्यक्चारित्रके विना सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके अन्दर यह सामर्थ्य नही कि वे मोक्षको प्राप्त करा सकें इसलिये सम्यक्चारित्रकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है ॥ ८२—८७ ॥ ग्रन्थकार सम्यक्चारित्रकी वास्तविक प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि सम्यक्चारित्रसे युक्त हो एक मुहूर्त ही जीवित रहना अच्छा, परन्तु उसके विना करोडों वर्षपर्यंत भी जीवित रहना अच्छा नहीं। अथात सम्यक्चारित्रके द्वाराही जीवनकी सफलता नहीं हो सकती इसलिये जीवनकी सफलता वनानेके लिये सम्यक्चारित्रसहित मुहूर्तमात्र भो जीवन अच्छा परन्तु उसके विना करोडों वर्ष तक भी जीता रहना अच्छा नहीं ॥ ८८ ॥ जो महात्मा दृढव्रतात्मा हैं अर्थात् जिनकी आत्मा सम्यक्चारित्रके अन्दर दृढ़ है उन महानुभावोंका जो कर्म पुरातन है अर्थात् पहिले से आत्माके साथ वन्धको प्राप्त है वह हर एक क्षणमें नष्ट होता चला जाता है और उस महापुरुषकी आत्माके साथ नवीन कर्मोंका वंध भी नही होता इसलिये धीरे धीरे समस्त कर्मोंके नष्ट हो जानेसे उन्हें वहुत जल्दी मोक्षलक्ष्मीका समागम प्राप्त हो जाता है ॥ ८९ ॥

जो महानुभाव चारित्ररूपी सिंहासनपर विराजमान है आर्थात् दृढ़रूपसे सम्यक्चारित्रको पालता है उसे वड़े २ इन्द्र आदि भी सेवककी तरह आकर नमस्कार करते हे फिर इस सम्यक्चारित्रका जितना भी वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥ ९० ॥ जो पुरुष निश्चितरूपसे चारित्ररूपी रत्नका धारण करनेवाला है वह इसी संसार में सर्वप्रकारके द्वंद्वोंसे रहित, अपनी आत्मासे जायमान अगणित सुखका लाभ करता है ऊर्ध्व मध्य और-

लभते सौख्यं स्वात्मजं संख्यवर्जितं ॥ ६१ ॥ नमस्कारं च पूजा च सन्मानं लोकत्रये । तथाऽमुत्र महाशर्म स्वर्गमुक्त्यादिकं ध्रुव ॥ ६२ ॥इ द रत्नत्रयं पुंसां विश्वाभ्युदयदायिदं । अनन्तपुण्यसन्तानकारणं सुखसागरं ॥ ६३ ॥

सार्वार्थसिद्धिपर्यन्तं सुखं वाचामगोचरं । भुक्त्वा मोक्षं प्रयात्येव रत्नत्रितयभूषिता ॥ ६४ ॥ ज्ञात्वेति सविधेहि त्वं दृग्हिहारं हृदि द्रुतं । ज्ञानकुण्डलयुग्मं च कर्णयोः स्वस्य हे सुहृत् ! ॥ ६५ ॥ वृत्तशेखरमुत्तुंगं मुक्तिस्त्रीवशहेतवे । संचय च तपोलक्ष्म्या निर्मलत्वं निजात्मन ॥ ६६ यतोऽत्र तैर्महान् योऽलङ्कृतो मुक्त्यंगना स्वयं । अत्यासक्ता वृणोत्येव तं बुधः स्त्रीव नान्यथा ॥ ६७ ॥ गता मोक्षं च ये केचिद्याति यास्यन्ति

पाताल लोकके लोग आकर उसे नमस्कार करते हैं उसकी पूजा अभ्यर्थना करते हैं और अत्यंत सन्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। तथा उस सम्यक्चारित्रको पालन करनेवाले पुरुषोंको परभवमें भी महा कल्याणका कर्ता स्वर्ग मोक्ष आदिका सुख निश्चयसे प्राप्त होता है ॥ ६१—६२ ॥ इसप्रकार भिन्न भिन्न रूपसे सम्यग्दर्शन आदिका स्वरूप और प्रयोजन बतलाकर ग्रन्थकार अब सामान्यरूपसे रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हैं कि यह परमपावन रत्नत्रय जीवोंको समस्त प्रकारके कल्याणरूपी जलोंका प्रदान करनेवाला है। अंतातीत पुण्यकी परंपराका कारण है और इस रत्नत्रयको पालन करनेवाले पुरुषोंको अविनाशी सुखसागरमें मग्न होनेका अवसर प्राप्त होता है। इसी अनुपम चमत्कारके धारक रत्नत्रयसे जिनकी आत्मा विभूषित है वे वचनसे न कहे जानेवाले सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सुखका अच्छीतरह रसास्वादन कर अन्तमें अचिंत्य अविनाशी मोक्ष सुखको प्राप्त करते हैं इसलिये ग्रन्थकार यह तात्विक उपदेश देते हैं कि भाई मोक्षाभिलाषी जीवो ! इसप्रकार रत्नत्रयकी सर्वोच्च महिमा जान कर तुम्हें चाहिये कि तुम सम्यग्दर्शनरूपी हारको शीघ्र ही अपने हृदयमें धारण करो, ज्ञानरूपी कुण्डलोंको अपने दोनो कानोंमें पहिनों और चारित्ररूपी मुकुटको अपने मस्तकपर धारण करो क्योंकि ये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप तीनों रत्न ही मोक्षरूपी स्त्रीके वश करनेमें कारण हैं अर्थात् इसी अद्भुत रत्नत्रयकी कृपासे मोक्षरूपी लक्ष्मी वश होती है इसी रत्नत्रयकी कृपासे तपरूप लक्ष्मीका भी संचय होता है एवं नानाप्रकारके कर्ममलोंसे मलिन आत्माका निर्मलपना भी इसी रत्नत्रयके द्वारा होता है ॥ जिस महानुभाव पुरुषके पास सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्ररूपी निर्मल अलंकार मौजूद है उसी ज्ञानवान महानुभावपर मोक्षरूपी स्त्री स्वयं आकर रीझती है एवं जिसप्रकार कोई

भूतले । आराध्य केवलं तेऽत्र भव्या रत्नत्रयं तपः ॥ ९८ ॥

तुच्छवीर्योऽपि लोकेऽङ्गी रत्नत्रितयमंडित । यास्यत्येव क्रमान्मोक्षं तद्धीनः सबलोऽपि न ॥ ९९ ॥ एतत् समयसर्वस्वमेतत् सिद्धांतजीवितं । एतन्मोक्षतरोर्बीजं ह्येतन्मार्गः शिवालये ॥ १०० ॥ मत्वेत्यादौ नराधीश ! गृहाण धर्मसिद्धये । इदं रत्नत्रयं सारं पञ्चान्निश्चयसंज्ञकम् ॥ १०१ ॥ शृणु भूप ! प्रवक्ष्येऽहं साक्षान्मुक्तिनिबंधन । कृत्स्नकर्मादिनिर्मुक्त दृगादित्रयमुत्तम् ॥ १०२ ॥

खास स्त्री खास पुरुषको वरती है उसीप्रकार मुक्ति स्त्री भी उसे स्वयं आकर वरती है। किंतु जिनके पास यह अनुपम रत्नत्रय नहीं वे कितना भी प्रयत्न करें मोक्षरूपी स्त्री उनकी ओर ताककर भी नहीं देखती ॥ ९७ ॥ आजतक जिन महानुभावोंने मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया है और अनादि अनन्त संसारमें आगे जाकर उसे प्राप्त करेंगे वह केवल इसी रत्नत्रयरूपी तपकी आराधनाका फल है—रत्नत्रयरूप तपके आचरणसे ही मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हो सकती है ॥ ९८ ॥ आश्चर्य इस बातका है कि जिसप्रकार निर्बल भी धनवान पुरुषपर स्त्री आसक्त हो जाती है उसप्रकार बलवान होनेपर भी निर्धन पुरुषपर वह नहीं रीझती उसी प्रकार कोई जीव कितना भी निर्बल क्यों न हो यदि वह सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयसे विभूषित है—सम्यग्दर्शन आदि रत्न उसके पास हैं तो वह नियमसे क्रमसे मोक्षको प्राप्त करता है किंतु जो पुरुष उक्त रत्नोंसे रहित है वह कितना भी विशिष्ट बलवान क्यों न हो मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ९९ ॥ समय शब्दका अर्थ आत्मा भी है और शास्त्र भी है और ग्रन्थकार रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह रत्नत्रय ही आत्मा वा शास्त्रका सर्वस्व है अर्थात् आत्माका सारभाग रत्नत्रय ही है क्योंकि कर्मरहित अवस्थामें स्वस्वरूपमें लीन होता हुआ आत्मा रत्नत्रयके अन्दर ही आकर लीन होता है तथा शास्त्रका सारभाग भी रत्नत्रय है क्योंकि जिस शास्त्रमें रत्नत्रयका वर्णन है वही शास्त्र सुशास्त्र है किंतु जिसमें रत्नत्रयका वर्णन नहीं वह शास्त्र नहीं कुशास्त्र है तथा यही रत्नत्रय सिद्धान्तका प्राण है क्योंकि सिद्धान्तका अर्थ शास्त्रका निचोड़ भाग है जो निचोड़ भाग रत्नत्रयस्वरूप न हो वह सिद्धान्त नहीं हो सकता। तथा यह रत्नत्रय ही मोक्षरूपी वृक्षका उत्पन्न करनेवाला बीज है और मोक्षस्थानमें ले जानेवाला रत्नत्रय ही उत्तम

एव लोकत्रयीनाथो ह्यनन्तगुणसागर । ध्यानगम्यो निजात्मास्ति सिद्धसादृश्य एव हि ॥ १०३ ॥ एवं या क्रियते श्रद्धाऽभ्यन्तरे परमात्मनि । दर्शन निश्चयाख्यं तत् परं मुक्तिवशीकरम् ॥ १०४ ॥ ज्ञानमूर्तिं परात्मानं लोकालोकविभासकम् । मुक्त्वा न विद्यते ज्ञानमन्यन्मत्वेति धीधनै ॥ १०५ ॥ क्रियते यत्परिज्ञान स्ववेदनचिदात्मन । केवलज्ञानसाकर्तृ तज्ज्ञान निश्चयाभिध ॥ १०६ ॥ वृत्तरूपोऽयमात्मास्ति निष्क्रियोऽनिविरिञ्चन । कर्माञ्जनपरित्यक्तो विदितात्रेति निश्चयात् ॥ १०७ ॥ अतरगे स्वयं स्वस्य यदाचरणमञ्जसा । ध्या-

मार्ग है । इसप्रकार व्यवहार रत्नत्रयका संक्षेपसे स्वरूप वर्णन कर राजा वैश्रवणसे मुनिराज सुगुप्तने कहा—हे राजन् ! ऊपर कही गई रीतिके अनुसार व्यवहार रत्नत्रयका स्वरूप अच्छी तरह समझ कर तुम्हें परम धर्मकी सिद्धिकेलिये अवश्य इस रत्नत्रयको धारण करना चाहिये क्योंकि यह व्यवहार रत्नत्रय भी संसारमें सार पदार्थ है तथा इस व्यवहार रत्नत्रयकी पूर्णताके बाद निश्चय रत्नत्रय धारण करना चाहिये । अब हे नरनाथ ! मैं निश्चय रत्नत्रयका भी स्वरूप वर्णन करता हूं तुम ध्यानपूर्वक सुनो—क्योंकि यह सम्यग्दर्शन आदि निश्चय रत्नत्रय साक्षात् मोक्षका कारण है । समस्त कर्म आदिको मूलसे उखाड़कर नष्ट करनेवाला है और परम उत्तम है ॥ १००—१०२ ॥

अपना निजी आत्मा ही तीनलोकका नाथ है । अनन्त अविनाशी गुणोंका समूह है । ध्यान मार्गसे उसका स्वरूप जाना जाता है एवं जिसप्रकार समस्त कर्मों से रहित सिद्धोंका स्वरूप शुद्ध है उसीप्रकार हमारी आत्मा भी शुद्ध है इसप्रकारका अपने अन्तरंग परमात्मामे जो श्रद्धान होना है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है । यह निश्चय सम्यग्दर्शन परम उत्कृष्ट है और मोक्षलक्ष्मीका संगम करनेवाला है ॥ १०३—१०४ ॥ परमात्मा उत्कृष्ट आत्मा ज्ञानस्वरूप है और वह लोक एवं अलोकके समस्त पदार्थोंका प्रकाश करनेवाला है इस उत्कृष्ट आत्माको छोड़कर ज्ञान कोई पदार्थ नहीं किंतु वह उत्कृष्ट आत्मा ही ज्ञान है ऐसा विचार कर जो स्वसंवेदन स्वरूप आत्माका ज्ञान करना है वही निश्चय सम्यग्ज्ञान है एवं यह निश्चय सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानको प्राप्त करानेवाला है ॥ १०५—१०६ ॥ यह निजात्मा सम्यक् चारित्रस्वरूप है । हलन चलन आदि क्रियासे रहित होनेके कारण स्वभावसे ही निष्क्रिय है । कर्मजनित का-

नेन क्रियते तन्निश्चयचारित्रमद्भुतं ॥ १०८ ॥ इदं रत्नत्रयं बाह्यक्रियाचिंतातिदूरगं । सर्वरागादिहीनं तद्भवनिर्वाणकारणं ॥ १०९ ॥ वीतराग मुनीन्द्राणां जायतेऽनतशर्मदं । ध्यानगम्य महानर्घ्यं रागिणां न कदाचन ॥ ११० ॥ अस्यात्राराधनेनैव घातिकर्माणि धीमता । प्रणश्यंति क्षणार्धेन तमांसि भानुना यथा ॥ १११ ॥ परात्मध्यानयोगेनेदं सपूर्णंपु लभ्यते । तस्मात्तदर्थिनो ध्यायंतु चिदात्मानमंजसा ॥ ११२ ॥ यतो ध्यानाग्निना शीघ्रमनतकर्मराशय । भस्मीभावं प्रयात्याशु काष्ठानि च यथाग्निना ॥ ११३ ॥ तस्माद् भूप । बोधा चेद् सुरत्नत्रयसेवनं । स्वीकुरु ध्यानयुक्तं त्वा हत्वा मोहमहाभटं ॥ ११४ ॥ इति निरुपमधर्मारामभूलं सुखाब्धि दुरिततिमिरभानुं दुःखदावाग्निमेघं । रहितसकलदोषं भव्यसेव्या सुरत्न-

लिमासे रहित होनेसे निरंजन है और कर्मोंकेआगमनसे रहित है ऐसा वास्तविक रूपसे जानकर अंतरंगमें ध्यानके द्वारा जो स्वयं अपना आचरण करना है वह परमाश्चर्यकारी निश्चय चारित्र माना गया है ॥ १०७-१०८ ॥ ग्रंन्थकार रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस रत्नत्रयका ऊपर वर्णन किया गया है वह रत्नत्रय बाह्य क्रियाओंकी चिंता आदिसे रहित है अर्थात् जबतक चित्त में बाह्य क्रियाओं की चिंताका समावेश रहेगा तबतक कभी भी रत्नत्रयका पालन नहीं हो सकता । समस्त प्रकारके राग आदि भावोंसे रहित है और जिस भवमें रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई उसी भवसे वह मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ १०९ ॥ यह निश्चय रत्नत्रय अनंत कल्याणका प्रदान करनेवाला है । ध्यानके द्वारा जाना जाता है । महान् अमूल्य है और वीतरागी मुनियोंके ही होता है रागियोंके कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥११०॥ जिस प्रकार सूर्यके उदयसे गाढ़ भी अन्धकार छनभरमें तितर वितर होकर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस संसारमें रत्नत्रयके आराधन करनेसे योगियोंके ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय नामक चार घातिया कर्म भी क्षणमात्रमें नष्ट हो जाते हैं ॥ १११ ॥ जो महानुभाव उत्कृष्ट आत्मा परमात्माका ध्यान धरते हैं उन सबको यह पवित्र रत्नत्रय प्राप्त होता है इसलिये जो पुरुष इस परम हितकारी रत्नत्रयके वांछक हैं उन्हें चाहिये कि अवश्य चैतन्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करें । क्योंकि जिस प्रकार अग्निकी तीव्र ज्वालासे अगणित भी काष्ठ देखते देखते राख हो जाता है उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्निसे अनन्ते भी कर्मपिंड देखते देखते भस्म हो जाते हैं इसलिये हे राजन् ! तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि तुम मोहरूपी महायोधाको नष्टकर चैतन्य स्वरूप आत्माके ध्यानके साथ व्यवहार और निश्चयके भेदसे जो दो प्रकारका रत्नत्रय ऊपर बतलाया है

त्रितयमसममार्या आचरंतु प्रयत्नात् ॥ ११५ ॥ सर्वानर्थहरं परार्यजनकं स्वमुक्तिहेतु परमंतातीतगुणार्णव भवभयप्रध्वंसक प्रत्यह। विश्वासैकनि-
बंधन जिनपतिश्रीमल्लिनाथ भजे वंदे तद्गतिहेतवे च परम मूर्ध्ना सुरत्नत्रयं ॥ ११६ ॥

उसका अवश्य सेवन करो, विना उसका सेवन किए कभी भी संसारसे उद्धार नहीं हो सकता है ॥११३-११४॥
इसप्रकार परिच्छेदके अन्तमें ग्रन्थकार प्रेरणा करते हैं कि हे आर्यो। मोक्षाभिलापी सज्जनो! तुम्हें
अवश्य प्रयत्नपूर्वक रत्नत्रयका आराधन करना चाहिये क्योंकि यह रत्नत्रय निरुपम पदार्थ है कोई भी
पदार्थ संसारमें इसकी तुलना नहीं कर सकता। धर्मरूपो मनोहर बगीचेका उत्पादक कारण है क्योंकि रत्न-
त्रयके सेवनसे ही धर्मरूपी आराम फलता फूलता है जिसप्रकार अन्धकारका मेंटनेवाला सूर्य है उसी प्रकार
यह रत्नत्रय भी पापरूपी अन्धकारके नाश करनेकेलिए सूर्यके समान है। दावानलको जिसप्रकार मेघ
शांत कर देता है उसी प्रकार यह रत्नत्रय दुःखरूपी दावानलको बुझानेवाला है। समस्त प्रकारके दोषोंसे
रहित निर्दोष है। मोक्षाभिलापी भव्यजीव सदा इसकी सेवा करते हैं एवं असाधारण है हर एकको प्राप्त
नहीं हो सक्ता। मैं भगवान मल्लिनाथको मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं क्योंकि भगवान मल्लिनाथ
समस्त प्रकारके अनर्थोंको जड़से उखाड़कर फेंकनेवाले है। उत्कृष्ट प्रयोजनको प्रदान करनेवाले हैं स्वर्ग और
मोक्षको देनेवाले हैं। उत्कृष्ट हैं। अनंत गुणों के समुद्र हैं संसारके समस्त भयोंको सर्वथा नष्ट करनेवाले हैं।
विश्वासके प्रधान कारण हैं और आठों कर्मोंके जीतनेवालोंमें प्रधान हैं। तथा भगवान मल्लिनाथ ने जिस
मार्गका अनुसरण किया है उसी मार्ग और उसी स्वरूप को प्रदान करनेवाले सर्वोत्कृष्ट रत्नत्रय को भी मैं
मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं क्योंकि यह रत्नत्रय भी समस्त प्रकार के अनर्थों का सर्वथा नाश करने-
वाला है। उत्कृष्ट प्रयोजनका उत्पादक है। स्वर्ग और मोक्षका प्रदान करनेवाला है उत्कृष्ट है अनन्त
गुणोंका भंडार है समस्त संसारके भयको नष्ट करनेवाला है और विश्वासका एक प्रधान कारण है ॥११५-११६॥

इसप्रकार भट्टाकर सकलकीर्ति द्वारा विरचित मल्लिनाथ पुराणमें रत्नत्रयका वर्णन करनेवाला पहिला परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ १ ॥



द्वितीय परिच्छेद ।

मोहमल्लारिहंतारं कामाक्षारातिघातिनं। श्रीमल्लिनाथ तीर्थेशं स्तौमि सच्छक्तिसिद्धये ॥ १ ॥ अथ श्रुत्वा मुनेर्वाचं रत्नत्रितयसूचिका। वैराग्यमातरं राजा प्राह तच्चरणेऽक्षम ॥ २ ॥ आर्तध्यानपरैर्नष्टबुद्धिभिर्मादृशैर्गिभो। मोहिभिर्विषयासक्तैर्गृहव्यापारभारितैः ॥ ३ ॥ यत्र तद्व्यवहाराख्यमनुष्ठातुं न शक्यते। तत्र शक्यं कथ याथातथ्येन निश्चयाभिधं ॥ ४ ॥ गजेन्द्रभारमुद्धर्तुं यथा न शक्यते वृषैः। तथा मुनीद्रभारं च निःशक्तैर्मादृशैः प्रभो ॥ ५ ॥ अत. स्वामिन्! कृपा कृत्वा मदनुग्रहहेतवे। क्रमाद्रत्नत्रयप्राप्त्यै तादृक्पक्षोपदेशन ॥ ६ ॥ पूजोपवाससंभूतं येन मादृग्विधैर्जनैः। विभूत्या क्रियते तस्योपासन पूजनादिभि. ॥ ७ ॥ निशम्येति यमी प्राह यथोक्तं तदुपासनं। यदि कर्तुं समर्थो न तर्हि

संसारमें मोहनीयकर्म अत्यन्त बलवान है जिन्होंने बलवान बैरी मोहनीयकर्मरूपी मल्लको सर्वथा नष्ट कर दिया है। जो भयंकर शत्रु कामदेव और इन्द्रियोंका पूर्णरूपसे घात करने वाले हैं और तीर्थंकर हैं ऐसे श्रीमल्लिनाथ भगवानको उन्हींकी समस्त शक्ति प्राप्त करनेके लिये मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयके स्वरूपको जतलानेवाले वैराग्यके उत्पादक मुनिराज सुगुप्तके वचन सुन राजा वैश्रवणने उक्त प्रकारके रत्नत्रयके पालन करनेमें अपनेको असमर्थ समझा इसलिये विनयपूर्वक वह यह कहने लगा—कृपानाथ! मुझ सरीखे मनुष्य सदा आर्तध्यानमें लीन रहनेवाले हैं सदा हम लोगोंकी बुद्धियां विनष्ट सरीखी रहती हैं। धन कुटुम्ब आदिमें सदा मोही रहते हैं। पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर सदा हमारी परिणति झुकी रहती है और घरके व्यापारोंमें हम सदा संलग्न बने रहते हैं इसलिये भगवन्! जब व्यवहार रत्नत्रयके पालन करनेके लिये भी हमारी सामर्थ्य नहीं तब हम अत्यन्त कठिन निश्चय रत्नत्रयका पालन तो कर ही नहीं सकते क्योंकि यह एक सुनिश्चित बात है कि जिस महा भारको गजेंद्र उठा सकता है उसे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय बैल नहीं उठा सकता। उसी प्रकार जिस चारित्रके महा भारको बड़े २ मुनीन्द्र उठा सकते हैं उसे मेरे समान असमर्थ पुरुष नहीं उठा सकते। अर्थात निश्चय रत्नत्रयका पालन करना बड़े बड़े मुनियोंका काम है मुझ सरीखा असमर्थ पुरुष उस निश्चय रत्नत्रयका पालन नहीं कर सकता। इस लिये हे कृपा नाथ! मेरे कल्याणके निमित्त मुझे

तद्विधिमाचर ॥ ८ ॥ समाकर्णय भूपाल यथाम्नाय यथागमं। तत्पूजादिक्रमं सर्वं देशयामि व्रताप्तये ॥ ९ ॥ भद्रे भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे नृपाकरे। द्वादशीदिवसे सारे भवेद्भव्यो व्रतोद्यत ॥ १० ॥ धौताम्बरधरो धीमान् जिनध्यानपरायण.। पूजोपलक्षितो भक्त्या यायाच्छ्रीमज्जिनालयं ॥ ११ ॥ तत्र तीर्थेशसिद्धान्तगुरून्नत्वा प्रपूज्य च। पुन. स्वगृहमागत्य दानं दद्यान्मुनीशिने ॥ १२ ॥ निर्दोषं प्रासुकं शुद्धं मधुरं तृप्तिकारणं। ततो भुजीत चाहारं शेष स सपरिच्छद ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यानोद्यतो भूत्वा तनो गत्वा जिनालयं। गुरून्नत्वा त्रिरात्रानशनं मुदा दधाति स ॥ १४ ॥

उस रत्नत्रयकी प्राप्तिका कृपाकर ऐसा उपदेश दीजिये जिससे पूजा और उपवास आदिके द्वारा मुझे क्रम से प्राप्त होजाय क्योंकि मेरे समान पुरुष पूजन आदिके द्वारा ही बड़ी भक्तिपूर्वक और ठाट बाटसे उस रत्नत्रयकी उपासना कर सकता है ॥ २—७ ॥ राजा वैश्रवणके ऐसे भक्तिसे गद्गद वचन सुनकर परम संयमी मुनिराज सुगुप्तने कहा—

राजन् ! यदि तुम ऊपर कहे गये व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयका पालन नहीं कर सके तो आम्नाय परिपाटीमें प्रचलित है और शास्त्रोंके अन्दर कहा गया है उस रत्नत्रयको जो कुछ विधि है उस विधिको ही तुम करो। सुनो उस रत्नत्रयकी पूजा आदिके क्रमका विधान जिस तरहका है मैं उसे बतलाता हूं। उस विधिके आचरण करनेसे ही तुम्हें नियमसे व्रतोंकी प्राप्ति होगी। वह विधि इसप्रकार है—

कल्याणकारी भादों मासके धर्मके स्थान स्वरूप शुक्ल पक्षकी द्वादशीके पवित्र दिनसे मोक्षाभिलाषी भव्यको रत्नत्रय व्रतका पालन करना चाहिये। जो महानुभाव रत्नत्रय व्रतका आचरण करें उसे चाहिये कि वह उस दिन पवित्र स्वच्छ वस्त्र धारण करे। अपने चित्तमें प्रतिक्षण भगवान जिनेन्द्रका ही ध्यान रक्खे एवं पूजाकी महामनोहर सामग्री लेकर भक्तिपूर्वक भगवान जिनेंद्रके मन्दिरमें जाय ॥ ८—११ ॥ मन्दिरमें जाकर भगवान जिनेंद्र आगम और गुरुओंको उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये और पूजा करनी चाहिये वहांसे अपने घर आकर मुनियोंके लिये निर्दोष प्रासुक शुद्ध मधुर और तृप्तिका करने वाला पवित्र आहारदान देना चाहिये उसके बाद जो आहार बचे वह अपने भाई बन्धु आदि कुटुम्बियोंके साथ सानन्द खाना चाहिये ॥ १२—१३ ॥ आहार आदिके आरम्भमें अनेक दोषोंका होना सम्भव है इसलिए उन

नयेन्निशामसौ तत्र स्मरन् रत्नत्रयं हृदे। प्रातः सामायिकं कुर्याज्जिनादीनां च पूजनं ॥ १५ ॥ गुरोः पुरस्सरो भूत्वा स्वामिन् ! रत्नत्रयार्चनं। वितनोमीति भक्त्या यतीशं पृच्छेद्व्रती स्फुटं ॥ १६ ॥ ततस्तेनाप्यनुज्ञाते गुरुणा हितमिच्छुना। आरभेत प्रमोदेन तत्सपर्यां परामिति ॥ १७ ॥ आदौ सपूज्य तीर्थेशान् भक्त्या तत्पुरत पुन। लिखेदष्टदलं पद्मं स्थालादौ वा शिलातले ॥ १८ ॥ कर्णिकायां लिखेत्स्वर्णलेखिन्या चदनद्रवे.। लसदोंकारह्रींकाराढ्यं सम्यग्दर्शन पदं ॥ १९ ॥ पत्रे स्वस्य लिखेन्निःशंकिताद्य गानि धीधन। बीजाक्षरयुतान्यष्टौ प्रागुक्तान्यर्चनाय स ॥ २० ॥ ततः सु-

दोषोंके प्रत्याख्यानकी अभिलाषासे आहार करके वाद पुनः जिनमन्दिरमें जाना चाहिए। वहां जाकर भले प्रकार गुरुओंको नमस्कार करना चाहिए और तीन दिन रात्रि पर्यंत बड़े हर्षके साथ अनशन व्रतका पालन करना चाहिए। उस रात्रिको उसे मन्दिरमें ही रहना चाहिए और सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयका हृदयमें चिन्तवन करना चाहिए। प्रातःकाल उठकर सामायिक करना चाहिए और पीछे भगवान जिनेन्द्र आदिकी पूजाके समारोहमें लगजाना चाहिए। जिस समय भगवान् जिनेन्द्र आदिकी पूजन करना समाप्त हो चुके उसके वाद गुरुके पास आना चाहिए और भक्तिपूर्वक उनके सामने खड़ा हो कर व्रतीको.उनसे यह पूछना चाहिये कि हेभगवन् ! मैं रत्नत्रय व्रतकी पूजाका आचरण करना चाहता हूं आप आज्ञा दीजिये। जब सर्वथा हितकारी मार्गका उपदेश देनेवाले गुरुकी रत्नत्रय व्रतकी पूजाके लिये आज्ञा मिल जाय उस समय व्रतीको चाहिये कि वह बड़े आनन्दके साथ रत्नत्रय व्रतकी परमोत्कृष्ट पूजा का आरम्भ कर दे ॥ १४—१७ ॥

जो महानुभाव रत्नत्रयव्रतकी पूजाका प्रारम्भ करना चाहें उन्हें चाहिये कि वे सबसे पहिले तीर्थंकर भगवान जिनेन्द्रकी पूजाका प्रारंभ करें और उन्हींके सामने भक्तिपूर्वक बैठकर किसी थाल आदिमें वा शिलाके मध्यमें आठ दल (पांखुडी) का कमल लिखें। चंदनका द्रव बनाकर सुवर्णमयी लेखनीसे उस कमलकी कलीके मध्यभागमें ॐ ह्रीं बीजाक्षरोंके साथ सम्यग्दर्शन शब्द लिखें तथा उस कमलकी आठों पांखुडियोंमें पहिले विस्तारसे कहे गए निश्शांकित आदि आठों अंगोंको बीजाक्षरोंके साथ पूजा केलिये लिए लिखें। जिस समय यह कमलाकार यंत्र तैयार हो चुके उस समय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अष्टांग संयग्द-

श्रोदितं धीमान् मन्त्रमुच्चारयन्मुदा । पूजनं विधिवदद्दृष्टैर्विदध्याद्बहुसंपदा ॥ २१ ॥ प्रपूज्याथ श्रुतं भक्त्या भूत्या चाष्टविधार्चनै. ।
ज्ञानमथोद्धृत्य पकजास्य दलेष्वल ॥ २२ ॥ पश्चात्तदर्चनं भूत्या कुर्यात्सविधिपूर्वक । नीरादिफलपर्यंतद्रव्योघैर्निमलै· करै. ॥ २३ ॥ सम्य-
सद्गुरुपादाब्जौ पूजयित्वा महार्चनै । त्रयोदशप्रकारस्य चारित्रस्यातिभक्तित. ॥ २४ ॥ प्रागुक्तस्य समालिख्य यंत्र पश्चान्मुदार्चयेत् । ततः
र्शन । अत्रावतार, अवतर स्वाहा । ओं ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव रत्नत्रय-
वषट् । इस प्रकार आगममें कहे गए:मंत्रोंका सानंद उच्चारण कर विपुल संपत्तिके साथ विधिपूर्वक सम्यग्द-
र्शन कीपूजा करना प्रारंभ करदे ॥ १८—२१ ॥ इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी पूजाके वाद व्रतोंका श्रुतज्ञानकी
आठों द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक पूजाका प्रारंभ करना चाहिए । सम्यग्दर्शनके समान किसी थाल आदिमें आठ
पांखुडियोंका कमल लिखना चाहिए । चंदनका द्रव वनाकर सुवर्णकी कलीके मध्यभागमें ॐ और ह्रीं वी-
जाक्षरोंके साथ सम्यग्ज्ञान शब्द लिखना चाहिए । और उसकी आठो पांखुडियोंमें वीजाक्षर मंत्रोंके साथ
व्यंजनोर्जित आदि आठो आचारोंको लिखना चाहिए । इसप्रकार जिस समय सम्यग्ज्ञानका मंत्र तयार हो
जाय उस समय जलसे लेकर फल पर्यंत निर्मल और उत्कृष्ट अष्ट द्रव्योंसे विधिपूर्वक उस मंत्रकी पूजाक-
रनी चाहिए ॥ २२—२३ ॥ जिस समय सम्यग्ज्ञानके यंत्रकी पूजा समाप्त हो चुके उस भक्तिपूर्वक उत्तम
तपके स्थान परम गुरुओंका उत्तमोत्तम पूजाकी सामग्रीसे पूजाकर ऊपर विस्तारसे बतलाए गए तेरह प्रकार
चारित्र का भक्तिपूर्वक यंत्र लिखना चाहिए और जव वह यंत्र लिखकर समाप्त हो जाय उस समय र-
त्नत्रय पूजाके विधान में जो भी उस सम्यक्चारित्रके यंत्र की पूजा की विधि कही गई है उसके अनु-
सार भक्तिपूर्वक विपुल आयोजनके साथ उस यंत्रकी पूजाकरनी चाहिए ॥ २४—२५ ॥ इस प्रकार
रत्नत्रय विधानके वाद अंतमें भांति भांतिके फल और पक अन्नोसे शोभित अर्घ—आरती
उतारना चाहिए और रत्नत्रय यंत्रोका तीन बार प्रदक्षिणा देकर रत्नत्रय विधानमें जो

१। मिथ्या दुष्कृताभिधानामभिव्यक्तप्रतिक्रिया प्रतिक्रमण ॥ २ ॥ कर्मवशप्रमादोदयजनित मिथ्या मे दुष्कृतमित्येवमाद्यभिव्यक्त प्रतीकार प्रतिक्रम-
णमित्युच्यते अर्थात् कर्मोंके आधीन प्रमादके उदयसे जायमान जो भी मेरे अशुभ कर्मका उदय हुआ हो वह मिथ्या हो इसप्रकार उस दोपके प्रती-
कारका चिंतवन प्रतिक्रमण है। राजवार्तिकालंकार पृष्ठ संख्या २४४।

विधानोक्तविधिना बहुसंपदा ॥२५॥ अर्थमंते समुत्तार्य फलपक्वान्नशोभितं । त्रिः परीत्य ततः कार्यास्तद्विद्युक्तजपोत्कराः ॥ २६ ॥ पूजां रत्नत्रयस्येति कृत्वा भक्त्या मुदा गुरोः । मुखात्कथानकं रम्यं श्रोतव्यं व्रतधारिभिः ॥ २७ ॥ एवं दिनत्रयेत्युच्चैर्विधेयं पूजनं परं । यंत्राणां च जिनादीनां बुधैः कालत्रये शुभं ॥ २८ ॥ महाभिषेकमप्युच्चैर्जिनागारे व्रतान्वितैः । कर्तव्यं सह संघेन महोत्सवपुरस्सरं ॥ २९ ॥ गृहारंभाखिलं त्यक्त्वा पूजावश्यकतत्परः । धर्म्यध्यानेन तत्रासौ तिष्ठेत्त्रयमहर्निशं ॥ ३० ॥ पर्वण्यस्मिन् विधातव्यःस्वशक्त्या विविधोत्सवः । सर्वांग्यभयदानादिगीतनृत्यादिभिर्बुधैः ॥ ३१ ॥ मौक्तिकत्रितय रत्नत्रितयस्मरणहेतवे । व्रती तदा प्रभृत्येव धारयेद्दक्षिणे करे ॥ ३२ ॥ अथ यंत्रजिनादीनां कृत्वार्चां प्रतिपद्दिने ।

जप शास्त्रमें कहे गये हैं उन जापोंको जपना चाहिये ॥ २६ ॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक बड़े समारोहसे रत्नत्रय की पूजाकर रत्नत्रय व्रतको धारण करनेवाले महापुरुषको गुरुके पास जाना चाहिये और उनके श्रीमुखसे आत्माका कल्याण करने वाला आगमका स्वरूप आनन्दपूर्वक सुनना चाहिए। इस रीतिसे जो पुरुष रत्नत्रयव्रतके पालन करनेवाला है उसे तीनों दिन अर्थात् त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णमासीके दिन प्रातःकाल मध्हान्हकाल और सांयकाल रत्नत्रयके यंत्रों और जिन आदिकी बडे समारोहसे शुभ और उत्कृष्ट पूजन करनी चाहिए। तथा इसप्रकार पूजाके बाद व्रतधारियोंको जिन मन्दिरके अन्दर अपने संघको साथ ले महान् उत्सवके साथ महा अभिषेक भी करना चाहिए ॥ २७--२९ ॥ रत्नत्रय व्रत धारण करनेवालोंका यह खास कर्तव्य है कि वे तीन दिन तक समस्त गृहसम्बन्धी आरम्भोंका त्याग कर बराबर जिन मन्दिरके अंदर रहें और वहां पूजा और आवश्यक कृत्योंमें दत्तचित्त हो धर्मध्यानसे काल व्यतीत करें ॥ ३० ॥ समस्त प्राणियोंको अभयदान आदि देकर और गीत नृत्य आदि कराकर व्रतीको इस महान् पर्वमें अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रकारका उत्सव करना चाहिए ॥ ३१ ॥ जो पुरुष रत्नत्रय व्रतका आचरण करनेवाला है उसे चाहिए कि वह रत्नत्रयव्रतके बाद उस रत्नत्रयके स्मरणके लिए अपने दक्षिण हाथमें तीन मोतियोंको धारण करे ॥३२॥ इसप्रकार रत्नत्रयके यंत्र और जिनेन्द्र आदिको त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीन दिन पर्यंत भक्तिपूर्वक पूजाकर प्रतिपदाके दिन भी पेतीस (छत्तीस) प्रकारके व्यञ्जनोंसे आनन्द-

१ रत्नत्रयके यन्त्र ताम्रपत्रपर खिंचे हुए मन्दिरमें पाये जाते हैं अत यहां उनके लिखनेकी आवश्यकता नहीं। २ स स्थान रत्नत्रयपूजामें रत्नत्रय की जापोंका विस्तारसे उल्लेख है।

पञ्चविंशति (?) भेदोरुपक्वान्नैरर्चयेन्मुदा ॥ ३३ ॥ ततस्त्रिविधपात्रेभ्यो दानं दत्त्वा यथाविधि । प्रासुकं मधुरं भक्तया पारणं तनुयात्ततः ॥ ३४ ॥
शुद्धरत्नत्रयस्फारभक्तिरागवशीकृतः । पारणे सोऽप्यहोरात्रं देवगेहेऽनिवर्तयेत ॥ ३५ ॥ विस्तरेण मयोक्तैपा पूजायुक्ति परस्य च । प्रोच्यमाना
समासेनाऽधुना सा श्रूयतां नृप ॥ ३६ ॥ अरनाथलसन्मल्लिसुव्रताना जिनेशिना । भक्तया वित्रयं दक्षः स्नपयेत्स्नायुक्तिभि. ॥ ३७ ॥ तत्पुर पूर्व-
वद्रत्नत्रयमुद्धृत्य भक्तित । पूजयाशु यथाशक्त्या युगपत्पूजयेत्ततः ॥ ३८ ॥ अहो भाद्रपदाख्योय मासोऽनेकव्रताकरः । धर्महेतुपरो मत्येऽन्यमा-
साना नरेंद्रवत् ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्यक्त्वा गृहारम्भमस्मिन् मासि विधीयते । पूजाव्रतोपवासाद्यैः सुधर्मोच्चाघनाशनं ॥ ४० ॥ अनेन विधिना माघे

पूर्वक उनको पूजा करे ॥३३॥ उसके बाद वह व्रती घर आवे और उत्तम मध्यम जघन्य तीनों प्रकारके पात्रों
को यथायोग्य दान देकर प्रसन्नतासे प्रासुक और मधुर भोजनसे पारणा करे। उसके बाद शुद्ध रत्नत्रय
की तीव्र भक्ति और प्रेमसे जिसकी आत्मा गद्गद है ऐसा वह रत्नत्रय व्रतका आचारण करनेवाला व्रती
पारणाके दिनके अवशिष्ट समयको और समस्त रात्रिको जिनमंदिरमें ही जाकर व्यतीत करै ॥ ३४-३५ ॥
इस प्रकार हे राजन् ! तुम्हारे सामने यह रत्नत्रयकी पूजाका विधान विस्तारसे कहा है। तुम्हारे से भिन्न
दूसरे पुरुषके लिये वह संक्षेपसे कहा जा सकता है। वह संक्षेपसे कहा जानेवाला रत्नत्रय का विधान इस
प्रकार है। तुम सुनो—

जो पुरुष रत्नत्रय व्रतका पालन करने वाला है उसे भगवान अरहनाथ मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ इन
तीनों भगवानोंकी प्रतिमाओंका जिसरूपसे शास्त्रमें अभिषेकका विधान लिखा हुआ है उस विधानसे
भक्तिपूर्वक अभिषेक करना चाहिये। तथा इन तीनों प्रतिमाओंके सामने पहिलेके समान भक्तिपूर्वक रत्न-
त्रय यंत्रोंका लिखकर रख देना चाहिए और एक साथ सबका पूजन करना चाहिए इसरूपसे भी रत्नत्रय
का विधान सत्तेपसे माना गया है। रत्नत्रयका विधान भाद्रपद मासमें बताया गया है इसलिए ग्रन्थकार
भाद्रपद मासकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिसप्रकार मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा माना जाता है उसी प्रकार
समस्त मासोंके अन्दर भाद्रपद मास भी श्रेष्ट है क्योंकि वह अनेक प्रकारके व्रतोंका स्थान स्वरूप है
और धर्म प्रधान कारण है ॥ ३६—३९ ॥ इसीलिए समस्त गृहारंभका परित्याग कर इस भाद्रपद मासमें
व्रती पुरुष पूजा व्रत और उपवास आदिके द्वारा तथा धर्मके आचरणसे पापोंके नाशमें प्रवृत होते हैं ॥४०॥

मासि चैत्राभिधे पुनः । व्रत रत्नत्रयस्येद कर्तव्यं भुक्तिमोक्षदं ॥ ४१ ॥ उपवासत्रयं कर्तुं येऽशक्ता भक्तितत्पराः । ते कुर्वंति यथाशक्त्यैहैकसत्प्रोषधादिभिः ॥ ४२ ॥ शक्तितः क्रियमाणेऽप्यत्र त्यागतपसी सतां । स्यातां समीहितानेकफलसंप्राप्तिहेतवे ॥ ४३ ॥ श्रावकैः श्राविकाभिश्च मुनिभिश्चार्यिकादिभिः । व्रतमेतद्विधातव्यं पापहंतृ सुखाकरं ॥ ४४ ॥ वर्षत्रितयपर्यंतं विधायेदं व्रतोत्तमं । सपूर्णं त्वनुकर्तव्यं स्वशक्त्योद्यापनं बुधैः ॥ ४५ ॥

जिसरूपसे भाद्रपद मासमें रत्नत्रय व्रतका विधान बतलाया है उसी विधिसे वह माघ मास और चैत मास में भी आचरण करना चाहिए । क्योंकि यह अनुपम रत्नत्रय व्रत संसारके उत्तमोत्तम भोग प्रदान कर अंतमें मोक्षसुखका प्रदान करनेवाला है ॥ ४१ ॥ जो महानुभाव तीन दिन पर्यन्त उपवास करनेके लिए असमर्थ हैं किन्तु रत्नत्रय व्रतके पालन करनेमें पूरी २ भक्ति और श्रद्धा रखते हैं वे शक्तिके अनुसार एक प्रोषध आदिसे ही रत्नत्रयव्रतके पालक माने जाते हैं । अर्थात उनके लिए त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीनों दिनतक उपवास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । वे ऐसा भी कर सकते हैं कि त्रयोदशीके दिन एक वार भोजन कर सारा दिन और रात्रिका समय मंदिरमें ध्यान आदि कार्योंमें व्यतीत करें । चतुर्दशीके दिन पूरा उपवास करें और मंदिरके अन्दर ही स्वाध्याय आदिमें दत्तचित्त होकर अपना समय व्यतीत करें । पूर्णमासीके दिन पूजा आदि आवश्यक कर्मोंके समाप्त होजाने पर एक वार भोजन करें और फिर मंदिरमें ही जाकर दिनका और रात्रिका समस्त समय स्वाध्याय आदिमें लगावें, प्रतिपदाके दिन घर आवें और जो भी ऊपर विधि कही गई है उसे करें । यहांपर यह शंका न करनी चाहिए कि व्रतकी जो पूरी विधि बतलाई है उसीसे अभीष्ट फलकी सिद्धि हो सकती है और न्यूनता होनेसे वह फल प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि शक्तिके अनुसार किए जानेवाले दान और तप भी संसारमें अनेक अभीष्ट फलोंके प्रदान करनेमें कारण माने गए हैं—उनसे भी संसारमें अनेक प्रकारके अभीष्ट और उत्तमोत्तम फलोंकी प्राप्ति होती है ॥ ४२—४३ ॥ जिस रत्नत्रयव्रतका ऊपर खुलासा रूपसे वर्णन किया गया है वह व्रत श्रावक श्राविका मुनि और आर्यिका सबोंको पालन करना चाहिए क्योंकि वह पवित्र व्रत पापोंका सर्वथा नाश करनेवाला है और नानाप्रकारके सुखोंकी इससे प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ यह परमोत्तम रत्नत्रयव्रत तीन वर्ष

निमाप्य जिनचैत्यालानुत्तुंगान् सुभासुरान् । अरनाथादिबिंबाना प्रतिष्ठा कारयेत्तत ॥४६॥ कर्तव्यहि जिनागारे महाभिषेकमद्भुत । सघैश्चतुर्विधै सार्धं महापूजादिकोत्सवं ॥ ४७॥ घटाचामरचंद्रोपकभृंगारार्तिकादय. । धर्मोपकरणानि त्रिसंख्यानिविविधानि च ॥४८॥ पूजाद्रव्याणि पक्वान्नादीनि भक्त्या स्वशक्तितः । नालिकेरकदल्यादिमनोहरफलानि च ॥ ४९ ॥ विस्तार्यंते जिनागारे पूजाशोभादिहेतवे । महोत्सव विधेयं सुवाद्यगीतादिन तनै. ॥५०॥ पुस्तकादिमहादानं भक्त्यादेय वृपाकरं । आचार्येभ्यो यथायोग्य रत्नत्रयव्रतान्विते. ॥ ५१ ॥ चतुर्विधाय सघायाहारदानादिकं

पर्यंत बराबर पालना चाहिए जिस समय तीन वर्ष समाप्त हो जांय और व्रत भी पूरा हो जाय उस समय जिसकी जैसी शक्ति हो भक्तिपूर्वक उद्यापन करना चाहिऐ ॥४५॥ उद्यापनकी विधि इसप्रकार है खूब ऊंचे २ विशाल और रत्नोंको दीप्तिसे देदीप्यमान जिन चैत्यालय बनावे और उनमें अरनाथ मल्लिनाथ आदिकी प्रतिमाओंकी ठाट बाटसे प्रतिष्ठा कराकर उन्हें उन चैत्यालयोंमें विराजमान करैं। पश्चात् श्रावक श्राविका एवं मुनि और आर्यिका इस चार प्रकारके संघको साथ लेकर जिन मंदिरोंमें सबोंको चमत्कारका करनेवाला महा अभिषेक करावे और बड़े समारोहके साथ महा पूजा आदिका उत्सव करना प्रारम्भ करै। घंटा चमर चांदनी झाड़ी और आरती आदि जितने भी धर्मके अनेक प्रकारके उपकरण हैं उनमें हर एकको तीन तीन कर दे ॥ ४६—४८ ॥ पक्व अन्न लाड़ घेवर फेनी आदि जो भी पूजाके द्रव्य हैं अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक उन्हें प्रदान करे और महा मनोहर नारियल केला आदिके उत्तमोत्तम फलोंको दे ॥ ४९ ॥ इसप्रकार पक्व अन्न और नारियलके फल आदि पूजाके कारणोंको और घटा चमर चांदनी आदि शोभाके कारणोंको जिनमंदिरमें प्रदान कर उत्तमोत्तम बाजे गीत और नृत्य आदिके अत्यन्त आयोजनसे जिन मंदिरमें 'महान् उत्सव भी करे ॥ ५० ॥ तथा जा महानुभाव रत्नत्रयव्रतसे विभूषित हैं उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य धर्मके प्रधान कारण ग्रंथ भी आचार्योंको भक्तिपूर्वक भेंट करने चाहिए। श्रावक श्राविका और मुनि आर्यिकाके भेदसे जो ऊपर चार प्रकारका संघ कहा गया है उन्हें विशिष्ट सन्मानके साथ भक्तिपूर्वक बुलाकर अत्यंत प्रमोदसे आहार औषध आदि दान देने चाहिए ॥ ५१—५२ ॥ प्रभावना अंगका स्वरूप ऊपर जहांपर सम्यग्दर्शनके आठ अंगोका स्वरूप कहा

मुदा । आमन्त्र्य परया भक्त्या देयं सन्मानपूर्वकं ॥५२॥ प्रभावना जिनेंद्राणां शासने चैत्यधामनि । विधातव्या प्रयत्नेनानेकोत्सवशतैर्बुधैः ॥५३॥ येषामेतावती शक्तिर्नास्त्यत्रोद्यापने सता । ते कुर्वंतु यथाशक्त्या स्तोक चोद्यापनं मुदा ॥ ५४ ॥ सर्वथा येऽप्यशक्ता हि व्रतोद्यापनसद्विधौ । ते कुर्वंतु विधानं तद्द्विगुण भावपूर्वकं ॥ ५५ ॥ अनेकपुण्यसंतानकारणं स्वर्निबंधनं ।पापघ्नं च क्रमादेतद्व्रत मुक्तिवशीकरं ॥ ५६ ॥ यो विधत्ते व्रत सारमेतत्सर्वसुखावहं । प्राप्य षोडशम (कं) नाक स गच्छेत्क्रमत शिवं ॥ ५७ ॥ इत्यादि व्रतमाहात्म्य श्रुत्वा राजातिभक्तितः । तदादाय मुनि

है वहां विस्तारसे कह दिया है इसलिए जो महानुभाव रत्नत्रयव्रतके पालक हैं उन्हें भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रकटकर और मंदिरोंके अंदर भी अनेक प्रकारके सैकड़ों उत्सव कराकर सम्यग्दर्शन के प्रधान अंग प्रभावनाका पालन करना चाहिये ॥ ५३ ॥ यह तो हुई अत्यन्त व्ययसाध्य उद्यापनकी बात, किंतु जो महानुभाव इतना महान खर्चकर उद्यापन करनेमें असमर्थ हैं — उद्यापनकेलिये इतना अधिक खर्च नहीं उठा सकते उन्हें चाहिये कि वे अपनी शक्तिके अनुसार भक्ति और हर्षके साथ थोड़ा ही उद्यापन करें — उन्हें उतनेही उद्यापनसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी परंतु जो महानुभाव इतने भी असमर्थ हैं कि थोड़ासा भी उद्यापनका विधान नहीं कर सकते उन्हें चाहिए कि वे रत्नत्रय व्रतका जो विधान बताया गया है विशुद्ध भावोंसे उसका दूना विधान करें अर्थात् तीन वर्षकी जगह वे छह वर्ष तक रत्नत्रयका विधान बराबर करें ऐसा होनेसे उन्हें उद्यापन करनेकी फिर आवश्यकता नहीं ॥ ५४—५५ ॥ यह रत्नत्रय व्रत अनेक पुण्यकी संतानका कारण है। स्वर्गका कारण है। संसारके समस्त पापोंका सर्वथा नाश करनेवाला है एवं मुक्तिरूपी महादुर्लभ लक्ष्मीको वश करनेवाला है ॥ ५६ ॥ रत्नत्रय व्रत की प्रशंसा करते हुये ग्रंथकार कहते हैं कि परम सुखका स्थान स्वरूप और समस्त व्रतों में सार इस रत्नत्रय व्रतको जो महानुभाव धारण करते हैं वे सोलहवें स्वर्गके सुखका लाभ करते हैं एवं धीरे धीरे अनुक्रमसे वे अविनाशी मोक्ष सुखका भी रसास्वादन करते हैं ॥५७॥

इस प्रकार मुनिराज सुगुप्तके मुखसे रत्नत्रयका माहात्म्य सुन राजा वैश्रवण को परमानंद हुआ। भक्तिपूर्वक उसने रत्नत्रय व्रत धारण किया और विनयपूर्वक मुनिराज को नमस्कारकर वह अपने राज-

नत्वा जगाम निजमदिरं ॥ ५८ ॥विभूत्या परया भक्त्या राज्ञा मुक्त्यगनाप्तये । एतद्व्रतं च सपूर्णं याथातथ्येन सत्कृत ॥ ५६ ॥ पश्चादस्य व्रतस्यातेऽनेकतीर्थंशमदिरान् । उद्यापनविधौ भूपश्चक्रे परमोत्सव महत् ॥ ६० ॥ जिनागारे जिनेद्राणा स्वगृहे च महामह । करोति प्रत्यह राजा सर्वाभ्युदयसाधन ॥ ६१ ॥ नित्य सत्पात्रदानानि ददाति स्म स मुक्तये उपकारं च जैनाना वात्सल्य भजते सुधी ॥६२ ॥ विधत्ते प्रोषधान् सर्वेषु पर्वसु धराधिप । भूत्वा यतिसमो हत्वा गृहव्यपारमंजसा ॥ ६३ ॥ सर्वाण्यणुव्रतान्येव गुणशिक्षाव्रतानि च । त्रिशुद्धया त्यक्तदोषाणि स पालयति यत्नत.

मंदिरमें आगया ॥ ५८ ॥ राजमदिरमें आकर राजा वैश्रवणने परम भक्ति और श्रद्धाके साथ मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये रत्नत्रय व्रतका प्रारंभ किया एवं वास्तविक रीतिसे उसे पूरा किया ॥ ५६ ॥ व्रतके अंतमें उद्यापनके समय राजा वैश्रवणने भगवान जिनेन्द्रके अनेक मंदिरोंका निर्माण कराया और महान् उत्सवका समारंभ किया ॥ ६० ॥ तबसे राजा वैश्रवणने अन्य जिनमंदिरोंमें और राजमंदिरके जिनमंदिरोंमें समस्त प्रकारके ऐश्वर्योंको प्रदान करनेवाली महापूजाका प्रतिदिन करना प्रारंभ कर दिया वह नरपाल मोक्षलक्ष्मीकी प्रचुर लालसासे प्रतिदिन उत्तम पात्रोंको आहार औषध आदि चारों प्रकार का दान देने लगा किसी भी दीन हालतमें जैनधर्म पालन करनेवालोंको सुनकर निरीह और निर्मल बृत्तिसे बड़े हर्षसे उनका उपकार करने लगा एवं साधर्मी भाइयोंमें गाय वच्छाके समानप्रेम दर्शाकर परिपूर्ण वात्सल्य अंगका उसने पालन करना आरंभ कर दिया ॥ ६१—६२ ॥ वह महानुभाव वैश्रवण राजा अष्टमी चतुर्दशी आदि समस्त पर्वोमें ऊपर कही गई विधिके धारक प्रोषध व्रतका आचरण करने लगा और निर्मल भावोंसे घरके कार्योसे सर्वथा विमुख हो वह पवित्र आचरणकर आचरण करनेवाले यतिके समान हो गया ॥ ६३ ॥ अहिंसा अचौर्य सत्य स्वदारसंतोष और परिग्रह परिमाण ये पांच अणुव्रत, दिग्व्रत भोगोपभोग परिमाणबृत और अनर्थ दंडवृत ये तीन गुणव्रत एवं देशावकाशिक सामायिक प्रोशधोपवास और वैयावृत्य ये चार शिक्षावृत इसप्रकार श्रावकोंके बारह वृत हैं। राजा वैश्रवण मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक पांचों अणुव्रत तीनो गुणव्रत और चारों प्रकारके शिक्षावृतोंको निर्दोषरूपसे बड़े यत्नके साथ पालन

१ । रत्नकरंड श्रावकाचारमें इन बारह व्रतोंका विस्तारसे वर्णन है। उसी के अनुसार नामोंका उल्लेख किया गया है।

॥ ६४ ॥ शृणोति जैनशास्त्राणि ज्ञानायाज्ञानहानये । श्रीजिनेंद्रमुखोत्पन्नान्यसौ नित्यं च मुक्तये ॥ ६५॥ धर्मोपदेशमादत्ते स्वसभास्थाखिलांगिना। वाग्मी तदुपकाराय दिव्यैर्वाक्यैर्मनोहरैः ॥ ६६ ॥ यात्रापूजानमस्कारदानशीलव्रतादिभिः । सदैव धर्ममेक स विधत्ते ,पुण्यकर्मभिः ॥ ६७ ॥ चित्ते धृत्वा निजे धर्मं वक्ति वाचा च देहिना । तमाचरति कामेनेतिस धर्ममयोऽभवत् । धर्मार्पितान् परान् भोगान् यथाकाल भुनक्ति सः । सर्वाक्षतृप्तिदान् भूप कुर्वन् धर्ममनःरतम् ॥ अथैकदा नृपो द्रष्टुं जृंभमाणां वनावलीं । प्रवृद्धे प्रावृडारंभे वेष्टितो भूमिपैर्यात् ॥७०॥ मार्गस्य निकटे दृष्ट्वा वटं तुंगं

करने लगा ॥ ६४ ॥ वह महानुभाव उस दिनसे अज्ञानकी सर्वथा निवृतके लिये और ज्ञान संपादन करनेके लिये भगवान अर्हंत (जिनेन्द्र) के मुखसे उत्पन्न जेन शास्त्रोंका श्रवण और मनन करने लगा और उससे मुक्ति प्राप्तिकी अभिलाषा चित्तमें करने लगा ॥६५॥ हितकारी और परिमित वचनों का बोलनेवाला वह वाग्मी राजा वैश्रवण, सभामें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको उनका उपकार हो—इस पवित्र अभिलाषासे प्रति दिन दिव्य और मनोहर वचनोंमें धर्मोपदेश देने लगा ॥ ६६ ॥ जहांसे अगणित पवित्र आत्माओंने मोक्ष प्राप्त की है ऐसे तीर्थोंकी यात्रा करना, जिनेन्द्र आदिकी पूजा करना , उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करना उत्तम पात्रोंको आहार आदि दान देना एवं भक्तिपूर्वक शीलव्रत आदिका पालन करना इसप्रकार के पुण्यको उत्पन्न करनेवाले पवित्र कार्योंसे वह राजा सदा ही धर्मका आचरण करने लगा ॥ ६७ ॥ वह राजा चित्तमें जिस किसी भी पदार्थ का विचार करता था उस समय केवल धर्मका ही विचार करता , धर्मके विचारके सिवाय अन्य किसी विचारको उसके हृदयमें जगह नहीं मिलती थी । जब कभी मनुष्योंके सामने कुछ वचन बोलता था उस समय धर्मसे संबंध रखनेवाला ही वचन बोलता था उसके मुखसे सिवाय धर्म संबंधी वचनके अन्य वचन नहीं निकलता था शरीरसे भी वह धर्म क्रियाओं को ही आचरण करता था अन्न किसी प्रकार की क्रियाओंका उसके शरीरसे आचरण नहीं होता था इसलिये वह राजा साक्षात् धर्मस्वरूप था ॥ ६८ ॥ वह राजा वैश्रवण सर्वदा धर्मका आचरण करता था इसलिये यद्यपि वह समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले भोगोंका भोग करता था परन्तु धर्मानुकूल उत्कृष्ट भोगोंका ही भोग करता था धर्म विरुद्ध मर्यादासे अतिक्रान्त भोगोंका भोग नही करता था ॥ ६९ ॥

घनात्मकं॥७२

नोहरं । शाखोपशाखसकीर्णं बृत्तं पक्षिशताकुलम् ॥ ७१ ॥ व्रजता भूभुजेत्युक्तं पश्य पश्यास्य विस्तृतिं । तुंगत्वं बद्धमूलत्वं सुंदरत्वं स्वेच्छ-

त्याकर्ण्य व्रजन्मार्गं पुरतः पार्श्ववर्तिना । साश्चर्यं वहृदयो! राजा वनांतरं क्रमादगात् ॥ ७३ ॥ नानाक्रीडादिभिस्तत्र चिक्रीड पृथिवीपतिः । इति

ग्रामा च रामाभिर्यथाकाल नृपात्मजः ॥ ७४ ॥ ततस्तेनैव मार्गेण प्रत्यागच्छन्मुदा नृप । विद्युत्प्रपातघातेन वीक्ष्य तं भस्मितं क्षणात् ॥ ७५ ॥ क्षणार्धेन

चिता विधत्तेऽहो बद्धमूलत्वमेव च । कस्यात्र विस्तृतिर्नित्या तुंगत्वं कस्य वा भुवि ॥ ७६ ॥ यथात्रायं वट प्राप्तो ह्यवस्थामीदृशीं महान् ।

कदाचित् वर्षा ऋतुका पूर्ण प्रारंभ हो चुका था और उसके निमित्तसे वनकी बृक्षावली फल फूलोंसे युक्त हरी भरी शोभित हो रही थी। उस समय राजा वैश्रवणको वनकी वृक्षावली देखनेका कौतूहल हुआ इसलिये वह अनेक अपने वशवर्ती राजाओंके साथ वनकी शोभा निरखने चल दिया ॥७०॥ मार्गके समीपमें ही एक वडका वृक्ष था जो कि अत्यन्त ऊंचा था महामनोहर था गांठ और डालियोंसे व्याप्त था, गोलाकार था और सैकड़ो पक्षियोंसे व्याप्त था ॥ ७१ ॥ मार्गमें जाते हुए राजाने वह वड़का वृक्ष देखा और आश्चर्यसे युक्त हो इस प्रकार कहने लगा—देखो ! देखो !! यह वृक्ष कितना चौड़ा है कितनाऊंचा है। इसका मूलभाग कैसा जिकड़ा हुआ है एवं कैसा सुन्दर और सघन है तथा ऐसा कह कर और साथमें रहनेवाले लोगों के सामने उस वृक्षके विषयमें अत्यन्त अश्चर्य कर वह मार्गमें और भी आगे को चल दिया एवं क्रमसे चलता चलता वनके मध्यभागमें जा पहुंचा ॥७२—७३॥ वनमें जाकर वहा राजा वैश्रवण उत्तमोत्तम स्त्रियों के साथ एवं राजपुत्रोंके साथ अपनी इच्छासे अनेक प्रकार की क्रीडा करने लगा। जब क्रीडा समाप्त हो गई और नगर को लौटने लगा तो जिस मार्गसे गया था उसी मार्गसे नगरको बड़े आनन्दसे लौटा रास्तामें देखता क्या है कि जिस बड़के वृक्षको वह आश्चर्यकारी लंबाई चौड़ाईवाला छोड़ गया था वही क्षणभरमें विजलीके गिरनेसे खाख हुआ पड़ा है ॥ ७४—७५ ॥ बस ! कुछ ही क्षणोंमें वृक्षकी यह अचरज करनेवाली अवस्था देख उसे संसारसे एकदम वैराग्य होगया और वह मनमें इस प्रकारकी चिंता करने लगा। संसारमें बद्धमूलता—मजबूत जड़ सदा किसीकी भी नहीं रहती। न किसीका विस्तृति—फलना फूलना सदा रहता है और न तुंगत्व—अभिमान किसीका सदा स्थिर रहता है ॥७६॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि

ततः कस्य स्थिरत्व जीवितादिषु ॥ ७७ ॥ भस्मीभावमगाद्यद्वदामूलात क्षणाद्वटः । विद्युताऽखिलजीवास्तद्वद्यास्यंति यमाग्निना ॥ ७८ ॥ राज्यं रजोनिभं निंद्यं दुखचिन्तादिसागरं । महारंभाघदुध्यानाद्यं कः पालयेत्सुधी ॥ ७९ ॥ छायेव चपला लक्ष्मी कृत्स्नचिन्ताखनि खला रागद्वेषमदोन्मादमाता किं रजयेत्सतां ॥ ८० ॥ वान्धवा बन्धनान्येव भार्या हि निगडोपमा । गलस्थ पलाभा पुत्रा. कुटुम्बा पाशसन्निभ ॥ ८१ ॥ कारागारनिभे

देखो ! कुछ देर पहिले यह वृक्ष कितना विशाल और विस्तृत था सो जब आधे ही क्षणमें ऐसी विलक्षण अवस्थाको प्राप्त होगया अर्थात् खाखामें मिल गया तब किसीके जीवन जवानी सुंदरता आदि स्थिर रहेंगे यह क्या निश्चय है ? मेरा तो यह निश्चय है कि जिस प्रकार यह वड़का वृक्ष मूलसे लेकर चोटी पर्यंत विजलीकी तीव्र ज्वालासे जलकर खाख होगया है उसी प्रकार यमराजरूपी अग्निसे ये समस्त जीव—जीवोंके शरीर खाख में मिल जांयगे अर्थात् किसी जीवकी पर्याय सदा काल स्थिर नहीं रह सकती ॥ ७७—७८ ॥ जिस राज्यको पाकर लोग मदमें मत्त होजाते हैं वह राज्य धूलके समान है । महा निंद्य है दुःख और चिंता आदिका समुद्र है । अनेक प्रकारके इसके निमित्तसे आरंभ करने पड़ते हैं और उनसे जयमान पापोंकी उत्पत्ति होती है तथा सदा इसकेलिए निन्दत ध्यान ही वना रहता है इसलिये ऐसे निन्दित राज्यका कोई बुद्धिमान पालन नहीं कर सकता ॥ ७९ ॥ लक्ष्मीका घमड लोगोंको पागल कर देता है सो यह लक्ष्मी छायाके समान चंचल है । अर्थात् जिसप्रकार वृक्षकी छाया कभी पश्चिमकी ओर तो कभी पूर्वकी ओर हो जाती है उसीप्रकार यह लक्ष्मी आज किसीके है तो कल किसीके है तथा यह समस्त चिन्ताओंको उत्पन्न करनेवाली है अर्थात् लक्ष्मीके सम्बन्धसे ही अनेक प्रकारकी चिन्ता लगी रहती है निर्धनको विशेष चिन्ता नहीं व्यापती । तथा यह लक्ष्मी महा दुष्ट है एवं रागद्वेष अहंकार और उन्माद सबको उत्पन्न करनेवाली है इसलिये जो पुरुष सज्जन हैं वास्तविक रूपसे हित अहितके जानकार हैं उन्हें यह लक्ष्मी कभी भी रंजयमान नहीं कर सकती ॥ ८० ॥ मोहके तीव्र जालमे जिकड़कर लोग भाई पिता पुत्र स्त्री आदि बांधवोंको अपना मानते हैं परन्तु वे बांधव सर्वथा बंधन स्वरूप ही हैं क्योंकि स्त्री तो बेडीके समान है अर्थात् जिस पुरुषके पैरमें बेडी पड़ी हुई है वह पुरुष जिसप्रकार कहीं नहीं जा

घोरे चिन्तादु खादिसकुले । सर्वपामाकरीभूते धर्मविध्वंसकारणे ॥ ८२ ॥ कामक्रोधमहामोहरागाद्यब्धौ गृहाश्रमे । मतिमान् को रतिं धत्ते ह्यनन्तभवदायिने ॥ ८३ ॥ उरगाभान् खलान् दुष्टान् सद्य प्राणापहारिण । दु खोद्भवान् महादु खहेतूनत्यंतचंचलान् ॥ ८४ ॥ अतृप्तिजनकान् क्रूरान् क्रूरकर्मविधायिन । वपु कदर्थनोत्पन्नान् भोगान् क सेवते बुध ॥ ८५ ॥ शुक्रशोणितसभूते सप्तधातुमयेऽशुभे । क्षुत्तृट्कामजराक्रोधरोगाग्नि

सकता और जाता है वहां वेड़ी सहित हो जाता है उसीप्रकार जिस पुरुपकी स्त्री मौजूद है वह पुरुप भी कहीं नहीं जा सकता और जहां जाता है वहां स्त्रीको भी साथ ही रखना पड़ता है इसलिये दीक्षा आदि शुभ कर्मोंमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होती। तथा गलेमें जिसप्रकार शृंखला (तांक) पड़ी रहती है उसके समान पुत्र है और समस्त कुटुम्ब पाशके समान है ॥ ८१ ॥ यह गृहाश्रम कारागार—कैदखानेके समान है महा घोर है। नाना प्रकारकी चिन्तायें और उनसे जाय मान दुःख शोक आदिसे व्याप्त है। समस्त पापों का स्थान है। वास्तविक धर्मको जड़से उखाड़कर फैंक देनेवाला है एवं काम क्रोध तीव्र मोह रागद्वेप आदि का समुद्र है तथा अनंते भवोंका प्रदान करनेवाला है अर्थात् गृहस्थाश्रमका सम्बन्ध रहना अनन्त काल पर्यंत मोक्ष सुखका वाधक है इसलिये ऐसे महादुःखदायी पापी गृहस्थाश्रममें कोई वृद्धिमान प्रेम नहीं कर सकता ॥ ८२—८३ ॥

जिनके जालामें निरतर यह जीव फंसा रहता है ऐसे ये भोग काले भजंगके समान हैं क्योंकि जिस प्रकार भुजंग ऊपरसे अच्छा पर भीतरसे महादुष्ट जान पड़ता है उसीप्रकार ये भोग भी भोगते समय तो मधुर जान पड़ते हैं परन्तु अन्तमें ये महादुःखदायी होते हैं। भुजंग जिसप्रकार महादुष्ट होता है उसी प्रकार ये भोग भी महा दुष्ट हैं। भुजंग जिसप्रकार काटते ही शीघ्र प्राणोंका नाश करनेवाला है उसी प्रकार ये भोग भी प्राणोंका नाश करनेवाले हैं। भुजंगकी उत्पत्ति जिसप्रकार महत्त्न् कष्टपूर्वक होती है उसी प्रकार विषय भोगोंकी प्राप्ति भी अनेक प्रकारके दुःखोंको झेल कर ही होती है। भुजंगका काटना जिस प्रकार अनेक प्रकारके दुःखोंका कारण होता है उसीप्रकार ये विषय भोग भी अनन्ते दुःखोंके कारण हैं। सर्प जिसप्रकार अत्यन्त चंचल होता है उसीप्रकार ये भोग भी अत्यन्त चंचल हैं क्षणभरमें आने जाने

ज्वालसंकुले ॥ ८६ ॥ विष्ठादिनिचिते निंद्ये पूतिगंधे यमाश्रमे। अनित्ये कः सुधीः स्थातुमिच्छेत्कायकुटीरके ॥ ८७ ॥ श्वभ्रवाडवगंभीरे कृत्स्ना-
शर्माम्बुपूरिते। रोगमत्स्यादिसंकीर्णे पचाक्षतस्करान्विते ॥ ८८ ॥ जन्ममृत्युजरावायुसकुले ऽतिभयानके। चचले विषमे घोरेऽसारे पारातिगेऽशुभे
॥ ८६ ॥ अनन्तेऽनादिससारे पारागारे निरन्तरं। मज्जनोन्मज्जनं कुर्युर्धर्मपोताद्दृतेऽगिन. ॥ ६० ॥ प्रातर्दर्भदलाग्रस्थविंद्वाभ जीवित नृणा। वलकायाक्ष

वाले हैं। भुजंग जिसप्रकार किसीको संतोष प्रदान नहीं कर सकता उसीप्रकार ये भोग भी किसी प्रकार का संतोष उत्पन्न नहीं कर सकते। जितने जितने अधिक भोगे २ जाते हैं उतनी २ ही अशांति बढ़ती चली जाती है। भुजंग जिस प्रकार क्रूर होता है और सदा क्रूर कर्मोंका करनेवाला होता है उसीप्रकार ये विषय भोग भी अत्यन्त क्रूर हैं और इनको भोगनेसे सर्वदा महा क्रूर कर्मोंका आस्रव होता रहता है। भुजंग जिसप्रकार शरीरके कदर्थनसे उत्पन्न होते हैं उसीप्रकार ये विषय भोग भी शरीरके कुत्सित आचरणसे पैदा होते हैं। इनके भोगनेसे शरीरका सर्वनाश होता है इसलिए ऐसे महा दुःखदायी भोगों का वुद्धिमान कभी सेवन नहीं कर सकता ॥ ८४—८५ ॥ यह शरीररूपी झोपडा माताके रज और पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। हड्डी मज्जा आदि सात धातु स्वरूप है। महा अशुभ है। भूख प्यास काम वृद्धावस्था क्रोध और अनेक प्रकारके रोगोंको ज्वालाओंसे व्याप्त है तथा विष्टादि महा अपवित्र पदार्थोंका घर है। अत्यन्त निंदनीय है। पीव सरीखी सड़ी इससे दुर्गंधि छूटती रहती है। यमराजका आश्रम है—जिस समय यमराजका प्रकोप होता है तत्काल इसे खाखमें मिल जाना होता है और क्षणभरमें विनाशीक है ऐसे इस शरीररूपी झोपड़ेमें विद्वान कभी ठहरनेकी लालसा नहीं कर सकता और न वह शरीरको ही सर्वस्व मानकर इत्र तेल आदिसे उसकी सेवाकर सकता है ॥ ८६—८७ ॥ यह संसार जिसकी आदि है न अन्त है ऐसा विशाल समुद्र है क्योंकि जिस प्रकार समुद्रमें वड़वानल होती है उसीप्रकार इस संसारमें भी घोर नर्क-रूपी वड़वानल मौजूद है—नर्कोंमें जाकर नारकी सदा अग्निके भयानक कुण्डोंमें जलते पजलते रहते हैं अतएव यह संसार समुद्रके समान गंम्भीर है। तथा जिसप्रकार समुद्रमें अनगिणित जल होता है उसी प्रकार यह संसार भी समस्त प्रकारके अकल्याणरूपीजलसे भरा हुआ है। जिस प्रकार समुद्रमें वड़े २ मत्स्य

सामग्री शंपेव चचलाऽशुभा ॥ ६१ ॥ प्रतिक्षण सतामायुर्हीयते समयादिभि । न्यस्त जल यथा हस्ते छिद्रे च यौवनादिकं ॥ ६२॥ क्षीयते यावदायुर्न शक्तिश्च यौवनोद्यम. । पटूनि यावदक्षाणि यावन्न ढौकतेजरा ॥ ६३ ॥ तावत्कार्यं तपोघोर मुक्तिश्रीचितरंजनं । दीक्षामादाय सछिद्य मोहपाशं मुमुक्षुभि ॥६४॥ इत्यादिचिंतनात्प्राप्य सवेग द्विगुण हृदि । भवागभोगगेहादौ दीक्षादानमना नृप ॥ ६५ ॥ निराकाक्षी स्वराज्यादौ साकाक्षो मुक्ति

होते हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी भयंकर:रोगरूपी मत्स्योंसे खचाखच भरा हुआ है। जिस प्रकार जहाजों को लूटनेके लिए समुद्रमें चोर डाकुओंका जमघट्ट रहता है उसी प्रकार इस संसारमें भी समस्त जीवोंको लूटनेवाले पांच इन्द्रियरूपी पांच चोर हैं इनके जालमें फंसकर निरंतर जीव ठगे जाते हैं। जिसप्रकार समुद्र भयंकर पवनसे व्याप्त रहता है उसी प्रकार यह संसार भी जन्म मरण और बुढ़ापारूपी तीव्र पवनके झकोंरोंसे व्याप्त है। समुद्र जिस प्रकार महाभयानक होता है उसी प्रकार यह संसार भी महाभयानक है। समुद्र जिसप्रकार महा चंचल महा विषम महा घोर और असार होता है उसीप्रकार यह संसार भी महाचंचल महाविषम महा घोर और निस्सार है। जिसप्रकार समुद्रका पार पाना कठिन है उसी प्रकार इस संसार समुद्रका भी जल्दी पार नहीं पाया जा सकता। एवं समुद्र जिसप्रकार अशुभ है उसीप्रकार यह संसार भी महा अशुभ है। संसारमें रुलनेवाले जीव कभी शुभ-गतिकी प्राप्ति नहीं कर सकते। ऐसे इस महाभयानक संसारमें धर्मरूपी जहाजमें न बैठनेवाले ये दीन जीव निरन्तर डूबते और उछलते रहते हैं ॥ ८८—९० ॥ प्रातःकालमें दर्भ—दाभकी अनीपर लगी हुई जलकी बूंद जिसप्रकार चंचल है थोड़ी ही देरमें विनश जानेवाली है उसी प्रकार यह मनुष्योंका जीवन भी विनाशीक है. जल्द नष्ट हो जानेवाला है जिसप्रकार बिजली अत्यन्त चंचल पदार्थ है क्षणभरमें विनस जानेवाला है उसीप्रकार मनुष्योंकी सामर्थ्य शरीर इंद्रियोंकी सामग्री अत्यंत चंचल है—देखते २ विनष्ट हो जानेवाली है तथा अशुभ कर्मका कारण होनेसे यह अशुभ है ॥ ९१ ॥ समय आदि कालक भेदोंसे प्रतिक्षण मनुष्योंकी आयु क्षीण होती रहती है तथा जिस प्रकार छिद्रयुक्त हाथमें रक्खा हुआ जल प्रतिक्षण गिरता रहता है उसी प्रकार मनुष्योंके यौवन आदि भी प्रतिक्षण नष्ट होते रहते हैं ॥९२॥ इसलिये जो पुरुष मोक्षाभिलाषी हैं— मोक्षके अविनाशी सुखका अनु-

साधने। अगाद् गृहमनुप्रेक्षा. संचितयन्मुहुर्मुहु ॥ ६६ ॥ प्रदाय विधिना राज्य सतां त्याज्यं स्वसूनवे । स्वभूतिं तृणव ययौ त्यक्त्वा श्रीनागपर्वतं ॥६७॥ नृपोत्तमे सम राजा तत्र श्रीनागयोगिनं । नागपाशोपमं सर्वकषायाक्षारिबंधने ॥ ६८ ॥ त्रिःपरीत्य प्रणम्योच्चैर्मूर्ध्ना पीत्वा वृषामृतं। यत्यास्यैंदुभव हित्वा मोहाग्नि सोऽभवत्सुखी ॥ ६६ ॥ ततो वाह्यातरं संगं त्रिशुद्ध्या परित्यज्य स.। राजभिर्बहुगि सार्धं प्रवव्राज महीपतिः

भव करना चाहते हैं उन्हें जब तक आयु क्षीण न होजाय, बराबर कार्य करनेकी सामर्थ भी रहै, यौवन अवस्था भी शरीरमें जाज्वल्यमान रहै, अपने अपने विषयोंके ज्ञान करानेमें इन्द्रियां भी सबल रहैं और जब तक बृद्धावस्था शरीरपर अपना भाव न डाले उसके पहिले ही गृहरूपी पाशका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये एवं दिगम्बर जेनेंद्री दीक्षा धारण कर मोक्षरूपी लक्ष्मीके चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाला घोर तप तपना चाहिये ॥ ६३—६४ ॥

राजा वैश्रवणको वटवृक्षके अकस्मात् जल जानेसे संसार शरीर भोग और गृह आदिसे वैराग्य तो हो ही गया था परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे उनके स्वरूपका विचार करनेसे और भी उसे दूना वैराग्य हो गया। संसार शरीर आदि पदार्थोंसे उसका सर्वथा ममत्व छूट गया एवं दिगम्बरी दीक्षा धारण करनेके लिये उसने पूर्णरूपसे चित्तमें ठान ली ॥ ६५ ॥ वह राजा अपने राज्य आदिसे निराकांक्ष—विमुख हो गया और मुक्ति लक्ष्मीके सिद्ध करनेकेलिये उसकी पूरी २ अभिलाषा होगई। बड़के वृक्ष के पाससे प्रतिक्षण अनित्य अशरणआदि बारह भावनाओंका ही बारंबार चिंतवन करताहुआ राजमहलतक पहुंचा ॥ ६६ ॥ राजमहलमें पहुंच कर राजा वैश्रवणने सज्जनों को सर्वथा छोड़ने योग्य ऐसे राज्यको अपने पुत्रके लिये प्रदान किया एवं जीर्ण तृणके समान अपने समस्त ऐश्वर्यका सर्वथा परित्यागकर वह श्रीनागपर्वतकी ओर चल दिया। श्रीनागपर्वतपर समस्त कषाय और इन्द्रियों के बांधनेमें सर्वथा नाग पाशके समान अर्थात् जिनके पास कषाय-और इन्द्रियोंके विषयकी लोलुपता फटकने तक नहीं पाती थी ऐसे श्रीनाग नामके मुनिराज विराजमान थे। अनेक बड़े बड़े राजाओंके साथ राजा वैश्रवण उनके पास गया भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। मुनिराजके मुखरूपी चंद्रमासे झरनेवाला धर्मरूपी अमृत पीया जिससे उसकी

॥ १०० ॥ इति सुकृतविपाकाद्धर्मकर्मार्थसारान्निखिलवरसुखाब्धीन् संभजित्वा मुमुक्षु । पुनरपि शिवसिद्ध्यै स्वीचकाराशु दीक्षा सकलसुखखनि
य सोऽत्र नद्यान्मुनीश ॥ १०१ ॥ येनोच्चैः प्रविधाय सद्व्रतमहो रत्नत्रयाख्य पुरा भुक्त्वा सौख्यमहर्निश नृजनित दिव्याहमिन्द्रोद्भव । तीर्थेशत्व-
मवाप्य घोरतपसा मुक्त्यंगना स्वीकृता बालत्वेऽपि स मल्लिनाथजितनपो दद्यात्स्वशक्ति यम ॥ १०२ ॥

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते वैश्रवणनृपदीक्षावर्णनो नाम द्वितीय परिच्छेद ॥ २ ॥

मोहरूपी अग्नि शांत हो गई और वह अपने को सुखी अनुभव करनेलगा। उसी समय उसने मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर दिया एवं अनेक राजाओंके साथ उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण करली ॥ ९७—१०० ॥

जिन मुनिराज वैश्रवणने पहिले तो तीव्र पुण्यके उदयसे समस्त उत्तम सुखके समुद्रस्वरूप सारभूत धर्मकार्यों को किया पीछेसे "अविनाशी अनुपम मोक्ष सुख प्राप्त हो जाय," इस अभिलाषासे समस्त सुखोंकी स्थान स्वरूप जैनेश्वरी दीक्षा धारण की वे मुनियोंके शिरोमणि मुनिराज वैश्रवण चिरकाल इस संसार में जयवंते हो कर वृद्धिको प्राप्त हों ॥ १०१ ॥ जिन पवित्र भगवान मल्लिनाथने पहिले तो रत्नत्रय नामका परम पावन व्रत पालन किया पीछे रात दिन मनुष्यलोकके उत्तमोत्तम भोग भोगे । तीर्थंकर पद प्राप्त किया एवं बाल अवस्थामें ही घोर तपके द्वारा मोक्षरूपी स्त्रीको स्वीकार किया वे मल्लिनाथ जिनेन्द्र हमें अपनी दिव्य शक्ति प्रदान करें ॥ १०२ ॥

भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ विरचित वचनिकामें रत्नत्रयका दूसरा परिच्छेद सपूर्ण हुवा ।



तृतीयः परिच्छेदः ।

घातिकर्मारिहंतारमनंतगुणवारिधिं । त्रिजगत्सेवितं नौमि श्रीमल्लिं तद्गुणाप्तये ॥ १ ॥ अथासौ निःप्रमादेन, विनयेन स सद्धिया । एकादशाङ्गसिद्धान्ताब्धेः पारमगमन्मुनिः ॥ २ ॥ अनाच्छाद्य स्वसामर्थ्यं द्विषड्भेदं तपोऽनघं । दुःकर्मारामदावानलं कुर्यात्प्रत्यहं यतिः ॥ ३ ॥ शून्यागारे श्मशाने वा गुहाद्रौ वा वनादिषु । सिंहवच्च वसेन्नित्यं निर्जने तरुकोटरे ॥ ४ ॥ ध्यानाध्ययनकर्माणि निःप्रमादो जितेन्द्रियः । विधत्तेऽत्रानिशं नैव स्वप्नेऽपि

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय नामक चार घातिया कर्मरूपी वैरियोंको जड़से उखाड़ कर फेंक देनेवाले, अनंत गुणोंके समुद्र एवं तीनोंलोकके जीव भक्तिपूर्वक जिनकी सेवा और पूजा करते हैं ऐसे भगवान श्रीमल्लिनाथको मैं उनके अनुपम गुणोंकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ समस्त प्रकारके प्रमादोंको छोड़कर विनय पूर्वक मुनिराज वैश्रवणने अंगोंका अध्ययन करना प्रारंभ कर दिया और थोड़े ही दिनोंमें वे मुनिराज अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे ग्यारह अंगस्वरूप सिद्धांत समुद्रके पारको प्राप्त होगए अर्थात् उन्हें ग्यारह अंगोंका परिपूर्ण ज्ञान हो गया ॥ २ ॥ वे परम धीर वीर मुनिराज अपनी सामर्थको न छिपाकर प्रतिदिन बारह प्रकारके तपोंको तपने लगे जो तप निर्दोष थे और दुष्कर्मरूपी वनको भस्म करनेकेलिये दावानलके समान थे ॥ ३ ॥ वे मुनिराज शून्य खंडहरोंमें श्मशान भूमियोंमें पर्वतकी गुफाओंमें और जनशून्य वृक्षोंकी खोलारोंमें सिंहके समान निर्भय होकर निवास करते थे ॥ ४ ॥ स्पर्शन आदि इन्द्रियोंपर परिपूर्णरूपसे विजय पाने वाले और प्रमादरहित वे मुनिराज सदा उत्तम ध्यान और अध्ययनमें प्रवृत्त रहते थे और स्वप्नके अंदर भी वे राजकथा आदि विकथाओंका उल्लेख

१ । छह प्रकारका बाह्य और छह प्रकारका अभ्यन्तर इसप्रकार तपके बारह भेद हैं अनशन अवमोदर्य वृत्तिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह भेद बाह्य तपके हैं और प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय और व्युत्सर्ग ये छह भेद अभ्यन्तर तपके हैं मिलकर तप बारह प्रकारका है । तत्त्वार्थ सूत्र अ० ९ सू० १९—२० ॥

विकथादिकान् ॥ ५ ॥ स्थिरचित्तेन नित्यं स धर्म्यशुक्लानि मुक्तये - सद्ध्यानानि करोत्येव नासद्ध्यानानि जातुचित् ॥ ६ ॥ ग्रामखेट मटंबारण्य-देशाद्रि वनादिषु । एकाकी वायुवन्नित्यं विहरत्येव धीरधी ॥ ७ ॥ शंकादिदोपनिर्मुक्ता निःशंकादिगुणांकिता । तत्त्वार्थश्रद्धया सोऽस्याद्दर्शनस्य-

नहीं करते थे ॥ ५ ॥ आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्लके भेदसे ध्यानके चार भेद माने जाते हैं इनमें आदिके ध्यान निंदित हैं क्योंकि उनसे निंदित गतियोंकी प्राप्ति होती है और अंतके धर्म्य और शुक्ल ये दो ध्यान प्रशस्त हैं क्योंकि उनसे स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त होते हैं। वे मुनिराज वैश्रवण मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा चित्तको स्थिरकर उत्तम ध्यान—धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यानका ही चिंतवन करते थे, आर्त ध्यान और रौद्र ध्यानरूप अशुभ ध्यानोंका कभी भी अपने चित्तमें विचार न लाते थे ॥ ६ ॥ वे धीर बुद्धिके धारक मुनिराज जिसप्रकार पवन सर्वत्र अकेला विचरता रहता है उसी प्रकार गांव खेट मटंब जंगलके प्रदेश पर्वत और वन आदिमें अकेले ही विहार करते फिरते थे, निर्भयवृत्तिके कारण किसीका भी संग नहीं चाहते थे ॥७॥

दर्शनविशुद्धि १ विनयसंपन्नता २ अतीचार रहित शीलव्रतोंका पालना ३ सर्वदा ज्ञानाभ्यास करना ४ संवेग रखना ५ शक्तिके अनुसार दान करना ६ शक्तिके अनुसार तप तपना । ७ साधुसमाधि ८ वैयावृत्य करना ९ अर्हंत भगवानकी भक्ति करना १० आचार्य भगवानकी भक्ति करना ११ शास्त्रोंके बहुत जानकार उपाध्योंकी भक्ति करना १२ प्रवचनकी भक्ति करना १३ छह आवश्यकोंका पालन करना १४ मोक्ष मार्ग की प्रभावना करना १५ और वात्सल्यभाव रखना १६ ये सोलह भावना हैं। इन सोलह प्रकारकी भावनाओंके भानेसे तीर्थंकर पदकी प्राप्ति होती है मुनिराज वैश्रवणने भी इसप्रकार सोलह भावनाओंका भाना प्रारंभ कर दिया—

मुनिराज वैश्रवणका जीवादिपदार्थोंका श्रद्धान, शंका कांक्षा आदि दोषोंसे रहित था एवं निःशंकितत्व और निकांक्षितत्व आदि गुणोंसे भूषित था इसलिए सदा सम्यग्दर्शनके अंदर विशुद्धता रहने के

१ । दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥ २४ ॥ अ० ६ । तत्त्वार्थसूत्र ।

विशुद्धिता ॥ ८ ॥ दर्शनज्ञानचारित्रतपसां तद्वतां सदा। हृदा च वपुषा वाचा मुक्त्यै स विनयं भजेत् ॥ ९ ॥ शीलव्रतसमूहं निरतिचारं स पालयेत्। निरंतरं श्रुतज्ञान पठेत्सपाठयेत्सता ॥ १० ॥ देहभोगभवादौ स संवेगं चिंतयेद्धृदि। सिद्धांतादिमहादानं दत्तेऽ न्यनुग्रहाय सः ॥ ११ ॥ शक्त्या खिलतपास्येव करोति कर्महानये। साधूनां स समाधिं च प्रत्यूहपीडितात्मनां ॥ १२ ॥ सूर्यादियोगिनां वैयावृत्त्यं स दशधा भजेत्। अर्हदाचार्य

कारण उनके दर्शन विशुद्धि भावना थी ॥ ८ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और तप इन चारों आराधनाओंका तथा इन चारों प्रकारकी आराधनाओंको पालन करनेवालोंका वे अच्छी तरह विनय करते थे इसलिये उनके विनय भावनाका पालन था ॥ ९ ॥ किसी प्रकार शीलव्रतोंमें अतीचार न लग जाय इस रूपसे वे शीलव्रतोंका पालन करते थे इसलिये उनके अतीचाररहित शीलव्रतोंका पालनारूप भावना थी वे श्रुतज्ञानका निरंतर अध्ययन करते थे और दूसरोंको अध्ययन कराते थे इस लिये उनके सर्वदा ज्ञानाभ्यास करनारूप भावना थी ॥ १० ॥ शरीर भोग और स्त्री पुत्र आदि समस्त संसारके पदार्थोंसे उन्हें प्रति समय संवेग रहता था। इसलिये वे संवेग भावनाका पालन करते थे अन्य मुनियोंको सिद्धान्तका रहस्य प्रदान करते थे इसलिये शक्तिके अनुसार दान देना रूप उनके भावना थी। ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंको जड़से नष्ट करनेकेलिये वे शक्तिको न छिपाकर समस्त तप तपते थे इसलिये उनके शक्तिके अनुसार तप भावनाका पालन था। मुनियोंके तपमें किसी प्रकार का विघ्न आकर उपस्थित हो जाय और उससे उनके आवश्यक कर्ममें किसी प्रकारकी रुकावट उपस्थित हो जाय तो उनका समाधान कर देना समाधि है। मुनिराज वैश्रवण अच्छी तरह साधुओंको समाधि करते थे इसलिये वे पूर्णरूपसे साधुसमाधि नामक भावनाके पालक थे ॥ ११—१२ ॥ आचार्य १ उपाध्याय २ तपस्वी ३ शैक्ष्य ४ ग्लान ५ गण ६ कुल ७ संघ ८ साधु ९ और मनोज्ञ १० इसप्रकार ये दश भेद साधुओंकेहोते हैं। इन दश प्रकारके साधुओंको दुःख

१ मुनिगणतप सधारण समाधिः भाडागाराग्निप्रशमनवत् । ८ ॥ जिसप्रकार अन्न आदिसे परिपूर्ण कोठारमें किसी कारण से आग लग जाय तो उसका बुझना अत्यन्त उपकारका करनेवाला है इस बुद्धिसे वह बुझा दी जाती है उसीप्रकार अनेक प्रकार के व्रत और शीलोंके पालन करनेवाले साधुओंके तपमें यदि किसीरूपसे विघ्न उपस्थित हो जाय तो उसे दूरकर साधुओंका समाधान कर देना साधुसमाधि है रा० वा० २६६।'

वर्याणां सोऽधाद्भक्तिनियोगतः ॥ १३ ॥ वपुश्च तपता भावैः प्रवचनस्य श्रुतासये। मनोवाक्काययोगैस्य भक्तिं मुक्तिसखीं व्यधात् ॥ १४ ॥ प्रमादेन विना योगी षडावश्यकपूर्णता। काले काले करोत्येव तद्धानिं न च जातुचित् ॥ १५ ॥ जिनशासनमाहात्म्यं व्यक्तीकुर्यात्सपश्चिदा- वत्सलत्व

उपस्थित होनेपर उस दुखके दूर करनेकी इच्छासे जो टहल चाकरी करना है वैयावृत्य करना रूप भावना मुनियोंकी बड़े प्रेम से टहल चाकरी करते थे इसलिये वैयावृत्यकरण नामकी भावनाका भी उनके अखंड-रूपसे पालन था। वे मुनिराज मन वचन और कायकी शुद्धि रखकर अर्हंत और आचार्योंकी पूर्णभक्ति करते थे इसलिये उनके अर्हंत भगवानकी भक्ति और आचार्य भगवानकी भक्ति ये दोनों भावनायें भी अखंडरूपसे थी। वे मुनिराज श्रुतज्ञानकी प्राप्तिकेलिये बहुत शास्त्रोंके जानकार उपाध्यायोंकी और शास्त्रों की भी मन वचन कायरूप योगोंकी शुद्धतासे मोक्षरूप स्त्रीको सखीस्वरूप अखंड भक्ति करते थे इसलिये उनके वह श्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति नामको भी दोनों भावनाओंका अखंडरूपसे पालन था ॥ १४ ॥ सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ और कायोत्सर्ग ६ ये छह भेद आवश्यक क्रियाओंके माने है। जहांपर हिंसादि समस्त पापयोगोंकी निवृत्ति है वह सामायिक नामका आवश्यक है। चोवीसों तीर्थकरोंके गुणोंका कीर्तन करना चतुर्विंशति स्तव नामका आवश्यक है। मन वचन कायकी शुद्धि रखना दोनों प्रकारकेआसनोका उपयोगमें लाना, चारों दिशाओं में चार वार मस्तक का झुकाना और प्रत्येक दिशामें तीन तीनके भेदसे वारह आवर्त करना वंदना है, भूतकालमें लगे हुए दोषोंका परिहार करना प्रति क्रमण, भविष्यतमें लगनेवाले दोषोंका परिहार करना प्रत्याख्यान एवं कुछ परिमित कालका संकल्पकर "यह मेरा है" इस रूपसे शरीरसे ममत्वबुद्धिका त्याग करदेना कायोत्सर्ग है। वे मुनिराज परमादको सर्वथा दूर कर जिस आवश्यक क्रियाका जिस समयमे विधान था उसी समयमें परिपूर्ण रूपसे करते थे किंतु किसी आवश्यक क्रियाको हानि वे कभी नही करते थे इस रूपसे छहो आवश्यकोंका पालन होनेसे वे 'छह आवश्यकोंका नियमसे पालना, नामकी भावनाको अच्छीतरह पालते थे ॥ १५ ॥ वे मुनिराज नाना प्रकारके उग्रतपोंको तपकर भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य भी

विधत्ते प्रवचनस्य च द्वग्जुषां ॥ १६ ॥ एतानि कारणान्येव तीर्थकृन्नामकर्मणः । भावयामास 'सिद्धयै त्रिशुद्धया हृदि स षोडश ॥ १७ ॥ तेषां माहात्म्ययोगेन तीर्थकृत्कर्म सोऽद्भुत । ववंधानतशर्माब्धिं त्रैलोक्यक्षोभकारणं ॥ १८ ॥ पालयन्निरतीचारान् सर्वान् मूलगुणान्मुनि'। अनेकर्द्धि-समूह स प्रापोग्रतपसा चिदा ॥ १६ ॥ तपस्यन् सुचिर ज्ञात्वा स्वल्पायुरतिदुर्लभ । नतोऽते स समाध्यादिसिद्धये सन्यासमाददो ॥ २० ॥ सम्यक्त्वज्ञानचात्ररितपसा मुक्तिदायिना । आराधना. परा आराधयत्येवाघहानये ॥ २१ ॥ सर्वान् परोषहान् जित्वा सत्त्वोत्साहबलाद् वली

अच्छीतरह प्रदर्शन करते थे इसलिये मार्ग प्रभावना नामकी भावनाका भी उन के अच्छीतरह पालन होता था तथा सम्यग्दृष्टि पुरुषोंमें गाय वच्छाके समान प्रेम रखना प्रवचनवत्सलत्व नामकी भावना है । वे मुनिराज साधर्मी भाइयोंमें गौ वच्छाके समान अत्यन्त प्रेम रखते थे इसलिये प्रवचनवत्सलत्व नामकी भावना भी उनके अखंडरूपसे पालन था ॥ १६ ॥ इसप्रकार वे मुनिराज वैश्रवण तीर्थंकर नाम प्रकृतिके असाधारण कारण दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं के मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक सदा अपने मनमें भाते रहते थे ॥ दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके भाने से उनके अनंते कल्याणोंका करनेवाला और तीनों लाकको खलवला डालनेवाला तोर्थंकर प्रकृति का बंध वंध गया ॥ १८ ॥ सर्वथा अतीचारोंसे रहित समस्त मूलगुणोंको पालन करनेवाले उन मुनिराज वैश्रवणके सम्यग्ज्ञानपूर्वक उत्तम तप तपनेसे अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंका समूह प्रकट हो गया । इस प्रकार बहुत काल तक तप करते करते मुनिराज वैश्रवणको यह ज्ञान हो गया कि मेरी आयु बहुत ही कम रह गई है और इसप्रकारकी उत्तम आयुका पाना दुर्लभ है उन्होंने अन्तकालमें समाधि आदिकी सिद्धिके लिये निर्मल परिणामोंसे सन्यास धारण कर लिया ॥ १६—२० ॥

उन मुनिराजने समस्त पापोंके नाशके लिये साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान

१ राजवार्तिक पृष्ठ संख्या २६६ । २ वत्से धेनुवत्सधर्मणि स्नेह' प्रवचनवत्सलत्व ॥ १३ ॥ पृष्ठ संख्या २६७ । ३ अहिंसा आदि पाच महाव्रतः ईर्या आदि पाच समिति, पाँचों इन्द्रियोंका दमन, ऊपर कहे छह आवश्यक २१ यावाज्जीव, स्नानका त्याग २२ भूमिपर शयन २३ वस्त्रत्याग २४ केशलोंच २५ एक बार लघु भोजन २६ दतधावन नहीं करना २७ और खडे होकर आहार २८ ये अट्ठाईस मूलगुण हैं।

कृशदेहोऽपि धत्ते न मानक् क्लेशं क्षुधादिभिः ॥ २२ ॥ आर्तरौद्रद्वयं हत्वा धर्म्यशुक्लात्तमानसः । स्थिरचित्तेन योगी स महाध्यानं सदा भजेत् ॥ २३ ॥ ध्यानमादौ करोत्येष पचानां परमेष्ठिनां । मनःशुद्ध्यै च तत्त्वानामानुप्रेक्षादिचिंतकः ॥ २४ ॥ ततः स्थिरमना ध्यानी चिदानंदमयं परं । अनंतगुण-कर्तारं ध्यायेत्स्वात्मानमजसा ॥ २५ ॥ तेन ध्यानेन योगींद्रः प्रसन्नमनसा दश । प्राणान्विश्वहितानते विससर्ज समाधिना ॥ २६ ॥ रत्नत्रयतपोयोगमहापुण्योदयात्ततः । सोऽनुत्तरविमानेषु ह्यपराजितनामनि ॥ २७ ॥ शिलासपुटमध्यस्थे दिव्ये पल्यंककोमले । शुक्लरत्नहतध्वान्ते अहमिंद्रो

सम्यक्चारित्र और तप इन चारों आराधनाओंका भक्तिपूर्वक बड़े उत्साहसे भावन किया ॥ २१ ॥ क्षुधा तृषा शीत उष्ण आदि समस्त परिषहोंको उत्साह और बलसे जीतनेके कारण यद्यपि उन मुनिराजका शरीर नितांत कृश हो गया था तथापि भूख प्यास आदिके कारण उनके चित्तमें रचमात्र भी क्लेश न था, परमात्मपदकी प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा उनका चित्त प्रसन्न रहता था ॥ २२ ॥ मुनिराज वैश्रवणके चित्तसे आर्त और रौद्र ध्यान सर्वथा नष्ट हो चुके थे सदा धर्मध्यान और शुक्लध्यानका ही चिंतवन था इसलिये चित्तको स्थिरकर वे सदा इन्हीं दोनों प्रशस्त ध्यानोंका चिंतवन करते रहते थे निंदित ध्यानकी ओर स्वप्नमें भी उनकी दृष्टि नहीं जाती थी ॥ २३ ॥ अनित्य अशरण आदि बारह भावनाओंके चिंतवन करनेवाले वे मुनिराज मनकी विशुद्धताके लिये सबसे पहिले अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्व साधु इन पाचों परमेष्ठियोंका ध्यान करते थे, पश्चात् जीव अजीव आदि तत्त्वोंका ध्यान करते थे ॥ २४ ॥ पांचों परमेष्ठि और तत्वोंके चिंतवनके बाद वे मुनिराज मनको सर्वथा निश्चल कर चिदानंद चैतन्य स्वरूप और अनंत गुणोंके स्थान अपनी आत्माका भले प्रकार ध्यान करते थे ॥ २५ ॥ स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्र ये पांच इंद्रियां मनोबल वचनबल और कायबल ये तीन बल एवं श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण हैं। इसप्रकार ध्यान करनेवाले योगियोंके इंद्र मुनिराज वैश्रवणने प्रसन्न चित्त होकर अंतमें समाधिके द्वारा समस्त लोगोंका हितकारी इन दश प्राणोंका परित्याग किया ॥ २६ ॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और तपके संबंधसे मुनिराज वैश्रवणके महा पुण्यका उदय हो चुका था इसलिये उस तीव्र पुण्यके उदयसे उन्होंने विजय वैजयंत जयंत अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये जो पांच अनुत्तर विमान हैं उनमें चौथे

बभूव हि ॥ २८ ॥ घटिकाद्वयकालेन प्राप्य संपूर्णयौवनं । दिव्यस्रग्वस्त्रभूषाढ्यं दिव्यं त्यक्तोपमं महत् ॥ २९ ॥ उत्थाय शयनाद्देवो वीक्षते स्म दिशोऽखिला । चाहमिंद्रविमानानि । महर्द्धीन् विस्मिताशय ॥ ३० ॥ ततोऽप्यनतरं प्राप्यावधिज्ञानं स तत्क्षण । तेनाज्ञासीद्धि सर्वं प्राग्जन्मव्रततप.-फल ॥ ३१ ॥ अहो पश्य व्रतस्येद माहात्म्यमद्भुतोदयं । अत्रेति हृदि सचित्य धर्मे दध्यात्परा मति ॥ ३२ ॥ ततोप्यादौ जिनागारे गत्वानेकर्धि-सकुले । अहमिंद्रैः सम दिव्यसामग्र्या श्रीजिनेशिना ॥ ३३ ॥ महामह चकारोच्चैः सकल्पोत्पन्नवस्तुभि । निरोपम्यैर्महानीरादिफलान्तैर्मनोहरैः ॥

अपराजित विमानमें जन्म लिया एवं वहां पर शिलाके मध्यभागमें एक अत्यंत दिव्य कोमल सेज बनी हुई है जो कि अपने महा उज्वल सफेद रत्नोंकी प्रभासे समस्त अंधकारको नष्टकरनेवाली है उस कोमल सेज पर उत्पन्न हो अहमिंद्र पदका लाभ किया ॥२७-२८॥ अपनी उत्पत्ति कालके दो घड़ी बाद उस अहमिंद्रने भूषित, दिव्य, अनुपम और महान ऐसी पूर्ण दिव्यमाला वस्त्र और यौवन अवस्थाको प्राप्त भूषणोंसेकिया हो । इसके बाद महान ऋद्धिका धारी वह अहमिंद्र देव उस अनुपम सेजसे उठा औरआश्चर्यसे विस्मित उसने समस्त दिशा और अहमिंद्रोंके विमानोंका बड़े ध्यानसे देखा । उसके बाद उसे क्षणभरमें अवधिज्ञान प्राप्त हो गया एवं "पहिले जन्ममें मैने रत्नत्रय व्रत और उत्तम तपका आचरण किया था उसका यह फल है ।" ऐसा अवधिज्ञानके बलसे जान लिया जिससे इसका समस्त आश्चर्य दूर हो गया ॥ ॥ २९—३१ ग्रंथकार उपदेश देते हैं कि व्रतका महात्म्य बड़ा ही आश्चर्यकारी है देखो ! कहां तो राजा वैश्रवणका जीव मुनि अवस्थामें था और कहां जाकर अपराजित नामके अनुत्तर विमानमें महान् ऋद्धिका धारक अहमिंद्र हो गया इसलिये सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे यह परम आश्चर्यकारी व्रतका माहात्म्य अच्छीतरह विचारकर सदा अपनी उत्कृष्ट बुद्धिको धर्मके अंदर ही लगावें—किसी भी अवस्थामें धर्मके स्वरूपको न विसारें ॥ ३२ ॥ जिस समय उस अहमिंद्रको अपने स्वरूपका पूर्णरूपसे ज्ञान हो गया वह सबसे पहिले भगवान जिनेंद्रके मंदिरमे गया और वहां स्मरण करते ही सामने आनेवाली अनुपम मनोहर ऐसी जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप

१ पचवि इंदियपाणा मनवचकायेण तिण्णि बलपाणा । आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेव हुति दहपाणा ॥ यह गाथा मूल प्रतिकी टिप्पणीमें है इसका अर्थ ऊपर लिखा है ।

॥ ३४ ॥ भक्त्या नुतिस्तवाद्यैश्च विधायोत्सवमद्भुतं ।उपार्ज्य बहुधा पुण्यं निजस्थानमगात्तत ॥३५॥ विशुद्धे स्फाटिके रम्ये विमानेऽत्यंत-सुंदरे । विश्वर्द्धिसंकुले सारे संख्ययोजनविस्तरे ॥ ३६ ॥ सद्वनोपवनादौ च क्रीडाद्रौ तुंगधामनि । अहमिंद्रैः समं सोऽत्र रमतेस्म क्वचिन्मुदा ॥ ३७ ॥ अहमिंद्रैरनाहूतमिलितैः सार्धमात्मवान् । क्वचित्स कुरुते गोष्ठी महाधर्मभवा परा ॥ ३८ ॥ निसर्गसुन्दरे तत्रास्थानेऽतीव मनोहरे । या रतिर्जायते तेषां सा नोऽन्यत्र क्वचिद्भुवि ॥ ३९ ॥ अहमिंद्रोऽहमिंद्रोऽस्मि मत्तो नान्यो हरिर्महान् । वितर्क्योंति हृदा ते लभते स्वोन्नतिजं सुखं ॥ ४० ॥ समभोगोपभोगाढ्या सादृश्या दिव्यमूर्त्तय समज्ञानकलातेज.कांतिकल्याणसद्गुणा ॥ ४१ ॥ समप्रेमहद्धीशा समधर्मपरायणाः ।

और फलरूप दिव्य सामग्रीसे बड़ी बड़ी ऋद्धियों के धारक अहमिंद्रोंके साथ भगवान जिनेंद्रको भक्तिपूर्वक महापूजा की ॥ ३३—३४ ॥ महापूजाके बाद बड़ी भक्तिसे भगवानको नमस्कार किया । ललित शब्दोंमें स्तुति की । अत्यंत आश्चर्य करनेवाला उत्सव किया । जिससे उसे बहुत प्रकारके पुण्यकी प्राप्ति हुई पश्चात् वह अपने स्थानस्वरूप विमानमें आगया ॥ ३५ ॥ वह अहमिंद्रका जीव निर्मल स्फटिकमयी रिझानेवाले अत्यंत सुन्दर, समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त उत्कृष्ट और संख्यात योजन चौड़े अपने विमानमें उत्तमोत्तम वन और उपवन आदिमें क्रीडा पर्वतोंमें और ऊंचे ऊंचे महलोंमें अहमिंद्रोंके साथ मन मानी आनंद क्रीडा करता था, कभी कभी बिना बुलाये अपने आप आए हुए अहमिंद्रोंके साथ महाधर्म-जैनधर्मपर विचार करने वाली गोष्ठी करता था ॥ ३६—३८ ॥ स्वभावसे ही सुंदर अतएव अत्यन्त मनोहर उस विमानमें जितना उन अहमिंद्रोका घनिष्ठ प्रेम था उतना पृथिवीके अन्य किसी स्थानपर उनका प्रेम न था ॥ ३९ ॥ वहांपर अहमिंद्रः, अहमिंद्रः, अर्थात् मैं इन्द्र हूं मुझसे बढ़कर कोई भी इन्द्र नहीं, सदा ऐसा विचार हृदयमें उछलता रहता है इसलिये सर्वदा ऐसा मनके अंदर विचार रखनेसे वे अपनी उन्नतिसे उत्पन्न स्वाधीन सुखका भोग करते हैं ॥ ४० ॥ समस्त इन्द्रोंके भोग उपभोग समान रूपसे होते हैं—रंचमात्र कमी वेशी नहीं होती । उनकी दिव्य मूर्ति भी समान होती है—जो एककी मूर्ति होगी वही दूसरेकी होगी, रंचमात्र भी उसमें भेद नहीं होसकता । समस्त अहमिंद्रोंका ज्ञान भी समान रहता है । कला पताप कीर्ति कल्याण और उत्तम गुण भी सबोंके समान ही होते हैं । सबोंका प्रेम भी समान ही होता है । महान्

समानोत्कृष्टसच्छुक्ललेश्या. शुद्धाशयान्विताः ॥ ४२ ॥ समाचरणपुण्योत्थविपाकेनातिसुंदराः । सादृश्या अहमिंद्रास्ते भवंति मुक्तिगामिन ॥ ४३ ॥ यत्सुखं जायते स्वर्गे शक्राणां देवतोद्भव । तस्मत्तेपामसंख्यातं निःप्रवीचारमेव तत् ॥ ४४ ॥ सर्वोत्कृष्टं सुखं यच्च संसारे पुण्यसंभवं।

ऋद्धियोंका स्वामीपन भी सबोंका एकसा है। धर्ममें तत्परपना भी सबोंका समान है। सदा शुद्ध आशय रखनेवाले उन अहमिंद्रोंके उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या भी समान है तथा समानरूपसे चारित्रके पालनेसे जायमान पुण्यके विपाकसे समस्त अहमिंद्र अत्यन्त सुन्दर होते हैं इसरूपसे समस्त अहमिंद्र सब वातोंमें समान हैं किसीमें किसी प्रकारकी हीनाधिकता नहीं तथा वे समस्त अहमिंद्र मोक्षगामी हैं अधिकसे अधिक दो वार मनुष्य भव धारण कर वे नियमसे मोक्ष चले जाते हैं ॥ ४१—४३ ॥ स्वर्गोंके अंदर जो सुख देवरूप से इन्द्रोंको प्राप्त हैं उस सुखकी अपेक्षा अपराजित विमानवासी अहमिंद्रोंका सुख असंख्यात गुणा अधिक है और वह सुख प्रवीचार—मैथुनकी अभिलाषासे रहित है अर्थात् सोलह स्वर्ग पर्यंत देवोंका सुख तो प्रवीचारजनित हैं। उनमें सौधर्म और ऐशान स्वर्गनिवासी देव मनुष्योंके समान शरीरसे मैथुन सेवन करते हैं आगेके स्वर्गोंके देवोंमें कोई कोई अपनी देवांगनाओंके स्पर्शमात्रसे हो तृप्त हो जाते हैं कोई कोई रूप देख कर तो कोई कोई भूषणोंका शब्द सुनकर एवं कोई कोई अपनी देवांगनाओंका मनमें स्मरण करनेसे ही तृप्त हो जाते हैं किंतु सोलह स्वर्गोंके आगेके देवोंमें प्रविचारका कोई संबंध नहीं वे प्रविचाररहित हैं इसलिये अपराजित विमानवासी देव भी प्रवीचाररहित दिव्य सुखके भोगने वाले हैं ॥ ४४ ॥ पुण्यसे जायमान संसारमें जो भी उत्कृष्ट सुख माना गया है वह समस्त शांतिस्वरूप और

---

१ "विजयादिषु द्विचरमाः" ॥ २६ ॥ अर्थात् विजय आदि चार विमानवासी देव द्विचरम हैं, अधिकसे अधिक दो वार मनुष्य भव [धार]ण कर नियमसे मोक्ष चले जाते हैं सर्वार्थसिद्धि विमानवासी एक भवावतारी ही है। अ० ४ तत्त्वार्थसूत्र ॥

२. कायप्रवीचारा आऐशानात् ॥ ७ ॥ अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्गनिवासी देवोंमें कायजनित प्रवीचार—मैथुन सेवन है। "शेषा. स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः" ॥ ८ ॥ अर्थात् पहिले और दूसरे स्वर्गोंके देवोंके सिवाय अन्य स्वर्गोंके देवोंमें स्पर्श आदि जनित प्रविचार है। तथा "परेऽप्रवीचाराः" ॥ ९ ॥ अर्थात् सोलह स्वर्गोंके ऊपरके देव प्रवीचाररहित हैं—उनके प्रवीचार जनित किसी प्रकारका सुख नहीं। तत्त्वार्थ अध्याय ४।

तत्सर्वं विद्यते तेषां तत्र शातातरगजं ॥ ४५ ॥ तेजः पुंजनिभं दिव्यं शरीरं तस्य विद्यते। निसर्गसुंदरं विश्वस्रग्भूषावस्त्रशोभितं ॥ ४६ ॥ हस्तोच्छ्रितिधरं रम्यं कांतिद्योतितदिङ्मुखं । पुण्यमूर्तिरिवात्यंतसुभगं विक्रियातिगं ॥ ४७ ॥ त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुः स शुभध्यानतत्परः । अस्पंदनयनो रेजे ध्यानारूढो मुनिर्यथा ॥ ४८ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सहस्रोकवत्सराणां व्यतिक्रमे मनसा दिव्यमाहारमादत्तेऽतिसुखप्रदं ॥ ४९ ॥ अतिक्रांते त्रयस्त्रिंशत्पक्षाणां लभते मनाक्। उच्छ्वासं सोऽहमिंद्रोऽतिसुगंधीकृतदिग्व्रजं ॥ ५० ॥ लोकनाड्यंतरालस्थ मूर्तिं वस्तु चराचरं । सर्वं जानाति शक्रोऽसौ सावधिज्ञानचक्षुषा ॥ ५१ ॥ समर्थः स्वावधिज्ञानसमक्षेत्रे सुरोत्तम । विक्रियर्द्धिबलात्कर्तुं गमनाद्यखिलक्रिया ॥ ५२ ॥ निसर्गस्थिरचित्तोऽसौ

अंतरंगसे जायमान सुख अहमिंद्रोंके मौजूद है ॥४५॥ मुनिराज वैश्रवणके जीव अहमिंद्रका शरीर साक्षात् तेजका पुंज ही है क्या ऐसा था। स्वभावसे ही सुन्दर था एवं सब प्रकारकी माला उत्तमोत्तम भूषण और वस्त्रोंसे अत्यंत शोभित था। तथा वह एक हाथ ऊंचा था। महामनोहर था। अपनी अनुपम कांतिसे समस्त दिशाओंके मुखोंको जगमगानेवाला था, पुण्यकी साक्षत् मूर्तिके समान—अत्यंत सुभग था और विक्रियासे रहित था ॥ ४६—४७ ॥ उस अहमिंद्रकी तेतीस सागरकी आयु थी। सदा वह शुभ ध्यानमें लीन लगा रहता था और उसके नेत्र स्पंदन क्रियासे रहित निर्निमेष थे इसलिए वह ऐसा जान पड़ता था मानो ध्यान क्रियामें तल्लीन यह साक्षात् मुनी है ॥ ४८ ॥ जिस समय तीस हजार वर्ष व्यतीत हो जातीं थीं उस समय वह मनसे संकल्पित दिव्य आहार ग्रहण करता था जो कि अत्यंत सुख प्रदान करनेवाला होता था ॥ ४९ ॥ वह पुण्यात्मा अहमिंद्र जब तेतीस पक्ष बीत जाते थे तब थोड़ासा उच्छ्वास लेता था और वह इतना उत्कट सुगंधित होता था कि उसकी सुगंधिसे समस्त दिशाओंके समूह महक निकलते थे—समस्त दिशाओंमें सुगंध ही सुगंध फैल जाती थी ॥ ५० ॥ वह महाप्रतापी अहमिंद्र तीनसौ तेतालीस योजन घनाकार लोक नाड़ीके अंदर जितने स्थावर जंगम मूर्तिकपदार्थ भरे हुए हैं अपने दिव्य अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे भले लोकनाडीके अंदर का ऐसा कोई भी मूर्तिक पदार्थ वाकी नहीं बचा था जिसे वह अपने अवधिज्ञानसे न जानता हो ॥ ५१ ॥ उस अहमिंद्रके अवधिज्ञानका विषय लोकनाडी वतलाया है इसलिये जितना क्षेत्र उसके अवधिज्ञानका विषय है उतने क्षेत्र तक वह अपनी विक्रिया ऋद्धिके वलसे गमन आगमन आदि

सर्वकार्यादिवर्जित । न कुर्याद्विक्रिया जातु निराशो गमनादि च ॥५३॥ स्थानस्थोऽपि जिनेशानां कृत्रिमाकृत्रिमाणि स । ज्ञात्वा ज्ञानेन विंबानि नमति स्म निरंतरं ॥ ५४ ॥ पंचकल्याणकालेऽपि जिनेंद्राणां वृषाप्तये । प्रणामं विनयं भक्त्या कुर्यात्तत्रस्थ एव हि ॥ ५५ ॥ मुनीनां ज्ञाननिर्वाणकालं ज्ञात्वावधेर्वलात् । नमस्कारं सदा कुर्यान्मूर्ध्ना भक्तिभराङ्कित ॥ ५६ ॥ इत्यादि बहुधा धर्मं भजमानस्तथा सुखं । निमग्नस्तत्र शर्माब्धौ सोऽस्था-च्चिंतातिगो महान् ॥ ५७ ॥ अथात्र भारते क्षेत्रे महापुरुषसंभृते । वंगदेशोऽतिविख्यातो भवेद्धर्माकरो महान् ॥ ५८ ॥ यत्र पत्तनसत्खेटपुरग्रामादयो

समस्त क्रियाओंके करनेमें समर्थ था तथापि वह स्वभावसे ही स्थिर चित्तका धारक था समस्त कार्य आदि से रहित था कोई भी उसे कार्य करना न था इसलिये कभी भी विक्रिया शक्तिको काममें नहीं लाता था एवं कहीं भी जाने आनेकी उसकी इच्छा न होती थी इसलिये वह कहीं पर भी जाना आना नहीं करता था अपने निजी स्थानमें हो अनेक प्रकारकी क्रीडाओंको करता हुआ आनंदसे रहता था ॥ ५२—५३ ॥ अपने स्थान पर रहकर केवल क्रीडा कौतूहलोंमें ही वह दिन नहीं विताता था किंतु अपने अवधिज्ञानके वलसे कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंको अच्छी तरह जानकर उनमें विराजमान भगवान जिनेंद्रके प्रति-विंबोंको सदा भक्तिपूर्वक नमस्कार करता था ॥ ५४ ॥ जिस समय तीर्थंकरोंके गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाणरूप पांचों कल्याणोंका समारोह होता था उस समय भी वह पुण्यात्मा अहमिंद्र धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे तीर्थंकरोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता था और उनके गुणोंमें चित्तके अंदर बड़ी भारी विनय करता था ॥ ५५ ॥ जिस समय उसे अवधिज्ञानके वलसे सामान्य मुनियोंके ज्ञान कल्याणका भी पता लगता था उस समय उन्हें भी वह शक्तिके भारसे नम्रीभूत हो गया सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता था ॥ ५६ ॥ इसप्रकार अनेक प्रकारसे धर्मका आराधन करता हुआ वह महान् ऋद्धिका धारी अहमिंद्र कल्याणके समुद्रस्वरूप उस अहमिंद्र पदके सुखमें सदा निमग्न रहता था एवं उस समय उसे किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी पड़ी थी—वह वहां निश्चिन्त हो सुखसे काल व्यतीत करता था॥५७॥

अनेक महा पुरुषोंके स्थान स्वरूप इसी भरत क्षेत्रमें अत्यन्त मनोहर एक वंग (बङ्गाल) देश है जो कि पृथ्वीपर अत्यन्त विख्यात है धर्मका परम स्थान है और धन धान्य आदिसे समृद्ध होनेके कारण अत्यंत महान् है ॥ ५८ ॥ उस समय उसे देशके पत्तन खेट पुर और गांव आदिमें धर्मात्मा लोग निवास करते थे।

वुधैः । धार्मिकैश्च जिनागारैर्भाति धर्माकरा इव ॥ ५६ ॥ वनानि तृप्तिकर्तॄणि रम्याणि सफलानि च । भ्राजते यत्र तुंगानि यतेराचरणानि वा ॥ ६० ॥तृष्णाशर्मापनोदाश्च सवोवाप्यादयः पराः । गंभीराः शीतला स्वच्छा मुन्याशया इवाम्बु ॥ ६१ ॥ विहरंति यतीशाश्च भव्यानुग्रहकारिण । सार्धं सघाटकेनात्र धर्मवर्तनहेतवे ॥ ६२ ॥ तीर्थयात्रादिसंभूतो धर्मप्रभावनोद्भव । जिनपूजादिजो यत्रोत्सवो नित्यं प्रवर्तते ॥ ६३ ।

जगह जगह भगवान जिनेंद्रके मन्दिर जगमगाते थे इसलिये वह देश उससमय धर्मकी खानि सरीखा जान पड़ता था । इस वंग देशके स्वभाव सिद्ध वन मुनियोंसे आचार सरीखे जान पड़ते थे क्योंकि जिसप्रकार मुनियोंके आचार मनोहर आनन्दको प्रदान करने वाले होते हैं उसी प्रकार ये वन भी अत्यन्त मनोहर थे। जिसप्रकार मुनियोंके आचार फलविशिष्ट होते हैं अर्थात् स्वर्ग मोक्ष आदि फलोंके प्रदान करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वे वन भी फलविशिष्ट थे नारंगी संतरा अनार अंगूर आदि उत्तमोत्तम फलोंसे सदा लदे रहते थे एवं जिसप्रकार मुनियोंके आचार तुँग—उच्च, होते हैं उसीप्रकार वे वन भी महा ऊंचे ऊंचे और विशाल थे ॥ ६० ॥ उस वंग देशकी वापियां भी मुनिराजके चित्तोंके समान पवित्र थीं क्योंकि जिसप्रकार मुनियोंके चित्त तृष्णा और उससे जायमान क्लेशसे रहित हैं उसीप्रकार वे वापियां भी तृष्णा और उससे जायमान क्लेशसे रहित थीं अर्थात् उन्हें देखते ही लोगोंकी तृष्णा और उससे जायमान क्लेश दूर भाग जाता था। मुनियोंके चित्त जिसप्रकार गंभीर रहते हैं उसी प्रकार वे वापियां भी निर्मलजलसे गंभीर थीं। 'जिसप्रकार मुनियोंके चित्त परम शीतल और स्वरूपमें लीन रहते हैं उसी प्रकार वे वापिया परम शीतल और अपने परिमित स्वरूपमें विराजमान थीं ॥ ६१ ॥ संसारमें वास्तविक धर्मकी प्रवृत्ति है इस अभिलापासे मोक्षाभिलाषी भव्यों पर उपकार बुद्धिसे प्रेरित हो सदा वहां अपने संघके साथ मुनिगण विहार करते थे ॥ ६२ ॥ वहां कोई २ पवित्र तीर्थोंकी यात्राकी तयारियां करते थे। कोई २ धर्मकी प्रभावना करनेवाले कार्य करते

१ ये वैमानिक देवोंमें विशिष्ट जातिके देव हैं। इनका निवासस्थान ब्रह्मस्वर्गके अन्तमें है । इन देवोंमें बडे छोटेका विभाग इसलिये नही स्वतंत्र हैं। विषयवासनासे रहित ब्रह्मचारी हैं इसलिये इन्हें देवर्षि [देवोंमें ऋषि] कहा जाता है तथा इसी कारण अन्य देव इनकी पूजा सत्कार करते हैं। ये चौदह पूर्वके धारी सदा ज्ञानकी भावना भानेवाले, संसारसे भयभीत, अनित्य आदि भावनाओंके सदा चितवन करनेवाले, परम सम्यग्दृष्टि, भगवान तीर्थकरके तप कल्याणके समय आकर बोधनेवाले होते हैं और एक भव धारणकर मोक्ष चले जाते है।

यत्रोत्पन्ना विदः केचित्तपसा याति निर्वृतिं । केचिच्च गृहिधर्मेण नाकं लौकांतिकास्पदं ॥ ६४ ॥ केचित्सत्पात्रदानेन भोगभूमिं सुखाकरां । भजतींद्रपदं केचिच्छ्रीजिनेंद्रादिपूजया ॥ ६५ ॥ यत्रेहते स्वजन्माहो धर्मसिद्ध्यै सुधाभुजः । तस्य स्वमुक्तिहेतोर्हि देशस्य का वर्णना परा ॥ ६६ ॥ इत्यादिवर्णनोपेतदेशस्य नाभिवत्तरा । मिथिलाख्या पुरी भाति स्वःपुरीव सुधागर्भिकं. ॥ ६७ ॥ तुंगशालप्रतोलीभिर्दीर्घखातिकया च सा ।

और कोई २ भगवान जिनेंद्रकी पूजा आदिका बड़े ठाटबाटसे समारोह करते थे इसलिये उस देशमें तीर्थ-यात्रा धर्म प्रभावना और भगवान जिनेंद्रकी पूजा आदिका उत्सव सदा होता रहता था ॥ ६३ ॥ उस वंग देशमें उत्पन्न होनेवाले कोई २ विद्वान पुरुष घोर तपोंको तपकर मोक्ष प्राप्त करते थे और कोई वास्तविक रूपसे गृहस्थ धर्मके पालन करनेवाले पुरुष, उस गृहस्थ धर्मकी कृपासे जहांपर लौकांतिक देवोंका निवासस्थान है ऐसे पांचवें स्वर्गमें जाकर जन्म धारण करते थे ॥ ६४ ॥ कोई कोई महानुभाव उत्तम पात्रोंमें आहार आदि दानोंके देनेसे सदा सुखस्वरूप भोगभूमिके सुखका रसास्वादन करते थे और कोई २ पुण्यात्मा भक्तिपूर्वक भगवान जिनेंद्र आदिकी पूजाकर दिव्य इन्द्रपद प्राप्त करते थे ॥ ६५ ॥ वंगदेशमें उससमय जैन धर्मका ही सर्वत्र प्रचार था और उसके द्वारा लोग सदा स्वर्ग और मोक्ष पदोंको प्राप्त करते थे इस लिये परम धर्मके स्थान और स्वर्ग मोक्षके कारण उस देशमें सदा अमृत खानेवाले देवगण भी जन्म धारण करनेकी अभिलाषा करते थे ॥ ६६ ॥

इसप्रकार उत्तम वर्णनके धारक वंग देशमें एक मिथिला नामकी नगरी है जो कि मनुष्यके शरीरमें नाभि (ढुंढी) के समान ठीक उस देशके मध्यभागमें है। अपनी अनुपम शोभासे स्वर्गपुरीके समान है एवं सर्वत्र धर्मात्मा लोगोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है ॥ ६७ ॥ जिसप्रकार ऊंचे ऊंचे परकोटे विस्तीर्ण गलियां और विशाल खाइयोंसे भूषित अयोध्याकी शोभा शास्त्रमें वर्णित है उसीप्रकार मिथिलापुरीमें भी उस समय बड़े ऊंचे ऊंचे परकोटे थे। विस्तीर्ण गलियां थी और चारों ओर विशाल खाई थी इसलिये वह साक्षात् अयोध्या सरीखी जान पड़ती थी तथा उसमें अयोध्याके समान बड़े बड़े वीर पुरुषोंका निवास स्थान था इसलिए वह शत्रुओंके अगम्य थी कोई भी शत्रु उससमय उसकी ओर

अयोध्येवाभाच्छत्रूणामगम्या च भटोत्तमे ॥ ६८ ॥ आह्वयंतीव देवेशां सानेकर्द्धियुता बभौ । प्रासादाग्रध्वजाग्रातै. समीरांदोलितांशुकैः ॥ ६६ ॥ उत्तुंगतोरणोपेता यत्र प्रासादपंक्तय. । सशाला· श्रीजिनेंद्राणा शोभंते वा वृषाब्धयः ॥ ७० ॥ हेमरत्नादिविंबौघै गीतनृत्यस्तवादिभि· । दिव्योपकरणैर्वाद्यैर्यातायातैश्च धार्मिकै. ॥७१॥ क्वचित्सुपात्रदानोद्भवसद्रत्नादिवृष्टिभि । नित्यमन्यै सुमांगल्यैर्वर्ततेऽस्यां महोत्सवः ॥७२॥ जिनेंद्रगुरुभक्ताश्च

आंख उठाकर भी नहीं देख सकता था ॥ ६८ ॥ उस मिथिलापुरीके बड़े बड़े महलोंके अग्रभागोंमें रंग विरंगी अनेक ध्वजायें लगी हुईं थीं और उनके वस्त्र पवनके झकोरों से फरहरा रहे थे उससे ऐसा जान पड़ता था कि अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंसे शोभायमान मिथिलापुरी अपनी ऋद्धियोंका भोग करानेके लिये देवोंको बुला रही है ॥ ६६ ॥ बड़े बड़े ऊंचे तोरणोंसे भूषित और अटारियोंसे शोभायमान भगवान जिनेंद्रके मंदिरोंकी पंक्तियां ऐसी जान पड़ती थीं मानो वे साक्षात् धर्मकी समुद्र हैं—कोई भी आकर उनमें धर्म-लाभ कर सकता है इसलिये जिन मंदिरोंकी पंक्तियोंसे वह मिथिलापुरी उस समय अत्यन्त शोभायमान थी। मिथिलापुरीके जिनमंदिरोंमें सुवर्णमयी और रत्नमयी प्रतिबिम्ब विराजमान थे। सदा उनमें गीत नृत्य और स्तुतियां आदि हुआ करते थे। छत्र चमर आदि दिव्य उपकरण भी जगह जगह मंदिरोंकी शोभा बढ़ाते थे। नौबत घुरा करती थी और धर्मात्मा लोगों का सदा आवागमन बना रहता था इसलिये वे मंदिर महारमणीक जान पड़ते थे॥ ७०—७१ ॥

उस समय मिथिलापुरीमें उत्तम पात्रोंको दान देनेसे तीव्र पुण्यका बंध होता था इसलिए उसके फल स्वरूप रत्न पुष्प और गंधोदक आदिकी वर्षा होती रहती थी तथा अन्य भी नानाप्रकारके मांगलिक कार्य हुआ करते थे इसलिये वह मिथिलापुरी अनेक महोत्सवोंसे सदा जगमगाती रहती थी ॥ ७२ ॥ उस मिथिलापुरीके रहने वाले पुरुष भगवान जिनेंद्र और गुरुओंके परम भक्त थे। अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान—कला-कौशलोंके जानकार थे। सदा आहार आदि दानोंके देनेसे परम दानी थे, धर्मात्मा और शीलवान थे। उत्तमोत्तम व्रतोंके आचरण करने वाले थे। जो मार्ग पुण्य प्राप्ति करानेवाला था उसीके अनुयायी थे, पापवर्धक मार्गका कभी अनुगमन नहीं करते थे। परम सम्यग्दृष्टि थे। जैनधर्मके परम श्रद्धानी थे।

ज्ञान विज्ञानवेदिनः । दानिनो धर्मशीलाः सद्वृत्ता पुण्यानुगामिनः ॥ ७३ ॥ सदृष्टयोऽतिर्जिना सविनयाः शुद्धचेतसः । भोगिनो धार्मिकाः शूरा विचारचतुरा नराः ॥ ७४ ॥ नार्यस्तादृग्गुणोपेताः प्राग्जन्मार्जितपुण्यतः । तस्यामुत्तुगसौधेषु निवसंति महाकुलाः ॥ ७५ ॥ इत्यादिवर्णनाढ्याया नगर्यां भूपतिर्महान् । कुंभनामातिविख्यातो बभूवाद्भुतपुण्यवान् ॥ ७६ ॥ त्रिज्ञानलोचनो वाग्मी इक्ष्वाकुकुलखांशुमान् न्यायमार्गरतः काश्यपगोत्रतिलकोपमः ॥ ७७ ॥ विश्वाभरणदिव्यांबरमालादीप्तिकांतिभिः । भूषितांगोऽतिधर्मात्मा सदाचारपदार्थवित् ॥ ७८ ॥

अत्यन्त विनयालु और सदा शुद्धचित्तके धारक थे, धर्मानुकूल भोगोंको भोगनेवाले थे, धर्मको ही सब कुछ माननेवाले थे, शूरवीरथे एवं अच्छे बुरे विचारोंके करनेमें अत्यन्त प्रवीण थे। जिस प्रकार पुरुषोंके अंदर गुण थे उसी प्रकार स्त्रियों के अंदर गुण थे अर्थात् वे भी पुरुषोंके ही समान भगवान जिनेंद्र और गुरुओंकी भक्त थीं एवं अनेक प्रकारके कलाकौशलोंकी जानकार आदि थीं। इसप्रकार पहले जन्ममें कमाए गए पुण्य के उदयसे महान् कुलोंमें उत्पन्न वे स्त्रीपुरुष उस मिथिलापुरीके ऊंचे ऊंचे महलोंमें बड़े आनंदसे निवास करते थे ॥ ७३—७५ ॥

इस प्रकार उत्तम वर्णनकी धारक उस मिथिलापुरीका राजा कुंभ था जो कि अनेक राजाओंका शिरोमणि था। पृथ्वीपर प्रसिद्ध था और अत्यन्त पुण्यवान था ॥ ७६ ॥ वह राजा कुंभ मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानोंका धारक था। हितकारी और परमित वचनोंके बोलनेके कारण वाग्मी था। इक्ष्वाकु वंशरूपी आकाशके लिए देदीप्यमान सूर्य था। सदा न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाला था एवं काश्यप गोत्रका तिलक स्वरूप था ॥ ७७ ॥ समस्त लोकके आभूषण, दिव्य और मनोहर वस्त्र, माला, तेज और मनोहरता से उसका शरीर शोभायमान था। अत्यन्त धर्मात्मा था। उत्तम आचरणका आचरनेवाला और पदार्थोंके स्वरूपका भले प्रकार जानकार था ॥ ७८ ॥ उत्तम आदि पात्रोंको आहार आदि दान देनेके कारण दाता था। धर्मानुकूल भोगोंका भोगनेवाला होनेके कारण भोक्ता था। राजकार्यमें अत्यन्त प्रवीण था। अहिंसादि पांच अणुव्रत एवं तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इसप्रकार सातप्रकारका शीलव्रत एवं अन्यान्य व्रतोंका भी भलेप्रकार आचरण करनेवाला था। भगवान जिनेंद्रका परमभक्त था। विवेकी और

दाता भोक्ता महादक्षो व्रतशीलादिमंडित । जिनरक्तो विवेकी सद्दृष्टिर्लोकप्रियोमहान् ॥ ७९ ॥ विशुद्धिसत्कुलो मान्यो राजते न्यायवर्त्मना । चाक्रीव सोऽतिपुण्यात्मा जिनधर्म प्रवर्धक ॥ ८० ॥ प्रजावती महादेवी तस्यासीत्प्राणवल्लभा । पुण्यलक्षणपूर्णांगा सत्प्रभाभरणांकिता ॥ ८१ ॥ द्विपत्वनखचन्द्रांशुद्धासिदिव्यक्रमाम्बुजा । कदलीगर्भसादृश्यचारुजंघा मनोहरा ॥ ८२ ॥ काञ्चिदामांशुकैः सारैर्विभूषितकटीतटा । कृशोदरा सुवृत्तांतर्नाभिश्चारुपयोधरा ॥ ८३ ॥ अनर्घ्यहारसंयुक्तदिव्यवक्षःस्थला सती । मुद्रिकाकंकणाढ्यातीवकोमललसत्करा ॥ ८४ ॥

सम्यग्दृष्टि था । समस्त लोकका प्यारा था और महान था ॥ ७९ ॥ वह महानुभाव कुंभ नामका राजा चक्रवर्ती राजाके समान था क्योंकि चक्रवर्ती जिसप्रकार समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त रहता है उसी प्रकार यह राजा भी अनेक प्रकारकी ऋद्धि—विभूतियोंसे व्याप्त था, चक्रवर्तीका जिसप्रकार सब लोग आदर सत्कार करते है उसी प्रकार राजा कुंभका भी सब लोग आदर सत्कार करते और मानते थे। चक्रवर्ती जिस प्रकार नीतिमार्गसे प्रजाकी रक्षा करता है उसीप्रकार राजा कुंभ भी नीतिमार्गसे प्रजा का पालन करता था तथा वह राजा चक्रवर्तीके समान अत्यन्त पुण्यवान और जैन धर्मका संसारमें प्रवर्तानेवाला था ॥ ८० ॥

महानुभाव राजा कुंभकी प्राणोंको अतिशय प्यारी प्रजावती नामकी पट्टरानी थी जो कि समस्त शुभलक्षणोंके धारक शरीरसे युक्त थी एवं देदीप्यमान प्रभाके धारक अनेक प्रकारके आभूषणोंसे भूषित थी । महादेवी प्रजावतीके दशो नखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभित और दिव्य दोनो चरण कमल थे। केला के थंभोंके समान अत्यन्त मनोहर दोनों जंघायें थीं ॥ ८१—८२ ॥ करधनीकी महामनोहर और सारभूत किरणोंसे उसका कटिभाग अत्यन्त जाज्वल्यमान था । उसका उदर अत्यन्त पतला होनेसे वह कृशोदरी थी । उसकी नाभि भीतरमें चक्करदार और गोल थी और दोनों स्तन अत्यन्त मनोहर थे ॥ ८३ ॥ उसका उदर वक्षःस्थल महामूल्यवान हारोंसे युक्त होनेके कारण जगमगाता था और उसके अत्यन्त कोमल महा मनोहर दोनों हाथ मुद्रिका और कड़ोंसे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ ८४ ॥ संसारके समस्त उत्तमोत्तम आभूषणोंकी कांतिसे उसका सारा अंग अत्यंत देदीप्यमान था । कंठ अत्यन्त मनोहर था इस-

विम्वाभरणदीप्तागा दिव्यकंठातिसुस्वरा । महातेजःकलाकातिकपोलांकितसन्मुखा ॥ ८५ ॥ चारुनेत्रोत्पला तुंगनासा भ्रूक्षेपशोभिता । न्यस्ताभरणसत्कर्णा अलिकेशी सुमस्तका ॥ ८६ ॥ दिव्याशुकसुनेपथ्यस्रग्भिः सर्वैर्विमंडिता (१)। दिव्यलक्षणसंपूर्णा महारूपा जनप्रिया ॥८७॥ कलाविज्ञानचातुर्यज्ञानसौभाग्यभागिनी । जिनभक्ता सदाचारा विनयाढ्या महासती ॥ ८८ ॥ दिव्यभोगोपभोगादिसंप्राप्तस्वमनोरथा । पुण्यकर्मकरा दक्षा व्रतशीलादिभूषिता ॥ ८९ ॥ मान्या सर्वजनैः सा भाद्भारतीव प्रजावती । रूपलावण्यसौभाग्यसुखवारिधिपारगा ॥ ९० ॥ तया सार्धं नृपोऽत्यतप्रेम्णा भोगान्निरंतरं । भुनक्ति स्म यथाकाले तृप्तिकर्तॄ स्वपुण्यजान् ॥ ९१ ॥ अथ तस्याहमिंद्रस्य शेषं षण्मासजीवितं ।

लिये उसका बहुत ही मीठा और मनोहर स्वर था एवं उसका महा मनोहर मुख तेजोमयी लावण्यसे देदीप्यमान कांतिके घर कपोलोंसे भूषित था ॥ ८५ ॥ उसके नेत्ररूपी कमल महा मनोहर थे, ऊंची नाक थी सुन्दर भृकुटियें थीं उसके दोनों कान पहिने हुए आभूषणोंसे जाज्वल्यमान थे, भौरोंके समान काले केश थे और सुन्दर ललाटसे वह शोभायमान थी ॥ ८६ ॥ वह महारानी प्रजावती महामनोहर वस्त्रोंकी पोशाक पहिनती थी। माला आदिका मंडन करती थी समस्त दिव्य गुणोंसे परिपूर्ण थी अतएव महारूपवती और समस्त लोककी प्यारी थी ॥ ८७ ॥ अनेक प्रकारकी कलाएं विज्ञान ज्ञान और सौभाग्यसे शोभायमान थी भगवान जिनेंद्रके गुणोंमें अत्यन्त भक्ति करती थी। सदाचारका आचरण करती थी। अत्यन्त विनय करने वाली और महासती थी। पुण्यके उदयसे उसे भांति भांतिके दिव्य भोग और उपभोग आदि प्राप्त थे इसलिये उसके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि होती थी। वह महारानी प्रजावती समस्त पवित्र कार्योंकी ही करनेवाली थी, हर एक बातमें अत्यंत चतुर थी और व्रतशील आदिको भले प्रकार पालन करनेवाली थी ॥ ८८—८९ ॥ जिसप्रकार सरस्वती देवीका सब लोग आदर सत्कार करते और उसे मानते हैं उसीप्रकार महारानी प्रजावतीको भी सब लोग अति आदरकी दृष्टिसे देखते थे। तथा रूप लावण्य सौभाग्य और सुखरूपी समुद्रके पारको प्राप्त थी अर्थात् परम रूपवती थी, परम लावण्यवती थी और परम सुखको भोगनेवाली थी ॥ ९० ॥ इसप्रकार उत्तमोत्तम गुणोंकी स्थान उस महारानी प्रजावतीके साथ वह राजा कुंभ तृप्तिके करनेवाले और निज पुण्यके प्राप्त नाना प्रकारके भोगोंको यथाकाल बड़े स्नेहके साथ निरंतर भोगने लगा ॥ ९१ ॥

ज्ञात्वा शक्राज्ञया रैद् आगतो मिथिलापुरी ॥ ६२ ॥ अनर्घ्यानेकधारत्नस्वर्णधाराव्रजैः परैः । स्थूलैर्गजकराकारे पुष्पाबुकणसकुले ॥ ६३ ॥
मणिरश्मिहतध्यात कुरुते सधनाधिपः । रत्नवृष्टिं मुदा नित्य तयोर्धामनि मन्दिरे ॥ ६४ ॥ तदा नृपांगण सर्वं हेमरत्नादिपूरितं ।
धर्मस्यैव फल दृष्ट्वा मति धर्मे व्यधाज्जन. ॥ ६५ ॥ प्रत्यहं रत्नवृष्ट्या स पूरयामास यक्षराट् । स्वर्णरत्नैर्नृपागारं षण्मासांतं शुभाप्तये ॥ ६६ ॥
अथ सुप्तैकदा देवी सा सौधे मृदुतल्पके । निशाया पश्चिमे भागेऽपश्यत् स्वप्नांश्च षोडश ॥ ६७ ॥ ऐन्द्रं गजेंद्रमुत्तुंग गवेंद्रं पाडुरद्युति ।

राजा वैश्रवणका जीव जोकि अपराजित विमानमें जाकर अहमिंद्र हुआ था जब उसकी आयुकी समाप्तिमें केवल छह मासका समय बाकी रह गया—उस समय वह भगवान मल्लिनाथ तीर्थंकर होनेवाला था और भगवान तीर्थंकरके जन्मसे पन्द्रह माम पहिले उनकी जन्मभूमिमें कुवेर द्वारा रत्नोंको वर्षा होने लगती है यह नियम हे इसलिये इंद्रने मिथिलापुरी जानेकेलिए कुवेरको आज्ञा दी और इन्द्रकी आज्ञानुसार वह शीघ्र ही मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गया ॥ ६२ ॥ मिथिपुरीमें आकर उसने मोटी मोटी हाथींके सूंढकी आकारकी, पुष्प और जलकणोंसे व्याप्त अमूल्य अनेक प्रकारके रत्नोंकी धारायें वर्षानी प्रारंभ कर दी जिनमें कि वर्षनेवाली मणियोंकी प्रभासे समस्त अन्धकार नष्ट होता था इसप्रकार उस दिनसे वह कुवेर राजा और रानीके मनोहर महलमें बड़े आनन्दसे रत्नोंकी वर्षा करने लगा ॥ ६३—६४ ॥ उस समय राजा कुंभके समस्त आंगनको रत्न और सुवर्ण आदिसे परिपूर्ण देख मनुष्योंने उसे साक्षात् धर्मका फल समझा एवं उस दिनसे उन्होंने धर्मके अन्दर विशेषरूपसे चित्त लगाया ॥ ६५ ॥ वह कुवेर पुण्यफलकी प्राप्तिकी अभिलाषासे प्रतिदिन रत्नवृष्टि करता था इसलिये छहमास पर्यंत वह राजा कुम्भके मकानको सुवर्ण और रत्नोंसे प्रतिदिन भर दिया करता था ॥ ६६ ॥

कदाचित् महारानी प्रजावती अपने शयनागारमें अत्यन्त कोमल मनोहर सजपर सो रही थी कि अकस्मात् जव रात्रिका कुछ ही भाग शेष रह गया उस समय उसने महा मनोहर सोलह स्वप्ने देखे। सबसे पहिले स्वप्नमें उसने इन्द्रका ऐरावत (१) हाथी देखा जोकि महामनोहर अत्यंत विशाल था। उसके बाद अत्यंत

मृगेंद्रमिंदुसच्छायं स्नाप्या मा हरिविष्टरे ॥ ९८ ॥ सुगंधपुष्पमाले च पूर्णचंद्रं सतारकं । हतध्वातं च भास्वतं पद्मास्यौ हिरण्यघटौ ॥ ९९ ॥
मत्स्यौ सरसि पद्माढ्ये चाब्जपूर्णं सरोवरं । क्षुभ्यंतमब्धिमुद्वेलं हैमं सिंहासनं परं ॥ १०० ॥ नाकालयं स्फुरद्दीप्रं फणींद्रभवनं महत् ।
रत्नराशिं हतध्वातं निर्धूमं विषमार्चिषं ॥ १०१ ॥ दृष्ट्वेमान् षोडश स्वप्नास्तदंते सा ददर्श च । प्रविशंतं स्ववक्त्राब्जे गजेंद्रं तुंगविग्रहं ॥१०२॥
इति सुकृतविपाकात्प्राप्य रत्नादिवृष्टिं स्वजननृसुरमान्या प्राप्तसौभाग्यसारा जिनपतिसुतकर्त्री स्वप्नराशींश्च दृष्ट्वा सकलसुयुवतिमध्येऽप्यभूत्सा

उन्नत, २ बैल देखा जो कि अत्यंत सफेद कांतिका धारक था। उसके बाद अत्यंत पराक्रमी, ३ सिंह देखा जो कि चंद्रमाकी कांतिके समान कांतिका धारक था। उसके बाद, ४ लक्ष्मी देखी जोकि महामनोहर सिंहासनपर दुग्धके घड़ोंसे स्नान कराई जा रही थी। उसके बाद, ५ दो पुष्प मालायें देखी जिनकी सुगंधिसे समस्त दिशायें सुगंधित थीं। उसके बाद आकाशमें महा मनोहर अखंड, ६ चंद्रमा देखा जोकि अपने परिकर ताराओंके समूहसे व्याप्त था। उसके बाद अत्यंत देदीप्यमान, ७ सूर्य देखा जिसकी प्रभासे समस्त अंधकार विनष्ट हो रहा था। उसके बाद, ८ दो सुवर्णमयी घर देखे जिनका कि मुख कमलोंसे ढका हुआ था। उसके बाद कमलोंसे परिपूर्ण सरोवरमें किलोल करता हुआ, ९ मीनोंका जोड़ा देखा उसके बाद विशाल स्थिर, १० सरोवर देखा जोकि सर्वत्र कमलोंसे व्याप्त था। उसके बाद खलबलाता हुआ, ११ समुद्र देखा जिसका जल तीरसे भी ऊपर बहता था। उसके बाद, एक सुवर्णमयी महामनोहर, १२ सिंहासन देखा। उसके बाद देवोंका स्थान १३ स्वर्ग देखा जोकि अपनी जगमगाती हुई कांतिसे अत्यंत शोभायमान था। उसके बाद १४ नागेंद्रका भवन देखा जो कि कांतिसे जगमगा हुआ अत्यंत विशाल था। उसके बाद जगमगाती हुई रत्नोंकी राशि देखी जिसकी उग्र-प्रभासे अंधकार दीख तक नही पड़ता था उसके बाद जलती हुई १५ अग्निकी शिखा देखी जिसमें धूवांका नाम निशान तक भी न था ॥ ९७—१०१ ॥ जिस समय वह महादेवी उपर्युक्त सोलह स्वप्न देख चुकी उस समय अंतमें उसने क्या देखा कि एक अत्यंत सुन्दर शरीरसे शोभायमान विशाल हाथी उसके मुख कमलमें प्रवेश कर रहा है ॥ १०२ ॥

प्रभूता ॥ १०३ ॥ स्वर्मोक्षकर्ताऽखिलविघ्नहर्ता मुमुक्षितभर्ता वरधर्मनेता । कर्मारिहंताऽखिलविद्वधाता दाता बिजेता मम सोऽस्तु सिद्धये ॥ १०४ ॥

इति भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीमल्लिनाथचरित्रे अहमिंद्रभववर्णनो नाम तृतीय. परिच्छेद. ॥ ३ ॥



रानी प्रजावतीके तीव्र पुण्यके उदयसे पहिले तो रत्नसुवर्ण आदि पदार्थोंकी वर्षा हुई जिससे उसके कुटुम्बी जन अन्य मनुष्य और बड़े बड़े देव उसका आदर सत्कार करते थे और समस्त सौभाग्यका सार प्राप्त किया था उसके बाद उस महारानी प्रजावतीने भगवान जिनेंद्रकी उत्पत्तिको सूचन करनेवाले उपर्युक्त सोलह स्वप्न देखे जिससे रनवासके अंदर अनेक रानियोंके रहते भी उनकी शिरोमणि पटरानी वही हुई ॥ १०३ ॥ स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाले, समस्त विघ्नोंके नाशक, मोक्षलक्ष्मीके स्वामी, जीवोंको धर्ममार्गपर ले चलनेवाले, ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मरूपी वैरियोंको मूलसे नष्ट करनेवाले अखंड ज्ञानके विधाता एवं जयशील वे भगवान मल्लिनाथ हमारे लिये सिद्धि प्रदान करें ॥ १०४ ॥

इसप्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थविरचित हिन्दी वचनिकामें अहमिंद्रका भव वर्णन करनेवाला तीसरा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ३ ॥



चतुर्थः परिच्छेदः ।

इन्द्रनीलल्लसत्काय मुक्तिकाताप्रियंकरं । त्रिजगत्स्वामिनं वंदे पार्श्वनाथं जगद्धितं ॥ १ ॥ अथ प्रबोधकास्तूर्यान् ध्वनत' सुस्वरान्परान् । वंदिनां च सुगीतानि मंगलान्यप्यनेकशः ॥ २ ॥ प्रातर्भेरीरवं श्रुत्वा दरनिद्रान्विता सती । प्रबोधमगमद्देवी विश्वमांगल्यधारिणी ॥ ३ ॥ अनुत्थाय स्वपल्यंकाद्विश्वमांगल्यसिद्धये । सामायिकादिं च देवी धर्मध्यान चकार सा ॥ ४ ॥ स्नात्वालंकृत्य भूषाद्यै स्वत्मानं हर्षिताननाः । जनै कतिपयै'

अथ चौथा परिच्छेद ।



जिनके शरीरकी कांति इन्द्रनील मणिके रंगके समान महामनोहर है जो मोक्षरूपी लक्ष्मीके परम प्यारे हैं । तीनों लोकके स्वामी हैं एवं समस्त जगतका हित करनेवाले हैं ऐसे श्रीपार्श्वनाथ भगवानको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ यह प्राचीन प्रथा है कि महाराज और महारानियोंका जो समय उठने का होता है उस समय मधुर शब्द करनेवाले बजे बजाए जाते हैं और वंदीगण स्तुति बखानते हैं उनके शब्दसे महाराज और महारानीकी निद्रा भंग होती है और उस समय वे उठकर अपनी प्रातः कालकी नित्य क्रियामें प्रवृत्त होते हैं प्रातःकालमें जिस समय महारानी प्रजावतीके उठने का समय उपस्थित हुआ उस समय उसे जगानेवाले उत्कृष्ट एवं महामनोहर शब्द करनेवाले तूर्य जाति के बाजे बजने लगे तथा वंदीगणोंके द्वारा अत्यन्त मंगलको सूचन करनेवालीं महामनोहर अनेक प्रकार की स्तुतियां बखानी जाने लगीं । महारानी प्रजावती उस समय सूक्ष्म निद्रासे निद्रित पलंगपर लेटी हुई थीं ज्यों ही प्रातःकालमें उसने महामनोहर भेरीका शब्द सुना समस्त जगतका मंगल करनेवाली वह पलंगसे उठकर बैठ गई ॥ २—३ ॥ कुछ समय बाद शांतिपूर्वक उसने पलंगका परित्याग किया और वह देवी समस्त जगतके मंगलसिद्धिकी कामनासे सामायिक आदि क्रियाओंके द्वारा धर्म्यध्यानका आचरण करने लगी ॥ ४ ॥ सामायिक आदि नित्य क्रियाओंके बाद उसने प्रसन्न चित्तसे स्नान किया उत्तमोत्तम आभूषणोंसे अपने

साधं नृपास्थान ययौ मुदा ॥ ५ ॥ आगच्छतीं स्वकातां तां दृष्ट्वा वाक्यैर्यथोचितैः । संतोष्य प्रददौ तस्मै सोऽर्द्धं सिंहासनं मुदा ॥६॥ सुखासीन ततो राज्ञी विधाय स्वमुखे मुदं । भर्त्रे दिव्यासनोत्थाय दिव्यवाण्या व्यजिज्ञपत् ॥ ७ ॥ देवाद्य यामिनीभागे पश्चिमे, सुखनिद्रिता । अद्राक्ष षोडश स्वप्नान् गजेंद्रादीन् शुभोदयान् ॥ ८ ॥ स्वामिस्तेषां फलं सर्वं कृपां कृत्वा ममादिश । शृणु प्रिये फलं तेषां वक्ष्ये कृत्वा वशीमनः ॥ ९ ॥ गजेक्षणा-

शरीरको अलंकृत किया एवं कुछ खास मनुष्योंके साथ हृदयमें अत्यन्त प्रमोद रख वह राजसभाकी ओर चल दी ॥५॥ इसप्रकार ठाटबाटसे राजसभामें आनेवाली अपनी परम प्यारी महारानी प्रजावतीको देखकर राजा कुंभ बड़ा प्रसन्न हुआ। महामनोहर वचनोंसे उसका शिष्टाचारकर उसे अत्यन्त संतुष्ट किया एवं बड़े आनन्दसे आधा सिंहासन उसके बैठनेके लिये प्रदान किया ॥ अपने स्वामी महाराज द्वारा इस प्रकारका सम्मान पा रानी प्रजावतीका मुख अनन्दसे पुलकित होगया वह सुखपूर्वक आसनपर बैठ गई एवं दिव्य आसनसे कुछ उठकर अपनी दिव्य वाणीसे आनन्दसे गद्गद होकर इसप्रकार अपने स्वामीसे निवेदन करने लगी—हे देव! आज प्रातःकाल जब कि रात्रिका कुछही भाग शेष रह गया था उस समय में पलंगपर सुखपूर्वक सोरही थी, अचानक ही अत्यन्त शुभ फलके प्रदान करनेवाले गजेंद्र आदिके सोलह स्वप्न मुझे दीख पड़े हैं। स्वमिन्! उन पवित्र स्वप्नोंका फल क्या है कृपाकर उन समस्त फलको मुझे बतलाइए—मुझे उन फलोंके जाननेकी बड़ी भारी अभिलाषा और उत्कंठा है। फलोंको जाननेके लिए रानीको इसप्रकार उत्कंठित देख राजा कुंभ बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रियवचनों से वह इसप्रकार कहनेलगा—प्राणप्यारी! तुम चित्तको स्थिरकर सुनो—मैं उन स्वप्नों का विस्तारसे फल कहता हूं ॥ ७—९ ॥

देवि! स्वप्नमें जो तुमने विशाल गजराज देखा है उसका फल यह है कि तुम्हरे एक महान् पुत्र होगा जिसे बड़े बड़े ऋद्धिधारी देव आकर पूजेंगे और अपनेको धन्य समझेंगे। विशाल बैलके देखने का यह फल है कि तुम्हारा पुत्र ज्येष्ठ होगा—समस्त लोक उसे बड़ा मानेगा और उसकी आज्ञाका पालन करेगा एवं वह धर्मकी धुराका धारण करनेवाला अर्थात् धर्मका स्वामी होगा स्वप्नमें जो सिंह देखा है उसका

न्महान् पुत्रो भविष्यति सुरार्चित । देवि ! ते वृषभालोकाज्ज्येष्ठो धर्मधुरंधरः ॥ १० ॥ सिंहेनानंतवीर्यश्च दामभ्यां धर्मतीर्थकृत् । लक्ष्म्याभिषेकमाप्तासौ सुरै र्मेरुमस्तके ॥ ११ ॥ पूर्णेंदुना जनाह्लादी मोहध्वांतविनाशकृत् । भास्वता चाखिलां ज्ञानतमोहंता स्फुरद्द्युति ॥ १२ ॥ कुंभाभ्यां निधिभागी च मत्स्याभ्यां स्यान्महासुखी । सरसा लक्षण पूर्ण. सोऽब्धिना केवलेक्षण. ॥ १३ ॥ सिंहासनेन साम्राज्यपदयोग्यो जगन्नुत ।

फल यह है कि वह पुत्र जिस प्रकार सिंह बलशाली होता है उसी प्रकार अनंत बलका धारक होगा दो मालायें जो देखो हैं उनका फल यह है वह धर्म तीर्थका प्रवर्तक होगा। दुग्ध के घड़ोंसे स्नान करती हुई जो लक्ष्मी देखी है उसका फल यह है कि बड़े बड़े देव आकर तुम्हारे पुत्र को मेरु पर्वतके मस्तक पर लेजाकर स्नान करावेंगे। स्वप्नमें जो पूर्ण चंद्रमा देखा है उसका फल यह है कि जिस प्रकार चंद्रमा जीवों को आनन्द प्रदान करनेवाला है और अंधकारका नाशक है उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी संसारको आनन्द का प्रदान करनेवाला और मोह रूपी अंधकारका सर्वथा नाश करनेवाला होगा। सूर्य जो देखा है उसका फल यह है कि जिस प्रकार सूर्य अंधकारका नाशक है अर्थात् उसके उदय होते ही संसारके घट पट आदि पदार्थ स्फुट रूपसे दीख पडते हैं एवं सर्वत्र उसकी कांति देदीप्यमान रहती है उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी समस्त अज्ञानरूपी अंधकारका नाश करनेवाला होगा एवं सर्वत्र संसारमें उसका प्रताप फैलेगा। दो सुवर्णमयी घड़े जो देखे हैं उनका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र निधियोंका स्वामी होगा। किलोल करती दो मीन देखी हैं उसका फल यह है कि वह पुत्र परम सुखका स्थान होगा। जलसे लबालब भरा हुआ जो सरोवर देखा है उसका फल यह है कि वह पुत्र समस्त मनोहर लक्षणोंसे पूर्ण होगा। तीरको भेदकर बहनेवाले जलसे युक्त जो समुद्र देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र लोकालोकको प्रकाश करने वाले केवल ज्ञानका स्वामी होगा। सिंहासनके देखनेका फल यह है कि वह साम्राज्य पदके योग्य होगा और समस्त जगत उसे नमस्कार करेगा। स्वप्नमें जो विमान देखा है उसका फल यह होगा कि वह कल्पातीत विमानसे तुम्हारे गर्भमें आवेगा। जगमगाता हुआ जो नागेंद्रका भवन देखा है उसका फल यह

विमानदर्शनात्कल्पातीतादवतरिष्यति ॥ १४ ॥ फणींद्रभवनालोकादवधिज्ञाननेत्रभृत् । भवेद् दृग्विद्वृत्तानामाकरो रत्नराशित ॥ १५ ॥ अग्निना कर्मकाष्ठानां भस्मराशिं करिष्यति । तव पुत्रो जगन्नाथ शुक्लध्यानोरुवह्निना ॥ १६ ॥ गजेंद्रास्यप्रवेशेन त्वद्गर्भे निर्मले परे । मल्लिनाथो जिनाधीश स्त्रमाधास्यति निश्चित ॥१७ ॥ अवधिज्ञानिना तेनेत्युक्तं राज्ञा तदा सती । श्रुत्वानंदं पर सागात्पुत्रं प्राप्तेव तत्क्षणं ॥ १८ ॥ सौधर्मेंद्रोपदेशेनाथागत्यात्र हृदालया । श्याद्या षट् देव्य एवाशु भक्त्या सद्धर्मवासिता ॥ १९ ॥ गर्भं सशोध्य तीर्थेशमातुर्द्रव्यैः सुनिर्मलैः । कुयु सेवां च शुश्रूषां तत्कालोचितकर्मभिः ॥ २० ॥ श्री श्रिय ही सुलज्जा च धृतिर्धैर्यं किलादधु । कीर्तिं स्तुति च बोधिं च बुद्धिर्लक्ष्मीश्च वैभवं ॥ २१ ॥ तस्या

होगा कि वह अवधिज्ञानरूपी नेत्रका धारक होगा, रत्नराशिके देखनेका यह फल है कि वह अखंड सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका खजाना होगा। जाज्वल्यमान निर्धूम अग्नि जो देखी है उसका फल यह है समस्त जगतका स्वामी तुम्हारा पुत्र शुक्लध्यानरूपी तीव्र अग्निसे कर्मरूपी काष्ठको खाख कर डालेगा तथा सोलह स्वप्नोंके अंतमें मुखमें गजेंद्र प्रवेश करता हुआ देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भमें उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ जिनेंद्र स्वयं अवतीर्ण होकर निश्चयसे जन्म धारण करेंगे ॥ ६—१७ ॥ राजा कुंभ अवधिज्ञानके धारक थे इसलिये उनके मुखसे स्वप्नोंका इसप्रकार उत्तम फल सुनकर महारानी प्रजावतीको परमानंद हुआ एवं मारे आनन्दके उसको यह उस समय मालूम पड़ने लगा मानो साक्षात् पुत्र ही प्राप्त कर लिया है ॥ १८ ॥

अथानंतर माता प्रजावतीकी सेवाके लिये सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी आज्ञासे श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि और लक्ष्मी ये छह देवियाँ बड़ी भक्तिसे शीघ्र ही मिथिलापुरी आगईं। ये समस्त देवियां भरतक्षेत्रके पद्म आदि सरोवरोंके कमलोंमें रहनेवाली हैं एवं परमधर्मकी सदा सेवन करनेवाली हैं ॥ १९ ॥ मिथिलापुरीमें आकर समस्त देवियोंने अत्यंत निर्मल पदार्थोंसे माता प्रजावतीके गर्भका संशोधन किया। एवं जिस समयमें जिस कार्यके करनेकी आवश्यकता होती थी उसे कर वे भक्तिपूर्वक माताकी सेवा और आज्ञाका पालन करती थीं ॥ २० ॥ श्री देवी माताके शरीरके अंदर अनेक प्रकारकी शोभा उत्पन्न करती थी ह्री देवीकी सेवासे माताके हृदयके अंदर विशेषरूपसे लज्जाका प्रचार था। धृति देवीकी कृपासे विशेषरूपसे धीर वीरता

गुणानिन् स्वांश्च सा प्रापित सुन्दरा। पुनः सुसंस्कृता जातेर्देवीभिर्यथा मणिः ॥ २२ ॥ चैत्रमासे सिते पक्षे [illegible] प्रतिपदे दिने। अश्विन्यां
नक्षत्रे शुभयोगादिके सति ॥ २३ ॥ सोऽहमिंद्रस्ततश्च्युत्वा विमानादपराजितात्। तस्या गर्भेऽवतीर्णोऽभूत् [illegible] ॥ २४ ॥
घंटादिनादसिंहासनकंपादिसुलांछनैः। ज्ञात्वा तदवतारं हि चतुर्णिकायनिर्जराः ॥ २५ ॥ सेंद्राः स्ववाहनारूढाः [illegible]

उत्पन्न हो गई थी। कीर्ति देवीकी सेवासे यह गुण प्रगट हुआ था कि सर्वत्र उसकी कीर्ति फैल गई थी इसलिये सब लोग बड़ी भक्तिसे उसकी स्तुति करते थे। बुद्धिदेवीकी सेवासे माताके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके अंदर विशेष निर्मलता होने लगी थी एवं लक्ष्मी देवीकी सेवासे माताको अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंका लाभ था। यद्यपि वह माता प्रजावती अपने तीव्र पुण्यके उदयसे स्वभावसे ही सुन्दर थी तथापि स्वभावसे निर्मल भी मणिपर जिसप्रकार संस्कार कर देनेसे और भी अधिक चमक आजाती है उसीप्रकार श्री आदि देवियोंके द्वारा शोभा आदि गुणोंसे संस्कार युक्त की गई वह माता और भी विशेषरूपसे सुन्दर जान पड़ने लगी ॥ २१—२२ ॥

कदाचित् चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके दिन जब कि शुभ लग्न थी अश्विनी नामका शुभ नक्षत्र था और योग आदि भी शुभ थे वह अहमिंद्र भगवान मल्लिनाथका जीव अपराजित नामके विमानसे चया एवं मति श्रुत और अवधिरूप तीन ज्ञानका धारक वह मोक्षमार्गको प्रगट करनेके लिए प्रशस्त स्फटिक पाषाणके समान माता प्रजावतीके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया ॥ २३—२४ ॥ भगवान के गर्भमें आते ही भवनवासी आदि चारों निकायोंके देवोंके घरोंमें घंटा आदि बजने लगे एवं सिंहासन कंपने लगे। बस! घंटा आदिका बजना एवं सिंहासनका कपना आदि शुभ लक्षणोंसे उनको भगवानके गर्भमें आनेका निश्चय हो गया। वे अपने २ निकायोंके[1] इन्द्र और अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ शीघ्रही अपने अपने वाहनोंपर सवार हो गये एवं अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ

[1] भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी ४ और वैमानिक ये देवोंकी चार निकाय हैं।

स्वदीप्त्याद्यैस्तत्राजग्मुः शिवाप्तये ॥ २६ ॥ तत प्रथमकल्याणं स्मृत्वा गर्भगतं जिनं। गर्भवत्याः प्रजावत्याः पादाबुरुहयोर्मुदा ॥ २७ ॥ प्रणाम शिरसा चक्रे मणिशेखरशालिना। सौधर्मेंद्रोऽखिलैर्देवैः सार्धं भक्त्या वृषाप्तये ॥ २८ ॥ तत प्रपूज्य तीर्थेशपितरौ भूषणादिभिः। प्रशस्य कृतकार्यास्ते स्व स्व स्थानमगु सुरा ॥ २९ ॥ नित्य शक्राज्ञया दिक्कुमार्यस्तद्योग्यकर्मभि। कुर्वंति परमा सेवा जिनमातुः स्वशर्मणे ॥ ३० ॥

आकाशको प्रकाशमान करते हुए वे मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे शीघ्रही मिथिलापुरो आकर उपस्थित हो गये ॥ २५—२६ ॥ गर्भावतार नामक पहिले कल्याणमें आए हुए सौधर्म स्वर्गके इंद्रने समस्त देवोंके साथ धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे गर्भमें आए हुए भगवान जिनेंद्रके गुणोंका भक्तिभावसे स्मरण किया एवं गर्भवती माता प्रजावतीके दोनों चरण कमलोंको मणिमयी मुकुटोंसे चमचमाते हुए अपने मस्तकोंसे हर्षपूर्वक नमस्कार किया ॥ २७—२८ ॥ उसके बाद इन्द्र आदि देवोंने भगवान मल्लिनाथके दोनों माता पिताओंकी पूजा की। भूषण आदि प्रदान कर सन्मान किया एवं इस प्रकार पवित्र कार्यको पूराकर वे समस्त देव अपने २ स्थानोंपर चले गये ॥ २९ ॥ उस दिनसे छप्पन दिक्कुमारियां इन्द्रकी आज्ञासे सदा माताके पास रहने लगीं एवं जिसे जो कार्य करनेकेलिए सोंपा जाता था उसे आनंदपूर्वक पूरा कर अपने को कल्याणकी प्राप्ति हो इस अभिलाषासे वे माता प्रजावती की बड़ी भक्तिसे सेवा करनेलगी ॥ ३० ॥ उनमें बहुत सी कुमारियां माताके चित्तको प्रसन्न करनेके लिये मंगलीक पदार्थ हाथमें लेकर खड़ी रहती थीं। बहुतसी माताको भांति भांतिके भूषण पहिनातीं थी। कोई कोई उसे रेशमी वस्त्र पहिनाती थीं और मालायें प्रदान करतीं थीं बहुत माताका। शृंगार करतीं थीं। कोई कोई कुमारियां माताकेलिए स्नानकी तयारियां करतीं। बहुतसो उपटन आदि लगाकर उसके शरीरकी रक्षा करतीं थीं। बहुतसी कुमारियां "माताको सुख मिले" ऐसे उपायोंको रचा करती थी। कोई कोई देवांगना माताके रहनेके मकानको झाड़ बुहार कर साफ करतीं थीं बहुत सो कुमारियां माताकी इच्छानुसार महा स्वादिष्ट रसोई करतीं। कोई २ देवांगनायें माताके मकानमें मणिमयो दीपक जलाती थीं। कोई २ बालकके जन्मकालमें जो गीत गाये जाते हैं उन गीतों को गाती थीं। कोई २ महा मनोहर शब्द करनेवाले बाजे बजातीं थीं। कोई २ महा-

काश्चिन्मागल्पधारिण्य: काश्चिद्भूषणदायिका: । काश्चित्क्षौमांशुक स्रग्दायिन्य: काश्चित्प्रसाधिका ॥३१॥ काश्चिन्मज्जनपालिन्य: काश्चिच्चाङ्गरक्षिका: । तस्या शर्मविधायिन्यो बभूवुस्ताः सुराङ्गनाः ॥ ३२ ॥ काश्चित्सम्मार्जनं कुर्युः काश्चिद्रसवतीं परां : काश्चिन्मणिप्रदीपांश्चास्या गेहेऽमरयोषित ॥३३॥ काश्चित्तत्सुतजेर्गीतं काश्चिद्वाद्यं श्च नर्तनं । काश्चित्क्रीडाविनोदाद्यै स्तन्मनोरंजयत्यलं ॥३४॥ धनदोऽपि मुदा नित्यं प्रतिचक्रे तदालये । हेमरत्नमयीं वृष्टिं नवमासान्महर्धिका ॥३५॥ अंतर्वत्नीमथाभ्यर्णे नवमे मासि तामिति । रंजयति च ताः श्लोकैर्गूढार्थैं प्रश्नराशिभि: ॥३६॥

मनोहर नृत्य करतीं एवं कोई २ कुमारियां नाना प्रकारकी क्रीड़ायें एवं मनको प्रसन्न करनेवाली गप्पे धुलड़ातीं थीं इसप्रकार वे समस्त कुमारियां भांति २ की मनोहर क्रियायें कर माताका चित्त अत्यन्त प्रसन्न रखतीं थीं ॥ ३१—३४ ॥ भगवान मल्लिनाथ गर्भमें आते ही कुवेरको भी परमानंद हुआ था इसलिये नौ मास पर्यंत बड़ी रिद्धिके साथ वह प्रतिदिन बराबर उनके महलमें सुवर्ण और भांति भांतिके रत्नोंकी वार्षा करता रहता था ॥ ३५ ॥ आठ महिनोंके बीत जानेपर जब नवमें मासका आरंभ हुआ उस समय गर्भवती माता प्रजावतीके समीपमें बैठकर वे देवांगनायें गूढार्थक अर्थात् जिनका अर्थ गूढ़ होता था हर एक नहीं समझ सकता था ऐसे श्लोकोंसे एवं नाना प्रकारके उत्तमोत्तम प्रश्नोंसे माताके मनको रिझाती थी ॥ ३६ ॥ कोई २ कहतीं थीं अच्छा माता । इस पहेलीका अर्थ बताओ कि—

ऐसा त्रिनेत्र—तीन नेत्रोंका धारण करनेवाला संसारके अन्दर महादेव कौन है जो "नित्यकांताविरक्तः" अर्थात् सदा स्त्रियोंसे विरक्त हो अथवा नित्यकांता-मोक्षरूपी स्त्रीमें विशेषरूपसे रक्त हो। प्रारम्भमें काम सहित हो परन्तु पीछेसे सर्वथा कामका विजय करनेवाला हो, अत्यन्त महान हो। तथा प्रारम्भमें कुछ परिग्रहसे आकांक्षा रखनेवाला हो परन्तु पीछेसे जो सर्वथा उनकी आकांक्षासे विमुख हो गया हो यदि कहा जायगा कि संसारके अन्दर जो महादेव प्रसिद्ध है वही इन गुणोंका धारक महादेव हो सकता है सो ठीक नहीं क्योंकि वह पार्वती नामकी स्त्रीको अपना आधा अंग बनाए हुए है इसलिये स्त्रीमें अत्यन्त रक्त रहनेके कारण वह सदा स्त्रियोंसे विरक्त नहीं माना जा सकता तथा अत्यन्त विषयलोलुपी होनेके कारण वह मोक्षरूपी स्त्रीमें भी विशेषरूपसे रक्त नहीं हो सकता क्योंकि इसप्रकारकी विषयवासनामें लिप्त पुरुषोंसे मोक्ष स्त्री

नित्य कातविरक्तो य सकाम कामजिन्महान्। साकाक्षी च निराकाक्षी त्रिनेत्रो वर्तते स क ॥ ३७ ॥ (प्रहेलिका) मनोहरादिहर्यादीनां (१) च अत्यन्त दूर रहती है। तथा वह आदिमें काम सहित हो पीछेसे कामका जीतनेवाला हो यह भी बात उसके अन्दर नहीं बन सकती क्योंकि जो कामके अत्यन्त वशीभूत होकर पार्वती नामकी स्त्रीको सदा बगलमें दबाये रहता है वह कभी कामका जीतनेवाला नहीं कहा जा सकता इसलिये संसारमें जो प्रसिद्ध महादेव को कामका वैरी माना जाता है वह सर्वथा मिथ्या है तथा वह पहिले परिग्रहोंसे आकांक्षा रखनेवाला हो और पीछेसे उनकी आकांक्षासे विमुख हो यह भी बात नहीं क्योंकि वह स्त्रीरूप परिग्रहको एक क्षण भी अपनेसे दूर नहीं कर सकता प्रत्युत—उनमें ऐसा लिप्त है कि स्त्रीको ही अपना आधा अंग मानता है और उसीमें अपनी शोभा समझता है। माता प्रजावती इस प्रश्नका यह उत्तर देती थी कि ऐसा महादेव भगवान तीर्थंकर ही हो सकता है क्योंकि भगवान तीर्थंकर ही भावोंकी अपेक्षा सदा स्त्रियोंसे विरक्त रहते हैं अथवा सदा विद्यमान रहनेवाली मोक्ष स्त्रीमें वे ही अत्यन्त रक्त रहते हैं। प्रारम्भमें कामदेवके जालमें फस जानेपर भी अन्तमें वे कामदेवको सर्वथा नष्ट करनेवाले होते हैं। प्रारम्भमें परिग्रहमें कुछ आकांक्षा रखने पर भी पीछे वे उससे सर्वथा रहित हो जाते हैं एवं जन्मते ही नियमसे मति श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक होते हैं ॥ ३७ ॥ कोई २ जिसमें क्रिया गुप्त है ऐसा श्लोक कहकर इसप्रकार माता की प्रशंसा करती थी—

हे देवी। हे मंगलमयी। माता तुम्हारे गर्भमें भगवान मल्लिनाथने जन्म धारण किया है इसलिये उस विशिष्ट गर्भके द्वारा आदिहर्यादीनां मनः अहारि अर्थात् प्रथमस्वर्गके इन्द्रको आदि लेकर समस्त देवोंका मन हरा गया है—वे भी तुम्हारे सेवक हो गए हैं अतः तुम मनुष्य लोकके उत्तमोत्तम पदार्थोंके भोगके साथ स्वर्ग लोकके समस्त मंगलीक—उत्तमोत्तम पदार्थोंका भी भोग करो। यहांपर "अहारि" यह क्रिया पद गुप्त है। कोई २ देवांगना जिनके उच्चारण करनेमें ओठ आपसमें न लगें ऐसे अक्षरोंका श्लोक बना

१ मनोहार्यादिहर्यादीत्यादि पाठ ठीक जान पड़ता है।

त्वद्गर्भसभवात्। भजस्वर्जसुमांगल्यान्विश्वान् देवि सुमगले ॥ ३८ ॥ (क्रियागोपित) अन्तातीतगुणाधारो जगन्नाथो जगद्गुरु । नित्यस्त्रीरक्तचित्तो यो जयतात्सखि ! ते सुत ॥ ३९ ॥ (नैरोष्ठ्य) कात्र त्वत्सदृशी रामा ? या सूते धर्मनायकान्। को गुरुर्य सुनत्त्वज्ञो निर्ग्रंथ स्वान्यतारक ॥४०॥ कुगुरु कोऽक्षससक्त सग्रन्थोऽतिप्रमादवान्। क. पुरुषोत्तमो यस्तु त्यक्तमोह शिवोद्यत ॥ ४१ ॥ कोऽधमो यस्तप स्थोऽप्यक्षमोऽक्षार्यरिघातने ।

कर इसप्रकार माताकी प्रशंसा करने लगी—हे सखी ! अनन्ते गुणोंका धारण करनेवाला, तीनों लोकका नाथ, सकल संसारका गुरु और नित्य स्त्री अर्थात शिवरूपो स्त्रीके गुणोंविषे सदा अनुराग करनेवाला तेरा पुत्र चिरकाल तक जयवन्त रहो। इस श्लोकमें ओष्ठस्थानीय अर्थात् जिसका उच्चारण ओठोंकी सहायतासे हो ऐसा कोई भी वर्ण नहीं है ॥ ३८—३९ ॥ बहुतसी देवांगनायें माताके पास बैठकर अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम प्रश्न करती थी और माता प्रजावती वृद्धिपूर्वक उसका स्पष्ट उत्तर देती थी उनमे कुछ प्रश्नोत्तर इसप्रकारके थे—

प्रश्न—माता ! इस संसारमें तुम्हारे समान परम सौभाग्यवती अन्य कौन स्त्री हो सकती है उत्तर—जो स्त्री धर्मके स्वामी तीर्थंकरोंको उत्पन्न करनेवाली हो। प्रश्न—संसारके अन्दर अज्ञानको दूर करनेवाला उत्तम गुरु कौन हो सकता है। उत्तर—जो गुरु वास्तविक रूपसे तत्त्वोंका जानकार हो, वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे रहित हों एवं अपनेको और संसार समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंको पार तारनेवाला हो।

प्रश्न—संसारमें कुगुरु—मिथ्या गुरु कौन है ? उत्तर—जो स्पर्शन रसना आदि पांचों इन्द्रियोंके विषय में आसक्त हो, वाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहमें ममत्व रखनेवाला हो एवं क्रोधी मानी आदि होने से अत्यन्त प्रमादी हो। प्रश्न—संसारमें समस्त पुरुषोंमें उत्तम पुरुष कौन है ? उत्तर—जो मोहसे रहित

१ अजकारका अर्थ स्वर्ग भी है इसलिये 'अजसुमांगल्यान् भजस्व' अर्थात् स्वर्ग सम्बन्धी अत्यन्त मांगलिक पदार्थोंको प्राप्त करो, यहापर 'भजस्व, यह भी एक गुप्त क्रिया है परन्तु यह स्पष्ट जान पडती है एवं इस क्रियाको गुप्त माननेपर अर्थका अच्छी तरह सघटन नहि होता अत 'अहारि' यही क्रियापद चमत्कार परिपूर्ण है अथवा 'मनोहरद्युहर्यादीना' ऐसा भी पाठ हो सकता है और उस पाठमें 'अहरत' यह क्रियापद गुप्त है। 'अहारि' और 'अहरत्' का अर्थ एक समान है।

को विद्वान् यो विचारज्ञो हेयादेयागमादिवित् ॥ ४२ ॥ को मूर्खो य. श्रु तज्ञोऽपि समद. पापमाचरेत् । त्वरित किं बुधै कार्यं साधन स्वर्गमोक्षयो ॥ ४३ ॥ किं पथ्य यत्तपो दान वृत्त शीलदृगादि च । कि सबल वृप यत्सत्तपोदानादिभि' कृत ॥ ४४ ॥ कीदृश वचन श्लाघ्यं हित तथ्य मित शुभ । को जागर्ति निजात्मज्ञो मोहनिद्रातिगोऽत्र य. ॥ ४५ ॥ किं प्रशस्य कृत यत्र तपोदानं सुदुर्बलैः । के वैरिण' कपायाश्च दुर्ध्यानविपयादय. ॥ ४६ ॥

हो और मोक्षके लिए सदा प्रयत्न करनेवाला हो ॥ ४०—४१ ॥ प्रश्न—संसारके अन्दर सबसे नीच पुरुष कौन है ? उत्तर—जो अनेक प्रकारसे तपोंको आचरण करनेवाला ता हो परन्तु इन्द्रियरूपी शत्रुओंके घातनेमें असमर्थ हो अर्थात् विषयोंका लंपटी हानेके कारण इन्द्रियोंका वश करनेवाला न हो। प्रश्न—संसारमें विद्वान पुरुष कौन है ? उत्तर—जो हर एक पदार्थका वास्तविक रूपसे विचार करनेवाला हो, यह पदार्थ छोड़ने योग्य है और यह पदार्थ ग्रहण करने योग्य है इस प्रकारका अच्छीतरह जानकार हो तथा आगम का भी जानकार हो ॥ ४२ ॥ प्रश्न—संसारके अंदर मूर्ख कौन है ? उत्तर—जो अनेक प्रकारके शास्त्रोंको जानकर भी अत्यन्त अहंकारी हो और सदा पापोंका आचरण करनेवाला हो। प्रश्न—संसारमें सबसे जल्दी मनुष्योंको क्या कार्य करना चाहिये ? उत्तर—स्वर्ग और मोक्षका साधन ॥ ४३ ॥ प्रश्न—इस संसारमें पथ्य—हितकारी पदार्थ क्या है ? उत्तर—तप दान व्रतोंका पालन और सम्यग्दर्शन आदिका धारण। प्रश्न—संसारमें सबसे बलवान पदार्थ क्या है ? उत्तर—उत्तम तप और दान आदिके द्वारा प्राप्त किया हुआ उत्कृष्ट धर्म। प्रश्न—संसारमें कैसा वचन बोलना अच्छा माना जाता है ? उत्तर—हितकारी सत्य परिमित और शुभ। प्रश्न—संसारमें जागनेवाला कौन है ? उत्तर—जो महापुरुष सदा अपनी आत्माके स्वरूपका चिंतवन करनेवाला हो एवं मोह और निद्रासे रहित हो। प्रश्न—संसारमें उत्तम कार्य क्या माना जाता है ? उत्तर—जो पुरुष अत्यन्त दुर्बल है तप और दानके करनेमें असमर्थ है उनके द्वारा किया गया तप और दान। प्रश्न—संसारमें सामान्यरूपसे जीवोंके वैरी कौन हैं ? उत्तर—क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय, निंदित ध्यान और इंद्रियोंके विषय ॥ ४४—४६ ॥ प्रश्न—संसारमें वह पुरुष कौन है जो मित्र हो ? उत्तर—जो धर्मका पालन करनेवाला चरित्रका आचरण करनेवाला और पूजा आदि उत्तम कार्यों में सहाय

को मित्र· (?) साहकर्ता यो धर्मे वृत्तार्चनादिषु। कः शत्रुर्यस्तपोदानं धर्मकर्तुं ददाति न ॥ ४७ ॥ पीयूषमिव किं पेयं जिनेंद्रवचनामृतं । कः सुखी योऽत्र संतोषी को दुःखी योऽक्षलंपटः ॥ ४८ ॥ को धनी योगद्रव्योऽपि सद्दानादिकारकः । को दरिद्री धनाढ्योऽपि भ्रमेद्देशान् धनाशया ॥ ४९ ॥ सर्वोत्कृष्टोऽत्र को यः सन्पंचकल्याणशर्मभाक् । किंकरा कस्य देवेंद्रा मत्पुत्रस्य न नान्यथा ॥ ५० ॥ किं कार्यं येन जायेत यशोधर्मार्जितं सुखं। किमकार्यं च येनोत्पन्ने पापायशोऽसुखं ॥ ५१ ॥ इत्यादि गुह्यप्रश्नानि प्रयुक्तानि शुभानि च। दुष्कराण्यपि देवीभिर्जिने-

करनेवाला हो। प्रश्न—शत्रु पुरुष कौन है? उत्तर—जो धर्म करनेवालेको न तपका उपदेश देता है और न दान आदि देता है ॥ ४७ ॥ प्रश्न—संसारमें अमृतके समान पीने योग्य पदार्थ क्या है? उत्तर—भगवान जिनेंद्रका वचनरूपी अमृत। प्रश्न—संसारमें सुखी पुरुष कौन है? उत्तर—जो संतोष रखनेवाला है। प्रश्न—संसारमें दुःखी पुरुष कौन है? उत्तर—जो स्पर्शन आदि पांचो इन्द्रियोंके विषयमें लंपट है ॥ ४८ ॥ प्रश्न—संसारमें अत्यन्त धनवान पुरुष कौन माना जाता है? उत्तर—धन तो जिसके पास कम हो परन्तु दान आदि उत्तम कार्योंको अधिकतासे करनेवाला हो। प्रश्न—संसारमें निर्धनी पुरुष कौन है? उत्तर—जो अत्यन्त धनवान होने पर भी धनकी आशासे परदेशोंमें घूमता फिरता हो एवं दान आदि उत्तम कार्योंमें धन खर्च करनेवाला न हो ॥ ४९ ॥ प्रश्न—संसारमें सबसे उत्कृष्ट पुरुष कौन है? उत्तर—जिसके गर्भ जन्म आदि पांचों कल्याण हों। प्रश्न—इस संसारमें ऐसा पुरुष कौन है जिसके नौकर बड़े बड़े देवेंद्र भी होते हैं? उत्तर—मेरे पुत्रके अर्थात् तीर्थंकर भगवानके देवेंद्र आदि नौकर रहते हैं। अन्य किसीके वे नौकर नहीं हो सकते ॥ ५० ॥ प्रश्न—संसारमें उत्तम कार्य क्या माना जाता है? उत्तर—जिसके करनेसे सर्वत्र यश विस्तरे, धर्मका लाभ हो और समस्त प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति हो। प्रश्न—संसारमें अकार्य—निंदित कार्य क्या है? उत्तर—जिससे पापकी उत्पत्ति हो। सर्वत्र निंदा फैले एवं अनेक प्रकारके दुःखों की प्राप्ति हो ॥ ५१ ॥ भगवान मल्लिनाथकी माता प्रजावतीके प्रति देवियोंने ऊपर कहे गए प्रश्नोंको आदि लेकर और भी शुभ अत्यन्त कठिन कठिन प्रश्न किए थे जिनका कि उत्तर देना साधारण न था तथापि उस माताके गर्भमें तीन ज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक स्वय भगवान तीर्थंकर विराजमान थे इसलिये उनके

शमातर प्रति ॥ ५२ ॥ तेषा प्रत्युत्तरं राज्ञी ददौ व्यक्त सुयुक्तिभि । त्रिज्ञाननेत्रतीर्थेशतद्गर्भस्थप्रभावत. ॥ ५३ ॥ जगन्नाथेन तेनासौ गर्भस्थेन परां श्रियं । बभार रत्नगर्भेव मही चाकरगोचरा ॥ ५४ ॥ तीर्थेशोऽवोदरस्थोपि न स्वामातुरजीजनत् । मनाक् पीडा तथा मुक्ताफल (टा) शुक्तिपटास्थित (न) ॥ ५५ ॥ त्रिवलीभगुरेऽस्या नोदरेऽभूत्कापि विक्रिया । तथापि ववृधे गर्भ प्रभावात्तज्जिनेशिन ॥ ५६ ॥ पूर्णेऽथ नवमे मासि

प्रभावसे कठिनातिकठिनरूपसे किये गये भी देवियोंके प्रश्नोंका उत्तर माताने बड़ी युक्ति और गम्भीरता के साथ स्पष्ट रूपसे दिया था। गर्भमें विराजमान भगवान तीर्थंकरके माहात्म्यने ऐसा कोई भो देवियोंका प्रश्न नही बचा था जिसका उत्तर मातासे न बना हो ॥ ५२—५३ ॥ यदपि वे तीन लोकके नाथ भगवान मल्लिनाथ गर्भके अन्दर विराजमान थे, गर्भसे बाहिर उनका कोई भी शरीरका अवयव प्रकट न था तथापि जिसप्रकार रत्नोंकी प्रभासे देदीप्यमान खानियोंकी धारक पृथिवी अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है उसी प्रकार उस माताके शरीरमें भी अलौकिक शोभाकी छटा छटकने लगी थी ॥ ५४ ॥ यद्यपि वे तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ अपनी माता प्रजावतीके उदरमें विराजमान थे तथापि जिस प्रकार सीपके मध्य भागमें मोती रहता है—वह रंचमात्र भी सीपको क्लेशका करनेवाला नहीं होता उसीप्रकार माता प्रजावतीको भी उनके गर्भमें रहनेपर किसी प्रकारका क्लेश न था अर्थात् गर्भके भारसे जैसा अन्य स्त्रियोंको क्लेश उठाना पड़ता है वैसा भगवान मल्लिनाथको गर्भमें धारण करनेसे माता प्रजावतीको रंचमात्र भी क्लेश न था ॥५५॥ गर्भसे पहिले माता प्रजावतीका उदर त्रिवलीसे शोभायमान था भगवान मल्लिनाथके गर्भमें आनेपर त्रिवली नष्ट होकर उदरको बढ़ना चाहिये था परन्तु उन जिनेंद्रके अनुपम प्रभासे वह त्रिवली जैसी थी वैसीकी वैसी ही विद्यमान रही रंचमात्र भी उदरके अन्दर किसो प्रकारका विकार नहीं हुआ परन्तु ऐसा होने पर भी गर्भ—गर्भके अन्दर बालक भगवानका शरीर निरंतर बढ़ ही रहा था किंतु उदरके न बढ़नेसे गर्भ न बढ़ता था यह बात न थी ॥ ५२ ॥

जब ठीक नवमा मास पूर्ण होगया उस समय अगहन मासकी शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन जब कि अश्विनी नामका शुभ नक्षत्र था लग्न भी अत्यन्त सुन्दर था, योग भी शुभ था माता प्रजावतीने मति श्रुत

मार्गशीर्षसमाह्वये। अश्विन्याख्ये सुनक्षत्रे धवलैकादशीदिने ॥ ५७ ॥ सुलग्ने शुभयोगे तं पुत्रं ज्ञानत्रयान्वितं। सुखेन त्रिजगत्स्वामिनं प्रासूत प्रजावती ॥ ५८ ॥ तदा तज्जन्ममाहात्म्यात्स्वर्लोकेऽसुरभूरुहा। मुमुचुः कुसुमान्युच्चैर्ववौ च शिशिरो मरुत् ॥ ५९ ॥ अनाहता महानादा दध्वनुर्निर्जरानका। आसनानि सुरेशानामकस्मात्प्रचकंपिरे ॥ ६० ॥ नभूवुर्मौलयो नम्रा घंटाध्वानोऽभवत्स्वयं। इति चिह्नेन देवेशास्तदुत्पत्तिमजानन ॥ ६१ ॥ ज्योतिर्लोकालये सिंहनादोऽभूद्भावनालये। शंखशब्दोऽतिगंभीरो व्यंतराणां च धामनि ॥ ६२ ॥ भेरीरवस्तथाऽशेषमाश्चर्यमभवत्तरां। इति चिन्हेन तच्छ्रीशान्तकल्याणे मतिं व्यधुः ॥ ६३ ॥ ततोऽतिलम्बसामाग्न्या स्वस्ववाहनमास्थिता। जय जीवेत्य नंदार्च्येति कोलाहलकारिण

अवधिरूप तीन ज्ञानके धारक एवं तीन लोकके स्वामी पुत्र—भगवान मल्लिनाथको जना ॥ ५७--५८ ॥ परम पावन भगवान मल्लिनाथके जन्मके माहात्म्यसे आकाशसे देवोंके द्वारा कल्प वृक्षोंके पुष्पोंकी विपुल वर्षा होने लगी। मंद मंद शीतल सुगंधित पवन वहने लगी, विना वजाये एवं गंभीर शब्द करनेवाले देवोंके वाजे वजने लगे। अकस्मात् ही देवोंके आसन कंपायमान होगये। उनके मुकुट नम्रीभूत होगये एवं घंटोंका गंभीर शब्द होने लगा इसलिये इन शुभ चिन्होंसे देवोंके स्पष्टरूपसे मालूम पड़ गया कि भगवान मल्लिनाथका जन्म हो गया ॥ ५९--६१ ॥ उस समय भगवान मल्लिनाथके जन्मकालमें ज्योतिषी देवोंके घरोंमें आपसे आप सिंहनाद नामका वाजेका विपुल शब्द हो निकला। भवनवासी देवोंके भवनोंमें अत्यन्त गंभीर शंखका शब्द होने लगा था। व्यंतर देवोंके घरोंमें भेरी नगाड़ेका शब्द होने लगा था। वैमानिक देवोंके आसन कंपायमान हो निकले थे। इनके सिवाय भगवान मल्लिनाथके जन्मकालमें और भी अनेक प्रकारके आश्चर्य होने लगे थे जिनसे हर एक निकायके इन्द्रोंने उनके जन्मकल्याणमें सम्मिलित कर लिया ॥ ६२---६३ ॥ उसके वाद सैकडों प्रकारके महोत्सवोंके करनेमें लालायित सौधर्म स्वर्गके इन्द्रको आदि लेकर चारों निकायोंके समस्त इन्द्रोंने अपनी अपनी आवश्यक चीजें अपने अपने साथ ले लीं। अपने अपने वाहनोंपर वे सवार होगये "हे स्तुति करने योग्य भगवान। आप जयवंत रहें और जीवें। हे पूज्य! आप फले फूलें वृद्धिको प्राप्त हों" इस प्रकार उस समय वड़े जोरसे कोलाहल होने लगा। अपने अपने शरीरोंके उत्तमोत्तम भूषणोंकी किरणोंसे उन्होंने समस्त दिशायें और आकाश जगमगा दिया। सैकड़ों प्रकारके वाजोंके शब्दोंसे एवं मनोहर गीत नृत्य और उत्साह परिपूर्ण कार्योंसे समस्त दिशायें और आकाश

॥ ६४ ॥ द्योतयतो दिशो व्योम स्वागभूपणरश्मिभि. । पूरयतो दिशः खे च सुवाद्यध्वनिकोटिभि ॥ ६५ ॥ सुगीतनर्तनोत्साहैर्महोत्सवशतोत्सुका सामरा. सकलत्राश्च चतुर्णिकायवासवा ॥ ६६ ॥ महाभूत्या समस्ता सोधर्मेन्द्रप्रमुखा मुदा । पित्रोरास्थानमाजग्मुस्तज्जन्मोत्सहेतवे ॥ ६७ ॥ तदा राजागण सर्वं स्वर्गलोकमिवावभौ अप्सरोदेवसेनाद्यं पुरीमार्गवनादि च ॥ ६८ ॥ तत शची प्रविश्याशु प्रसवागारमूर्जित । कुमारेण सहापश्यज्जिनेंद्रमातर मुदा ॥ ६९ ॥ मुहु' प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य त्रिगद्गुरुं । जिनावाया पुर स्थित्वा श्लाघ्यते स्मेति ता शची ॥ ७० ॥ त्वमव ! भुवनावासि जगद्गुरुप्रसूतित. । महादेवी त्वमेवाद्य महादेवसुतोद्भवात् ॥७१॥ त्व जगत्त्रयनारीणा शिरोमणि' परासि च । स्वामिनी जगता देवी !

पूर दिया इस प्रकार अपने अपने आज्ञाकारी देव और अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ वे भगवान मल्लिनाथका जन्मकल्याण मनानेकेलिए विशाल विभूति और हर्षके साथ मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गये ॥ ६४---६७ ॥ जिस समय सौधर्म आदि इन्द्र और देवगण मिथिलापुरीमें आगये उस समय राजा कुंभके महलका आँगन, समस्त मिथिलापुरो मार्ग वन आदिमें जहां देखो वहां देवांगना देव और वाहन आदि सेना ही सर्वत्र नजर पड़ती थी इसलिये उस समय मिथिलापुरीमें स्वर्गलोकका दृश्य दीख पड़ता था—मिथिलापुरी ही लोगोंकी दृष्टिमें स्वर्गभूमि जान पड़ती थी ॥ ६८ ॥ जिस महलके अंदर भगवान मल्लिनाथका जन्म हुआ था वह महल अपनी प्रभासे जगमगा रहा था । देवोंके राजमहलके आंगनमें पहुंचते ही सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणीने शीघ्र ही उस मनोहर महलके अंदर प्रवेश किया एवं वहांपर कुमार भगवान मल्लिनाथके साथ अत्यन्त कोमल सेजपर शयन करती हुई माता प्रजावतीको वड़े हर्ष के साथ निरखा ॥ ६९ ॥ आनंदसे पुलकित हो इन्द्राणीने तीन लोकके गुरु भगवान जिनेंद्रकी बार २ प्रदक्षिणा दी पश्चात् अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार किया । वह भगवान जिनेंद्रकी माताके सामने विनय पूर्वक बैठ गई एवं मनोहर शब्दोंमें इस प्रकार उसकी स्तुति करने लगी—

हे माता ! तीनों लोकोंके गुरु भगवान मल्लिनाथको तुमने जन्म दिया है इसलिये तुम समस्त लोककी माता हो । तुम्हींने देवोंके देव महादेव पुत्रको उत्पन्न किया है इसलिये हे माता ! तुम्हीं संसार के अंदर महादेवी हो ॥ ७०---७१ ॥ माता ! तुम्हारे समान तीनों लोकके अंदर कोई भाग्यवती स्त्री नहीं इसलिये

त्वं कल्याणी सुमंगला ॥ ७२ ॥ इत्यभिष्टुत्य गूढागी तां मायानिद्रयाऽयुजत् । तस्याः पुरो निधायाशु मायाशिशुमथापरं ॥ ७३ ॥ जगन्नाथं स्वपाणिभ्यामादाय सागमन्मुदं । तन्महारूपसौंदर्यं पश्यती कृतकौतुका ॥ ७४ ॥ तदा मगलधारिण्यो दिक्कुमार्य पुरो ययुः । विश्वमगलकर्तुश्छत्राद्यारोपितपाणय ॥ ७५ ॥ आनीय सु करे देवी सौधर्मेन्द्रस्य त व्यधात् । सोऽपि तद्रूपमालोक्य दिव्यां प्रीति परामगात् ॥ ७६ देव ! त्व वालचन्द्रोद्गतोऽस्माक परम मुद । कर्तुं त्वमेव मोहाधतमोहंता भविष्यति ॥ ७७ ॥ त्वं नाथ ! केवलज्ञानभानोः किलोदयाचलं । आमनति विदो मिथ्या-

तुम्हीं तीनों लोककी स्त्रियोंकी शिरोमणि हो । तुम्हीं समस्त जगतमें उत्कृष्ट हो । तुम्हीं तीनों लोककी स्वामिनी हो एवं तुम्हीं कल्याणरूपिणी और मंगलमयी हो ॥ ७२ ॥ इसप्रकार महामनोहर शब्दों से स्तुति कर इन्द्राणीने अपनी मायासे माता प्रजावतीको सुख नींदसे निद्रित कर दिया । भगवानके ही ठीक आकार प्रकारके एक मायामयी पुत्रका निर्माण कर उसे माताकी गोदमें सुलादिया तीन लोकके गुरु भगवान जिनेंद्र माताकी सेजसे अपने हाथोंसे उठा लिये एवं बड़े आश्चर्यसे उनके महा मनोहर रूप और सौंदर्यको देखकर मारे आनंदके गद्गगद हो गई ॥ ७३—७४ ॥ जहां पर सौ धर्म स्वर्ग का इन्द्र खड़ा हुआ था भगवान जिनेंद्रको लेकर इन्द्राणी उसी ओर चली । समस्त जगतके मंगलके कर्ता भगवान मल्लिनाथ के आगे आगे जिनके हाथोंमें छत्र चमर आदि लगे हुए हैं ऐसे मंगलीक द्रव्योंको धारण करनेवाली दिक्-कुमारियां चलने लगी ॥ ७५ ॥ पासमें आकर इन्द्राणीने सौधर्मस्वर्गके इन्द्रके शुभ हाथोंमें भगवान जिनेंद्र को सौंप दिया । वह भी भगवान जिनेंद्रका अद्वितीयरूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । एवं आनंदसे गद्गगद हो इसप्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगा—

हे भगवन्, हे बालचंद्र ! हम लोगोंको परमानंद प्रदान करनेकेलिए संसारमें तुम्हारा उदय हुआ है क्योंकि चंद्रमाके उदयसे लोगोंको हर्ष होता है यह प्रत्यक्षसिद्ध है तथा जिस प्रकार चंद्रमा अंधकार का नाश करनेवाला होता है उसी प्रकार मोहरूपी गाढ़ अंधकारके तुम भी नियमसे नाश करनेवाले होगे ॥७७॥ जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेका स्थान उदयाचल है उसीप्रकार हे नाथ ! केवल ज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेके लिये आप उदयाचल हो तथा हे भगवान् विद्वान् लोग तुम्हें हो मिथ्याज्ञान और निद्रारूपी अंधकार

ज्ञाननिद्रातमोहरं ॥ ३८ ॥ मोहाधकूपपातात्त्व धर्महस्तावलंबनात् । निःकारणजगद्बंधुरुद्धरिष्यसि नान्यथा ॥ ७६ ॥ अतस्तुभ्य नमो नाथ ! विश्वानदविधायिने । नमस्ते बालचंद्राय नमस्तेऽद्भुतमूर्तये ॥ ८० ॥ नमस्ते मुक्तिकातामनोहराय सुखात्मने । नमस्ते विश्वनाथाय विश्वकल्याण भागिने ॥ ८१ ॥ स्तुत्येति स तमारोप्य स्वाकमेरावताश्रितं । हस्तुसुचालयामास (?) मेरू प्रति सुरावृत ॥ ८२ ॥ जयेश नद वर्धस्व त्वमिति ध्वनिकोटिभि । तदा कलकलं चक्रुर्दृष्ट्वा देवा प्रमोदत ॥ ८३ ॥ सौधर्मकल्पनाथस्याकासीन त्रिजगद्गुरुं । ऐशानेंद्रस्तदा भेजे सितच्छत्रेण सादरं ॥ ८४॥ सनत्कुमारमाहेंद्रस्वामिनो धर्मचक्रिण ।चामरैस्त व्यधुन्वाता क्षोराब्ध्यूर्मिनिभै सित. ॥८५॥ दृष्ट्वा तदातनीं भूति केचित्कुदृष्टिनिर्जराः।

के नाश करनेवाले मानते हैं ॥ ७६—७८ ॥ हे भगवन्, संसारके समस्त प्राणी मोह रूपी अंधकारसे परिपूर्ण कूपमें पड़े हुये हैं उनको धर्मरूपी हाथका अवलंबन देकर आप ही उद्धार करेंगे दूसरे किसी व्यक्ति में सामर्थ नही जो उद्धार कर सके इसलिये संसारमें विना प्रयोजनके यदि बंधु हैं तो आप ही हैं अन्य कोई आपके समान निष्प्रयोजन बंधु नही हो सकता ॥ ७६ ॥

इसलिये हे नाथ ! आप समस्त लोकको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं अतः आपके लिये नमस्कार है। आप संसारमें सबको प्रसन्न करनेवाले बाल चंद्रमा हैं इसलिये आपके लिये नमस्कार है। तुम आश्चर्यकारी मूर्तिके धारक हो इसलिये तुम्हारे लिये नमस्कार है। हे प्रभो ! मोक्षरूपी स्त्रीके चित्तको हरण करनेवाले आप ही हो और आप सुख ही स्वरूप हो इसलिए आपके लिए नमस्कार है। हे देव ! तुम्हीं समस्त लोकके स्वामी हो और तुम्ही समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त करनेवाले हो इसलिए तुम्हारे लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार है ॥ ८०—८१ ॥ इसप्रकार भक्तिपूर्वक मनोहर शब्दोंसे स्तुतिकर इन्द्रने भगवान मल्लिनाथको ऐरावत हाथीपर बेठे ही बैठे अपनी गोदमें ले लिया एवं उनका अभिषेक करनेकेलिए अनेक देवोंसे वेष्टित वह मेरु पर्वतकी ओर चल दिया ॥ ८२ ॥ भगवान मल्लिनाथको इन्द्रकी गोंद में विराजमान देख समस्त देव मारे आनंदके पुलकित होगये एवं मनके अंदर अत्यन्त प्रमोद धारण कर वे हे स्वामी ! तुम चिरकाल तक जीवो, नादो, विरदो इस प्रकार गंभीर शब्दोंमें उन्नत कोलाहल करने लगे ॥ ८३ ॥ तीन जगतके गुरु भगवान मल्लिनाथको सौधर्म इन्द्रकी गोदीमें विराजमान देख ऐशान स्वर्गके इन्द्रको बड़ा भारी संतोष हुआ

इन्द्रप्रामाण्यमाधाय चक्रुर्जैनमते मति ॥ ८६ ॥ तस्मान्नभोंगण व्याप्य विभूत्या परया समं। स्वस्ववाहनमारुह्य कल्पनाथैर्महोत्सवै ॥ ८७ ॥ वीणामृदगवशाद्यैर्ध्वनद्भिर्वाद्यकोटिभि । गधर्वकिन्नरीभिश्च गायंतीभिस्तदुत्सव ॥ ८८ ॥ कुर्वंतीभि पर नृत्यमप्सरोभिर्मनोहर । छादयतीभिराकाश ध्वजछत्रादिपंक्तिभिः ॥ ८९ ॥ सौधर्मेंद्रोऽतिधर्मात्मा चासंख्यसुरवेष्टित । मेरुं परीत्य सानदो जगन्नाथ व्यधान्मुदा ॥ ९० ॥ जन्मस्नानाय

आनंदसे गदगद हो बड़े आदरसे उसने भगवानपर छत्र लगा लिया ॥ ८४ ॥ सनत्कुमार और माहेंद्र स्वर्गों के इन्द्र भी धर्मके चक्रवर्ती भगवान मल्लिनाथपर चमर ढोरने लगे जो चमर क्षीर समुद्रकी तरंगों के समान महामनोहर और सफेद थे ॥ ८५ ॥ भगवानके पांचों कल्याणोंमें समस्त देव सम्यग्दृष्टि ही आवें यह नियम नहीं बहुतसे मिथ्यादृष्टि देव भी आते हैं क्योंकि वे इन्द्रके आज्ञाकारी होते हैं इसलिये इन्द्रकी आज्ञानुसार अवश्य उन्हें वहांपर आना पड़ता है। भगवान मल्लिनाथके जन्मकालमें जो भी मिथ्यादृष्टि देव आये थे वे भी यह निश्चय कर कि "जब स्वयं सौधर्म स्वर्गका स्वामी भगवान मल्लिनाथकी सेवामें भक्तिपूर्वक लगा हुआ है तब यही ठीक जान पड़ता है कि समस्त मतोंमें जैन मत ही पवित्र और कल्याणका करनेवाला है अन्य मत नहीं" उनका जैन धर्म पर गाढ श्रद्धान हो गया ॥ ८६ ॥ उस समय मेरुपर्वतपर जानेका अवसर था इसलिये समस्त देव, सब अपने अपने इन्द्रोंके अपने अपने वाहनोंपर सवार थे। भगवान जिनेंद्रके नाना प्रकारके महोत्सवोंके करनेमें व्यग्र थे। वीन मृदंग बांसुरी आदि करोड़ों प्रकारके बाजे बजते थे। भगवान जिनेंद्र के उत्सवका गान गंधर्व जातिके देव और किन्नर जातिकी देवांगनायें महामनोहर ललित शब्दोंसे करती चली जाती थीं। उस समय अप्सरायें नेत्रोंको परमानद प्रदान करनेवाला महामनोहर नृत्य करती चली जाती थीं। ध्वजा और छत्र आदि चीजोंकी भरमारसे उस समय सारा आकाश ढका सरीखा जान पड़ता था। इस प्रकार उत्कृष्ट और विपुल विभूतिसे उस समय सारा आकाश व्याप्त था। ॥ ८७—८९ ॥ जो अपने पीछे और आगे चलनेवाले असंख्याते देवोंसे व्याप्त था और परम धर्मात्मा था ऐसा सौधर्म स्वर्गका इन्द्र जिस समय मेरु पर्वत पर आया भक्तिभावसे उसकी तीन प्रदक्षिणाएं दीं एवं अत्यन्त हर्षके साथ तीन लोकके स्वामी भगवान मल्लिनाथको मेरु पर्वतपर ले आया ॥ ९० ॥ मेरु पर्वत

तीर्थेशं शचीचक्रादिवेष्टित । तन्मूर्ध्नीशानदिक्पाण्डुकशिलाहरिविष्टरे ॥ ६१ ॥ शुद्धस्फाटिकरत्नरश्मिकलिता प्रक्षालितानेकशो वारान् क्षीरसमुद्रतोयनिवहैर्मुक्तात्मना वा शिला। सायामा शतयोजनैश्च विमला तुंगाष्टभिर्विस्तृता पंचाशत्प्रमितैर्विभाति निनरां छत्रादिसन्मगलैः ॥ ६२ ॥ तत्रानल्पपरार्घ्यरत्ननिचिते हैमे सुसिंहासने देवो दिव्यशरीरकांतिनिचयैरुद्योतिताशाचय । य शक्रादिगणैर्जिनेंद्रपदभृत्सवेष्ठित सर्वमौ तं लोकत्रयतारणैकचतुर स्तोष्ये गुणैस्तच्चिदे ॥ ६३ ॥

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते गर्भकल्याणवर्णनो नाम चतुर्थ परिच्छेद ॥ ४ ॥

के मस्तकपर ईशान कोणमें एक पांडुक नामकी शिला है और उसके मध्यभागमें सिंहासन विद्यमान है। इन्द्राणी और अनेक इन्द्र आदिसे वेष्टित सौधर्म स्वर्गका इन्द्र उस स्थानपर आया एवं तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथका जन्माभिषेक करनेकी उत्कृष्ट अभिलाषासे उन्हें वहांपर विराजमान कर दिया ॥ ६१ ॥

जिस पांडुक शिलापर लेजाकर इन्द्रने भगवान मल्लिनाथको विराजमान किया था उस शिलाकी प्रशंसा करते हुए ग्रंथकार कहते हैं—कि वह पांडुक शिला अत्यन्त शुद्ध स्फटिकमयी पाषाणकी है और उस स्फटिक मणिसे निकलनेवाली रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त है। उस शिलापर अनंते तीर्थंकरोंका अभिषेक किया जा चुका है इस लिये क्षीर समुद्रके विपुल जलोंसे वह अनेक वार प्रक्षालित की जा चुकी है अर्थात् जब जब तीर्थंकरोंका अभिषेक हुआ है तब तब क्षीर समुद्रके विपुल जलसे ही हुआ हैं इसलिये उस पांडुक शिलापर जिन जिन महापुरुष तीर्थंकरोंका अभिषेक हुआ है उसके अभिषेकोंके साथ उस शिलाका भी अनेक वार अभिषेक हो चुका है अतएव पवित्रतासे वह सिद्ध शिलाके समान महापवित्र और उत्तम है। वह निर्मल शिला सौ योजनकी लम्बी है। आठ योजन प्रमाण ऊंची है एवं पचास योजन प्रमाण उसकी चौड़ाई है तथा सदा उसके ऊपर छत्र चंदोवे आदि मंगलीक द्रव्य तयार रहते है इसलिए उनकी प्रभासे सदा जगमगाती हुई अत्यंत शोभायमान जान पड़ती है ॥ ६२ ॥ उस महामनोहर शिलाके मध्यभागमें एक महामनोज्ञ सिंहासन है जो अगणित उत्तमोत्तम रत्नोंसे व्याप्त है और सुवर्णमयी है। भगवान जिनेंद्र उसपर जाकर विराजमान कर दिये। उस समय भगवानके दिव्य शरीरकी प्रभाओंसे

समस्त दिशायें शोभायमान थीं और इन्द्र आदि देवोंसे चारों ओरसे वेष्टित वे भगवान मल्लिनाथ उस समय महामनोहर जान पड़ते थे इसलिये ऐसे तीनों लोकके जीवोंको तारनेवाले भगवानको मैं उनकी गुण संपदाकी प्राप्तिकी अभिलाषासे भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं और उनके गुणानुवाद करता हूं ॥ ६३

इसप्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थविरचित हिंदी वचनिकामें उनके गर्भ और जन्म इन दो कल्याणोका वर्णन करनेवाला चौथा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ४ ॥



पंचमः परिच्छेदः ।

वंदे जगत्त्रयानंदकर्तारं ज्ञानभास्करं । जिनचंद्रं महामोहतमोहं तारमद्भुतं ॥ १ ॥ तामावेष्ट्याथ गीर्वाणास्तत्स्थु र्दिक्पालकामरा । यथायोग्य

अथ पांचवां परिच्छेद ।



जो भगवान तीनों लोकके जीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं तथा जो सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्यस्वरूप भी हैं और महामोहरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाले चन्द्रमा स्वरूप भी हैं अर्थात् जो चन्द्रमा है वह सूर्य नहीं हो सकता और जो सूर्य है वह चंद्रमा नहीं हो सक्ता क्योंकि दोनोंका स्वरूप परस्पर विरोधी और भिन्न है इसलिए एक ही भगवान जिनेन्द्र सूर्य औरचंद्रमा दोनों स्वरूपमें नहीं हो सक्ते परंतु ऐसा होने पर भी सूर्यके समान अपने ज्ञानसे पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले होनेके कारण जो सूर्य स्वरूप भी हैं एवं चंद्रमा जिसप्रकार अंधकार का नाशक है उसी प्रकार जो महामोहरूपी अंधकारको नाश करनेवाले हैं इसलिये चंद्रमास्वरूप भी हैं ऐसी अद्भुत गतिके धारक भगवान जिनेन्द्रको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ जिस पांडुक शिलाका वर्णन ऊपर किया जा चुका है भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकका उत्सव देखनेकेलिये देवगण चारों ओरसे उसे घेरकर बैठ गये तथा दिशाओंके पालन करनेवाले दिक्पाल देव भी उत्सवका ठाट

स्वदिग्भागे द्रष्टु कामा जिनोत्सवं ॥ २ ॥ महामंडपविन्यासश्चक्रे देवैर्महोत्सव । कुर्यु सुराश्च तद्देव्यो गीतवाद्यादिनर्तनै ॥ ३ ॥ तत स्वर्णमयैः कुंभैर्मुखे योजनविस्तृतै. । अष्टयोजनगभीरैर्मुक्तामालादिभूषितै ॥ ४ ॥ अनेकैर्वहव स्वच्छाभ. शुचिक्षीरवारिधे । सुरा श्रेणीकृतास्तोपादानेतुं प्रसृतास्तदा ॥ ५ ॥ विनिर्मिमे मुदा वाहन् सहस्रप्रमितान् परान् । तत्स्नानायादिकल्पेशो दिव्याभरणमंडितान् ॥ ६ ॥ कुंभोद्धृतैर्लसद्धस्तैर्जिनमूर्ध्नि सुरेश्वर । जयेत्युक्त्वा परा धारां प्रथमां स न्यपातयत् ॥ ७ ॥ तदा कलकलो भूयान् चक्रेऽसंख्यसुरासुरै । तत कल्पाधिपैः सर्वै समं धारा

वाट देखनेके लिये यथायोग्य अपनी अपनी दिशाओं में स्थित होगये ॥ २ ॥ पांडुकशिलापर देवों ने भगवान जिनेंद्र के अभिषेक के समय एक विशाल मंडपका निर्माण किया था। देवियोंने महामनोहर गीत उत्तमोत्तम वाजोंके शब्द और नृत्योंके साथ भगवान जिनेंद्रके अभिषेकका महान उत्सव करना प्रारंभ कर दिया ॥ ३ ॥ भगवानके अभिषेक के समय देवगण सुवर्णमयी कुंभोसे क्षीरोदधि समुद्रका अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र जल लाते हैं उससे भगवानका अभिषेक किया जाता है। जिन सुवर्णमयी कलशोंसे भगवान जिनेंद्रके अभिषेकका जल लाया गया था उन कलशोंका मुख एक एक योजन चौड़ा था। आठ योजन प्रमाण वे गहरे थे । मोतियोंकी माला आदिसे भूषित थे और अनेक अर्थात् संख्यामें एक हजार आठ थे। क्षीर समुद्रसे जल लाते समय देवोंके चित्त आनंदसे आनंदायमान थे इसलिये वे फैल कर उस समय लडीबद्ध खड़े थे ॥ ४—५ ॥ भगवान मल्लिनाथके अभिषेक समय सौधर्म स्वर्गके इन्द्रके हर्ष का भी पारावार न था। अभिषेकके समय उसे दो भुजाओंसे भगवान जिनेंद्रका अभिषेक करना पसंद न आया इसलिए अनेक दिव्य आभूषणोंसे मंडित शीघ्र ही उसने हजार भुजायें वना लीं ॥ ६ ॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने "हे भगवान जयवंते रहो" ऐसा भक्तिपूर्वक उच्चारण कर जिनमें सुवर्णमयी कलश विद्यमान हैं ऐसे अपने मनोहर हाथोंसे सबसे पहिले जलधारा भगवानके मस्तकपर छोड़ी। उस प्रथम जल धारा के देते ही वहां पर विद्यमान असंख्याते सुर और असुरों को परमानंद हुआ इसलिए उनका अत्यन्त कोलाहल होने लगा एवं उसके वाद समस्त इन्द्रोंने मिलकर भगवान जिनेंद्रके मस्तक पर अगणित जल धारायें छोड़ीं ॥ ६—८ ॥ जिस समय इन्द्रगण उनके मस्तकपर जल धारा छोड़ते थे उस समय वे धारायें

निपातिना ॥ ८ ॥ महानद्य [illegible] । [illegible] ॥ ९ ॥ [illegible]
(मि) नकुलं । [illegible] ॥ १० ॥ [illegible] ।
[illegible] ॥ ११ ॥ [illegible] ॥ १२ ॥ [illegible]
माश्रिते । [illegible] (?) ॥ १३ ॥ [illegible] ।
वरे ॥ १४ ॥ [illegible] ॥ १५ ॥ [illegible] ।

महान नदियोंके समान उनके मस्तकपर गिरती थीं परंतु जिस प्रकार विशाल पर्वतपर पडनेवाली नदियों की धाराओंसे वह रंचमात्र भी हिलता डुलता नहीं उसी प्रकार अचिंत्य शक्तिके धारक भगवान मल्लिनाथ भी अपने अनुपम प्रभावसे उन्हें क्रीडापूर्वक झेलते थे, घबड़ा कर जरा भी वे हिलते डुलते न थे ॥ ९ ॥ उस समय रंग विरंगी रत्नोंकी भूमियोंपर पडनेके कारण रंग विरंगी जलकी बूंदोंसे व्याप्त आकाश इन्द्र-धनुषकी शोभासे व्याप्त जान पड़ता था तथा पांडुक वन में सर्वत्र क्षीर समुद्रका जल ही जल डोलता नजर पडता था इसलिए पांडुक वन उस समय साक्षात् क्षीर समुद्र सरीखा जान पड़ता था ॥ १० ॥ इसप्रकार जिनमें अनेक प्रकारके गीत और नृत्य आदि कार्य हो रहे हैं। अनेक प्रकारके करोड़ों बाजे बज रहे हैं एवं जिनका निर्माण अनेक देवी देवोंके द्वारा किया गया है ऐसे सैकडों महान उत्सवोंके साथ क्षीर समुद्रके जलसे जब भगवानका अभिषेक समाप्त हो चुका तो उसके बाद धारा गिरते समय जिन से जय जय शब्द निकलता है ऐसे सुगंधित जलसे भरे कलशोंसे देवेंद्रने भक्तिपूर्वक बड़े ठाट बाटसे भगवान जिनेंद्रके अभिषेकका आयोजन किया। नाना प्रकारकी महामनोहर सुगंधित द्रव्योंसे सिश्रित सुगंधित जलके भरे हुए कलश रखे गये एवं उनसे समस्त प्रकारके विधानोंके जानकर इन्द्रने तीन जगतके जीवोंको मोक्ष मार्गका विधान सुझानेवाले भगवान जिनेंद्रका भक्तिपूर्वक अभिषेक किया ११-१३ ॥ भगवान जिनेंद्रका शरीर स्वाभावसे ही अत्यंत सुगंधित था इसलिये उनके शरीरपर वह गिरती हुई सुगधित जलकी धारा अमृतकी धाराके समान महा शोभायमान जान पडती थी ॥ १४ ॥ इसप्रकार सैकड़ों उत्सवों-

पवित्रा पुण्यधारेव सा पवित्रीकरोतु न ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा मस्तके चक्रु सर्वांगे च सुरोत्तमा। स्वर्गसोपायन भक्त्या तद्गंधांबु स्वशुद्धये ॥ १७ ॥ गधांबुस्नपनस्यांते जिनेंद्रांगे महोत्सवै । व्यात्युक्षीममराश्चक्रु सच्चूर्णैर्गंधवारिभि ॥ १८ ॥ निवृत्तावभिषेकस्य तं परीत्य दिवौकसः आनचुः परया भक्त्या दिव्यार्चनसुवस्तुभि. ॥ १९ ॥ सकलत्रा सुरा· कृत्वेतोष्टिशांतिसुपौष्टिकान्। प्रणेमुरुत्तमांगेन परीत्येन जगद्गुरु ॥२०॥ अथाभिषेके संपूर्णे इंद्राणी कौतुकोत्सुका । प्रसामनविधौ यत्नमकरोद्धर्मदेशिन ॥ २१ ॥ तस्याभिषिक्तदेहस्य निसर्गसुन्दरस्य सा । अंगलग्नान् मामार्जाभ· कणान् सूक्ष्मामलांशुकै ॥ २२ ॥ स्वभावेनातिसौरभ्यं विभोर्गात्र च्युतोपमं । अन्वलिप्यत सा भक्त्या द्रव्यै. सार्द्रै· सुगंधिभि ॥ २३ ॥

के साथ सवोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला वह सुगंधित जलसे किया गया अभिषेक भी समाप्त हो गया एवं भक्तिपूर्वक अभिषेक कर उन देवोंने महान पुण्यका संचयकर अपने को पवित्र बनाया ॥ १५ ॥ गंधोदकके सुगंधित जलसे उस समय समस्त दिशायें व्याप्त थीं और वह गंधोदकको धारा महापवित्र सज्जनोंके पुण्योंकी धारा सरीखो जान पड़ती थी "वह पवित्र धारा हमेंभी पवित्र करे ऐसा उच्चारण कर देवोंने अपनी अपनी विशुद्धिकी कामनासे स्वर्गकी पैडियोंस्वरूप वह गंधो- दकका पवित्र जल अपने अपने मस्तकोंसे लगाया पीछे भक्तिपूर्वक समस्त शरीर से लगा डाला ॥ १६-१७ ॥ सुगंधित जलसे जिस समय भगवानका अभिषेक समाप्त हो गया उस समय अनेक प्रकारके महोत्सवोंके साथ देवोंने अगर तगर आदिके उत्तमोत्तम सुगंधित चूर्णोंसे और सुगंधित जलोंसे भगवान जिनेंद्रके शरीरका उपटन किया ॥ १८ ॥ जब अभिषेकका काय और उपटनका समस्त कार्य समाप्त हो चुका उस समय दिव्य और सुगंधित उत्तम पूजनकी सामग्रीसे भगवान जिनेंद्रको चारों ओर से वेष्टित कर देवोंके वड़ी भक्तिसे उनकी पूजा की ॥१९॥ इसप्रकार देवोंने पूजा शांतिविधान और पुष्टिविधानका कार्य समाप्त कर तीनों लोकके गुरु भगवान मल्लिनाथकी तीन प्रदक्षिणा दी और मस्तक झुकाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अभिषेक आदि कार्योंके समाप्त हो जानेपर उनकी परम धीर वीरता देखकर आश्चर्यसे उत्सुक हो इंद्राणीने शृंगारके लिये आयोजन करना प्रारंभ कर दिया ॥ २०-२१ ॥ जलसे प्रक्षालित शरीरके धारक और स्वभावसे हो सुन्दर भगवानके शरीरपर जो जलकी बूंद विद्यमान थीं इंद्राणीने सूक्ष्म और निर्मल वस्त्रोंसे उन्हे पोंछकर साफ कर दिया ॥२२॥ जिसकी उपमा किसीभी शरीर से नहीं दी जा सकती ऐसा भगवानका शरीर यद्यपि स्वभावसे ही

ललाटे तिलकीभूते जगतामीशतुर्दधे । तिलकं, मुकुटं, मूर्ध्नि मंदारस्रग्युतं च सा ॥ २४ ॥ ज्ञाननेत्रप्रभोर्विश्ववेत्तु परमचाक्षुषो । चक्रे स्वाजनसंस्कार स्वाचाराप्त्येह केवल ॥ २५ ॥ कर्णावविद्धसच्छिद्रौ कुंडलाभ्यामलंकृतौ । चकार मणिहारेण कंठे शोभां परां विभोः ॥ २६ ॥ बाहुयुग्म च केयूर-मुद्रिकाकंकणांकित । चक्रे सास्य कटीभाग मणिदामविभूषित ॥ २७ ॥ पादौ गोमुखनिर्भासैर्मणिभिस्तस्य रेजतु । वाचालितौ सरस्वत्या कृतसेवाविवाद्भुतौ ॥ २८ ॥ परब्रह्मस्वरूपो वा ज्ञानमूर्तिरिवोत्थित. । रत्नाकर इवात्यतसुदरो धर्ममूर्तिवत् ॥ २९ ॥ लक्ष्म्या पुंज वोद्भूतो

महा सुगंधित था इसलिये अन्य सुगंधित द्रव्योंसे उसका लेप करना निरर्थक था तथापि अपनी भक्ति प्रगट करनेकेलिये इंद्राणीने अत्यंत सुगंधित द्रव्योंका उनके अंगपर लेप कियाथा ॥२३॥ तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेंद्रका ललाट समस्त अङ्गोंमें तिलकस्वरूप था-अथवा संसारमें जितने भी ललाटधारी पुरुष हैं उन सबोंके ललाटोंमें तिलकभूत था इसलिये उस ललाटपर तो इंद्राणीने तिलक लगाया तथा मस्तकपर मंदार जातिके कल्पवृक्षकी मालासे शोभायमान मुकुट पहिनाया ॥ २४ ॥ नेत्रोंमें जो काजल लगाया जाता है वह नेत्रोंकी दीप्ति बढ़ानेके लिये लगाया जाता है । भगवान मल्लिनाथ समस्त लोकके जानकार थे और ज्ञानरूपी नेत्रके स्वामी थे इसलिये उनके नेत्रोंमें अंजन लगानेकी कोई भी आवश्यकता न थी तथापि उनके उत्तम नेत्रोंमें जो इन्द्राणीने अंजन लगाया था वह केवल शिष्टाचार द्योतन करनेके लिये ही था अर्थात् उसने अपना कर्तव्य कर्म पूरा किया था ॥ २५ ॥ वेधे न जानेपर भी स्वभावसे ही उत्तम छिद्रोंसे शोभित भगवान मल्लिनाथके दोनों कानोंको इन्द्राणीने मनोहर कुंडलोंसे भूषित किया एवं मणिमयी महामनोहर हार पहिनाकर उनका कंठ शोभायमान किया था ॥ २६ ॥ उनकी दोनों भुजाओंमें महामनोज्ञ अनंत मुद्रिका और कड़े पहिनाए थे । कटिभागपर महामनोहर मणिमयी करधनी बांधी थी, दोनों पैरोंमें मणिमयी घुंघुरू पहिनाए थे जो कि अनुपम थे एवं घनुनु घुनुनु शब्द करनेवाले थे सो ऐसे जान पड़ते थे मानो साक्षात् सरस्वती देवी उन दोनों घुंघुरुओंकी सेवा कर रही है ॥ २७—२८ ॥ उत्तमोत्तम वस्त्र भूषण और माला आदिसे सजाए गए एवं अपने शरीरकी मनोहर कांतिसे देदीप्यान वे भगवान मल्लिनाथ ऐसे जान पड़ते थे मानो साक्षात् परम ब्रह्मस्वरूप हैं अथवा उदयको प्राप्त साक्षात् ज्ञानकी मूर्ति है

निधिर्वा तेजसा महान्। राशिर्वा यशसा पुण्याणूनां वा परमाकरः ॥ ३० ॥ आश्रयो वा गुणानां स तदा देवो बभौ तरां । परमांशुकनेपथ्यमालाद्यैः स्वागकांतिभिः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा तदातनीं शोभा तृप्तिप्राप्य देवराट् । तं द्रष्टुं सहसा चक्रे सहस्रनयनान्यहो ॥ ३२ ॥ निमेषविमुखैर्दिव्यलोचनैश्च सुरासुरा । साश्चर्यहृदया देव्यो ददृशुस्तं च्युतोपमं ॥३३॥ पुनस्तोपातिरेकेण शक्रास्तं स्तोतुमुद्ययुः । प्रकटीकृत्य तीर्थेशमाहात्म्यतद्गुणाप्तये ॥ ३४ ॥ त्वं देव ! परमानंदं कर्तुमस्माकमुद्गत । प्रवर्धयितुमेवात्र धर्माब्धिं बालचंद्रवत् ॥ ३५ ॥ मिथ्याज्ञानांधकूपेऽत्र पततां मोहिनां

वा अत्यंत सुंदर होनेके कारण साक्षात् रत्नाकर--समुद्रस्वरूप हैं वा साक्षात् धर्मकी मूर्ति हैं। अथवा लक्ष्मीके पुंज स्वरूप हैं वा तेजोंके अद्भुत खजाने हैं। अथवा यशोंकी राशि हैं वा जितनीभर भी संसारके अंदर पुण्य परमाणुयें हैं उनके सर्वोत्कृष्ट स्थान हैं अथवा संसारमें जितने गुण माने जाते और कहे जाते हैं उन सबके आधार ये हो हैं इस रूपसे भगवान मल्लिनाथकी उस समयकी शोभा अपरमित थी ॥ २९—३१ ॥ भगवान मल्लिनाथकी उस समयकी अलौकिक शोभा देखकर सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी तृप्ति न हो सकी इस लिये उनके महामनोज्ञ रूपके देखनेकी उत्कट लालसासे उसी समय उसने हजार नेत्र बना लिए एवं हजार नेत्रोंसे उन का स्वरूप निरखने लगा ॥ ३२ ॥ भगवानके उस समयके अनुपम रूपको सुर असुर और उनकी देवियां अपने पलक रहित दिव्यनेत्रोंसे टकटकी लगाकर देखने लगे एवं उनके उस प्रकारके अलौकिक रूपको देखकर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे ॥ ३३ ॥ तथा तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथका माहात्म्य प्रगटकर उनके गुणोंकी प्राप्तिकी अभिलाषासे इन्द्रगण अत्यंत संतोषके साथ उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

जिस प्रकार बाल चंद्रमाके उदयसे लोगोंको आनंद होता है और समुद्र वृद्धिको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे भगवान! हम लोगोंको परमानंद प्रदान करनेके लिये और धर्मरूपी विशाल समुद्रके बढ़ानेके लिए बाल चंद्रमाके समान आपका उदय हुआ है ॥ ३४---३५ ॥ रतोंध आदिके द्वारा अंधे कूपमें पड़ा हुआ प्राणी थोड़ासा सहारा पाकर ही ऊपर आजाता है। हे देव ! मोहसे मूढ़ ये प्राणी संसार के अंदर मिथ्याज्ञानरूपी अंधेरे कूवेमें पड़े हुए हैं। इस समय इन्हें उस कूवेसे निकालनेके लिए कोई भी समर्थ नहीं।

स्फुटं। त्वं कारुण्यात्प्रभो हस्तावलंबं च प्रदास्यसि ॥ ३६ ॥ त्वं नाथ ! जगतां भर्ता त्वामिच्छति शिवात्मजा। त्वं धर्मात्मा जगन्नाथस्त्वं धर्मतीर्थ कारक. ॥ ३७ ॥ अस्नात पूतगात्रस्त्व न. पवित्रीकर सता। त्व जगन्मडनोभूतो निरावरणभास्कर ॥ ३८ ॥ त्वं च लोकत्रयीनाथो विश्वसत्त्व-। हितंकर । मोहपाश सता छेत्ता त्व वाल्येऽपि भविष्यसि ॥ ३९ ॥ त्वत्तो गुणाम्बुधे' सर्वे वृद्धिं यास्यति सद्गुणा । दृगाद्या धीमता दोपा' क्षयं रागाद्योऽपि च ॥ ४० ॥ न भवत्सदृशो देव ! जगद्बंधुर्जगद्गुरु' । स्वान्ययोर्हितकर्ता च परो जातु परात्मक' ॥ ४१ ॥ नि स्वेदाय नमस्तुभ्यं नमो

हे करुणासागर भगवान ? आपही दयासे गद्गद हो अपने हाथका सहारा दे उन्हें निकालेंगे और उनका उद्धार करेंगे ॥ ३६ ॥ हे नाथ ! तुम समस्त जगतके भर्ता—पोषण करनेवाले हो। अचिंत्य और अनुपम शक्तिके धारक आपहीको हे देव ! मोक्षरूपी कन्या वर वनानेकी इच्छा रखती है। हे तीन लोकके नाथ भगवान ! तुम ही धर्मस्वरूप हो और तुम ही धर्मतीर्थ की प्रवृत्तिके करनेवाले हो ॥ ३७ ॥ हे भगवान ! स्नानके न किये जाने पर भी तुम पवित्र शरीरके धारक हो और सज्जनोंको पवित्र करनेवाले हो। हे नाथ ! तुम्हीं समस्त लोकके अलौकिक भूषण हो और तुम्हीं जिसपर कभी भी आवरण नही आसकता ऐसे दैदीप्यमान सूर्य हो ॥ ३८ ॥ हे प्रभो। संसारमें तीनों लोकके नाथ आप ही हैं। समस्त जीवोंके हित और कल्याणके कर्ता भी आप ही हैं क्योंकि हे भगवान ! वालक (१) अवस्थामें ही समस्त मोक्षाभिलाषी जीवोंके मोहरूपी पाशको नष्ट करनेवाले आप ही होंगे ॥ ३९ ॥ हे समस्त गुणों के समुद्र भगवान ! सम्यग्दर्शन आदि जितने भी संसारके अंदर अनुपम और प्रशस्त गुण हैं आपकी कृपा से ही वे वृद्धिको प्राप्त होंगे—अर्थात् आप अपने अनुपम ज्ञानसे उनका स्वरूप समझावेंगे तव सज्जन पुरुष उन्हें अखंडरूपसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करेंगे तथा संसारमें डुवानेवाले जो राग आदि दोप हैं आपकी कृपासे ही वे सज्जनोंके नष्ट होंगे ॥ ४० ॥ हे देव ? संसारमें न तो कोई आपके समान समस्त जगतका वंधु है। न आपके समान कोई समस्त जगतका गुरु है। अपना और पराया हित करनेवाला भी आपके समान और कोई नही, हे नाथ ! आपके समान पवित्र आत्माका धारक भी कोई संसारके अंदर दृष्टिगोचर नहीं

(१) विवाहके समय ही ये भगवान मल्लिनाथ विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण करेंगे इसलिये वालब्रह्मचारी हैं।

निर्मलमूर्तये । क्षीराभशोणितांगाय ते चाद्याकृतये नमः ॥४२॥ आदिसंहननायैव दिव्यरूपाय ते नमः । सौरभ्याय नमस्तुभ्य सौलक्षण्याय ते नम ॥ ४३ ॥ अप्रमाणसुवीर्य्याय नमस्ते हितवादिने । मितवक्त्रे सहोत्पन्नदशातिशयशालिने । ४४ ॥ अन्यामितगुणायास्तु नमस्ते ज्ञानचक्षुषे । नमस्ते जगदानन्दकर्त्रे मुक्तिप्रियाय च ॥ ४५ ॥ त्वाममिष्टुत्य देवेश प्रार्थयामो जगच्छ्रिय । न वयं किंतु नो देहि भवद्वैभवमंजसा ॥ ४६ ॥ इति स्तुत्वा

॥ ४१ ॥ हे भगवान ! आपका शरीर स्वेद [पसेव] रहित है इस लिये पसेव रहित उत्तम शरीरके धारक आपके लिए नमस्कार है । आपका शरीर मल मूत्ररहित—निर्मल है इस लिये आपके लिये नमस्कार है। आपके शरीरके अंदर निंदित रक्त नहीं किंतु महामनोहर क्षीर समुद्र के जलके समान महास्वच्छ रक्त है इसलिए क्षीर समुद्रके जलके समान रक्तसे परिपूर्ण अंग के धारक आप केलिए नमस्कार है। हे नाथ ! आप समचतुरस् संस्थान्के धारक हैं इस लिये आपके लिए नमस्कार है। हे भगवान ! आप आदि संहननन—वज्रवृषभनाराच* संहननके धारक हैं और आपका रूप दिव्यरूप है इसलिए आपके लिए नमस्कार है। आपका शरीर अत्यन्त सुगंधिका धारक है और १००८ शुभलक्षणों से शोभायमान है इसलिए आपकेलिए नमस्कार है ॥ ४२—४३ ॥ हे देव ! जिसका किसी प्रकारका परिमाण नहीं किया जा सकता ऐसे अनुपम पराक्रमके आप धारक हैं एवं सर्वदा हितकारी मार्ग सुझानेवाले हैं इस लिए आपके लिए नमस्कार है। हे प्रभो। आप परिमित और समीचीन बोलनेवाले हैं इसप्रकार साथ साथ ही उत्पन्न होनेवाले दश अतिशयों से अत्यन्त शोभायमान हैं अर्थात् उत्पत्ति के समय दश आपके अतिशय होते हैं वे अन्यके नहीं हो सकते इसलिये आपके लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ हे भगवान ! ऊपर जितने गुणोंका उल्लेख किया गया है उनसे भिन्न भी अपरिमित गुणों के आप भंडार हैं और महादीप्तिमान ज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है। हे प्रभो आप समस्त जगतको अलौकिक आनन्द प्रदान करनेवाले हैं और अत्यन्त दुर्लभ मोक्षरूपी लक्ष्मीके प्यारे आप ही हैं इसलिए आपके लिए नमस्कार है ॥ ४५ ॥ हे जगन्नाथ ! आपको स्तुति कर हम आप से यह प्रार्थना करना

* वज्रर्षभनाराच १ वज्रनाराच २ नाराच ३ अर्धनाराच ४ कीलित ५ और स्फाटिक ६ ये छह संहनन हैं। तद्भव मोक्षगामियोंके पहिला ही संहनन होता है।

जगन्नाथं परमानंदनिर्भराः । प्रणेमुः शिरसा शक्राः सकलत्राश्च सामराः ॥ ४७ ॥ मल्लिकाधिकगंधौघदिव्यांगधारणः प्रभो । जेतुः कर्मादिशत्रूणां मल्लिनाम सुरा व्यधुः ॥ ४८ ॥ शेषकार्याप्तये तस्मात्तमादाय जगद्गुरुं । देवेशाः परया भूत्या पूर्ववत्तत्पुरं ययुः ॥ ४९ ॥ तत्र राजांगणे रम्ये तुंगे सिंहासने मुदा । सर्वाभरणभूषितं देवं सौधर्मेंद्रो न्यवीविशत् ॥ ५० ॥ शच्या प्रबोधिता माता बंधुभिः सह कुंभराट् । तेजःपुंजं मिवोद्भूतं मुदाऽपश्यन्निजसुतं ॥ निवेद्य सकलं मेरुवृत्तं तत्पित्रोः सुराः । प्रपूज्य स्वर्गजैर्भक्त्या वस्त्राभरणदामभिः ॥ ५२ ॥ धन्यौ पूज्यौ परौ मान्यौ स्तुत्यौ सौ

नहीं चाहते कि आप हमें समस्त जगतकी लक्ष्मी प्रदान करें परंतु प्रभो ! प्रार्थना यही है कि जिस अलौकिक ऐश्वर्यको आपने प्राप्त किया है जिसके कि सामने सारी संसारकी विभूतियां तुच्छ हैं कृपाकर इस परमोत्तम ऐश्वर्यको हमें भी प्रदान करिये ॥ ४६ ॥ इसप्रकार तीन जगतके नाथ भगवान मल्लिनाथकी स्तुतिकर परमानन्दसे गद्गद हो इन्द्रोंने अपने आज्ञाकारी देव और देवांगनाओं के साथ उन्हें मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ४७ ॥ कर्म आदि शत्रुओंके जीतनेवाले भगवान मल्लिनाथ मल्लिका पुष्पकी सुगंधिसे भी उत्कट सुगंधिवाले दिव्य शरीरके धारक थे इसलिये देवोंने उनका अन्वर्थ नाम मल्लिनाथ रक्खा था ॥ ४८ ॥ देवगण मेरुपर्वतपर जिस समय समस्त कार्य समाप्त कर चुके उस समय जो कुछ उनके जन्मकल्याणक सम्बन्धी कार्य बाकी बचा था उसे पूरा करनेके लिए तीन जगतके गुरु भगवान मल्लिनाथको लेकर पहिलेके ही समान बड़े ठाट बाटसे पुनः मिथिलापुरी लौट आए ॥ ४९ ॥ राजा कुम्भके आंगनमें एक महामनोहर विशाल सिंहासन विद्यमान था। समस्त अङ्गोंमें पहिने हुए भूषणोंसे भूषित भगवान मल्लिनाथ को इन्द्रने बड़े आनन्दसे उसपर विराजमान किया ॥ ५० ॥ इन्द्राणी भगवानके गर्भगृहमें गई और माताको जगाया तथा बंधु बान्धवोंके साथ राजा कुम्भकी भी मायामयी निद्रा दूर की। जहांपर भगवान मल्लिनाथको विराजमान किया गया था वहां पर वे आए एवं आनंदसे गद्गद हो उदय को प्राप्त तेज पुन्जके समान अपने पुत्रको देखा ॥५१॥ मेरु पर्वतपर जो भी अभिषेकके समय कार्य किया गया था वह सब भगवानके माता पितासे इंद्रने सानंद निवेदन किया। उत्तमोत्तम वस्त्र आभूषण और माला आदिसे समस्त देवोंके साथ भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की तथा आप समस्त लोकमें धन्य हैं पूज्य हैं उत्कृष्ट हैं मान्य

भाग्यपारगौ। युवा गुरू च लोकेऽस्मिन शशंसेत्यादि कल्पराट् ॥ ५३ ॥ इन्द्रादेशेन पौरैश्च बंधुभिः सह तित्पता। महापूजाभिषेकाद्यं जिनागारे महोत्सव ॥ ५४ ॥ कृत्वा चकार नानाविभूत्या तोरणकेतुभि। गीतनर्तनवाद्याद्यै। पुर्यां जातं महोत्सवं ॥ ५५ ॥ तदा नाना विधैर्दानै पूरयामास भूपति। आशा च निज वधूना दीनानाथादिवदिना ॥५६॥ प्रमोदनिर्भरं दृष्ट्वा समस्तं नगरीजन। व्यक्तीकुर्वन् प्रमोदंस्वं पित्रादीन्प्रति देवराट् ॥ ५७ ॥ आनदनाटक रम्य ननाटातिमनोहरं। स्वदेवीभि सहोत्कृष्ट जगदाश्चर्यकरादा ॥ ५८ ॥ अणुस्थूलादिनानावेषै सन्निकटदूरगे.। वीणावशमृदंगादिवाद्यैः सगीतनर्तनै. ॥ ५९ ॥ ततोऽस्य सवयोरूपनानावेषविधायिन। बहून् सुरकुमारांश्च धात्रीदेवीर्जिनेशिन ६० ॥ निरू-

हैं, स्तुति करने योग्य हैं, सौभाग्य के पारको प्राप्त हैं। अर्थात् आपसे बढ़कर कोई भाग्यवान नहीं। विशेष क्या! जब आप स्वयं तीर्थंकर भगवानके माता पिता हैं तब समस्त लोकके आप माता पिता हैं। इसप्रकार मनोहर शब्दोंमें भक्तिपूर्वक इंद्रने उनकी स्तुति की ॥ ५२—५३ ॥ पश्चात् इंद्रके कहे अनुसार भगवान मल्लिनाथके पिता राजा कुम्भने पुरवासी और अपने बंधु बाधवोंके साथ भगवान जिनेन्द्रके मंदिरमें महापूजा और अभिषेक आदिका महान उत्सव किया ॥ ५४ ॥ महोत्सवके बाद अनेक प्रकारकी वंदनवारें ध्वजायें एवं गीत नृत्य और बाजे आदिसे मिथिलापुरीमें भी बडा उत्सव मनाया गया ॥ ५५ ॥ भगवानके पिता राजा कुंभने अनेक प्रकारके दान देकर अपने बंधुओंकी और दीन अनाथ आदि वंदियोंकी भी इच्छा अच्छी तरह पूरण कर दी थी ॥ ५६ ॥ जिससमय समस्त नगर निवासी जन आनन्दमें मग्न थे उससमय भगवानके माता पिता आदिके साथ विशिष्ट सहानुभूति प्रदर्शित करनेकेलिये इंद्रने अपनी देवियोंके साथ अत्यन्त आनन्दमयी नृत्य किया जोकि सुहावना लगनेवाला अत्यंत मनोहर था। नृत्य करते समय कभी छोटा आकार तो कभी बड़ा आकार इस प्रकार अनेक आकार मालूम पड़ते थे। कभी अत्यंत निकटमें जान पड़ता था और कभी अत्यन्त दूर जान पड़ता था। वीन बांसुरी मृदंग आदि अनेक प्रकारके बाजे बजते थे एवं अनेक प्रकारके गाने और अनेक प्रकारसे शरीरका हिलाना डुलाना होता था इसलिये इस विशिष्ट बातोंसे वह नृत्य समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाला महामनोहर जान पड़ता था ॥५७—५९ ॥ जब नृत्यका कार्य समाप्त हो चुका उस समय धात्रीके वेषवाली देवियों को और भगवान जिनेन्द्रकी ही अवस्था-

प्य परिचर्यायै शुश्रूषाक्रीडनाय च । उपार्ज्य बहुधा पुण्यं दिवं जग्मुर्हि नायकाः ॥ ६१ ॥ हस्तश्वमर्कटादीनां रूपमादाय ते सुराः । क्रीड़यंती क्वचिद्देवा कचिद्‌व्यश्च सादरं ॥ ६२ ॥ मंडयंति जिनं काश्चिन्वानामंडनवस्तुभिः । स्नपयन्त्यपरा देव्यः काश्चित्सभूषयन्ति च ॥६३॥ मुखेऽसौ स्मितमातन्वन् प्रसर्पन्मणिभूमिषु । पित्रोर्मुदं ततानाद्यवयःक्रीडास्मितादिभिः ॥ ६४ ॥ तस्यासीच्छेशवं दिव्यं चन्द्रवच्च कलोज्वलं । बंधुदेवादिनेत्राणां परानंदोत्सवप्रदं ॥ ६५ ॥ दिव्ये मुखाम्बुजेऽस्यासीत्क्रमान्मन्मनभारती । सोनुस्खलन् पकन्यासै संचरेन्मणिभूतले ॥ ६६ ॥ तद्योग्यामृतपाना-

वाले उनके ही समान रूपके धारक और अनेक प्रकारके वेषोंके धारण करनेवाले बहुतसे देव कुमारोंको उनकी सेवा शुश्रूषा और साथ साथ खेलनेके लिये नियुक्त कर दिया इसलिये वे बराबर उसकी सेवा शुश्रूषा करने लगे और साथ साथ खेलने लगे इसप्रकार भगवान जिनेन्द्रके प्रति अनेक प्रकारकी भक्ति प्रदर्शित कर और उससे जायमान अनेक प्रकारका पुण्य उपार्जन कर समस्त देव स्वर्गको वा अपने अपने स्थानोंको चले गये ॥ ६०-६१ ॥ जिन देव कूमारोंकों भगवान जिनेन्द्रकी सेवा शुश्रूषा और उनके साथ खेलनेके लिये नियुक्त किया गया था वे देव कभी हाथीका रूप बना कर तो कभी घोड़ाका रूप बनाकर तो कभी बंदर आदिका रूप बनाकर भगवान जिनेंद्रके साथ क्रीड़ा करतेथे तथा उनकी सेवाके लिये जो देवियां नियुक्त थीं वे भी बड़ी भक्तिसे उनका आदर सत्कार करती थीं उनमें कोई कोई देवियां तो भगवानको अनेक प्रकारमंडन वस्तुओंसे मंडित करतीं थीं बहुतसी सुगंधित जलसे उन्हें स्नान कराती थीं और बहुतसी अनेक प्रकारके भूषण उन्हें पहिनाती थीं ॥ ६२-६३ ॥ वे भगवान मल्लिनाथ मंद मंद हास्य हंसते अर्थात् मुलकते थे मणिमयी भूमिपर रिंगते थे इसलिये बाल्य अवस्था, अनेक प्रकारकी क्रीड़ा और मुलकन आदिसे वे माता पिताको परमानंद प्रदान करते थे ॥ ६४ ॥ जिस प्रकार चांद्रमा नानाप्रकारकी कलाओंसे उज्ज्वल रहता है और देखनेवालोंके नेत्रों को आनन्द और उत्सव प्रदान करता है उसीप्रकार उन भगवान मल्लिनाथका भी शैशव काल दिव्य था चन्द्रमाके समान अनेक प्रकारके कला कौशलोंसे देदीप्यमान था एवं बंधु बांधव और देव आदिके नेत्रोंको अत्यन्त आनन्द और उत्सवका प्रदान करनेवाला था ॥ ६५ ॥ उन भगवानके मुखकमलसे मन्मन् स्वरूप अस्पष्ट भाषा निकलती थी । एवं मणिमयी भूमिपर खेलते हुए ने पद पद पर गिरते

धैर्वृधेऽस्य क्रमाद्वपु सार्धं चावयवै रम्यैः प्रज्ञाज्ञानगुणादिभिः ॥ ६७ ॥ कौमारत्वं ततः प्राप्य स्वयं परिणतिं ययुः । ज्ञानविज्ञानविद्या गुणास्त्रिज्ञानचक्षुपः ॥ ६८ ॥ ततोऽसौ परमानंदं पित्रादीनां प्रवर्धयन् । विमलैः स्वगुणैः प्राप क्रमात्सद्यौवनं शुभं ॥ ६९ ॥ क्वचिद्वीणादिवाद्यौघैर्नर्तकीनर्तनैः क्वचित् । क्वचित्काव्यादिगोष्ठीभिर्नानारूपादिधारिभिः ॥ ७० ॥ क्वचिच्च चेटकैर्दिव्यैः सौधर्मेंद्रो व्यधात्तरां । स्वशर्मणे विभोः शर्म विनोदादिकुतूहलैः ॥ ७१ ॥ स्रक्क्षौमभूषणैर्दिव्यैर्वयोयोग्यसुरार्पितैः । भूषितांगोऽतिकांत्या स जित्वा चे (त्वेनं) न्दुं व्यभात्तरां ॥ ७२ ॥ अष्टोत्तरसहस्रेण लक्षणानामलंकृतं । दिव्यमौदारिकं देहं निरौपम्यं विभोर्बभौ ॥ ७३ ॥ मुकुटालंकृतं तस्य शिरोनीलशिरोरुहं । दिव्यमालाधरं

पड़ते थे ॥ ६६ ॥ अपने योग्य महामनोज्ञ अन्न पान आदिके खाने से उनका शरीर क्रमसे दिनों दिन बढ़ता जाता था । एवं जिस प्रकार शरीर बढ़ता चला जाता था उसी प्रकार उनके महा मनोहर अवयव भी फैलते चले जाते थे एवं निरंतर वृद्धि [चतुरता] ज्ञान और गुण आदिकी भी वृद्धि होती चली जाती थी ॥ ६७ ॥ मति श्रुत और अवधिरूप तीन ज्ञानके धारक भगवान जिनेंद्रकी बाल्य अवस्थाके बीत जानेपर जिस समय कुमार अवस्था प्रकट हुई थी उस समय ज्ञान विज्ञान और बुद्धि आदि गुण आपसे आप वृद्धिको प्राप्त होने लगे थे ॥ ६८ ॥ कुमार अवस्थामें पिता माताको परमानन्द प्रदान करनेवाले भगवान जिनेंद्रने अनेक निर्मल गुणोंके साथ धीरे धीरे क्रमसे अत्यन्त शुभ यौवन अवस्थाको भी प्राप्त कर लिया था ॥ ६९ ॥ उस समय सौधर्म स्वर्गका इन्द्र अपनेको कल्याण प्राप्तिकी अभिलाषासे कभी कभी वीन आदि बाजोंसे, कभी कभी नृत्य करनेवाली देवांगनाओंके नृत्योंसे, कभी कभी काव्य आदिकी गोष्ठियोंसे, कभी कभी अनेक रूप हाव भाव आदिको धारण करनेवाली चेटक विद्याओंसे एवं कभी कभी अन्य प्रकारके विनोद और कुतूहलोंसे भगवान जिनेंद्रको अत्यन्त प्रसन्न रखता था ॥ ७०—७१ ॥ देवगण अवस्था और समयके योग्य माला वस्त्र और भूषण भगवानको पहिनाया करते थे इसलिये अवस्थाके योग्य देवों द्वारा पहिनाए गए माला वस्त्र और भूषणोंसे अलंकृत शरीरके धारक भगवान जिनेंद्र अपनी उग्र कांतिसे चंद्रमाको जीतनेवाले थे इसलिये उस समय वे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥ ७२ ॥ भगवान जिनेंद्रका शरीर एक हजार आठ लक्षणोंसे शोभायमान था, परम औदारिक था एवं उपमारहित था इसलिये वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥ ७३ ॥ नीले नीले घुंघुरूले बालोंसे शोभायमान

छिवेतो नृपदेवाद्यैर्विवाहार्थं व्रजन् पथि ॥ ८८ ॥ विलोक्य महतीं शोभा नगर्या' केतुपंक्तिभिः । तोरणैर्नृत्यवाद्याद्यैर्महोत्सवशतादिभि. ॥ ८९ ॥
स्मृत्वाऽपराजितं रम्यविमान पूर्वजन्मनि । तत्क्षण प्राप्य सवेग सावधिरिति चितयेत् ॥ ९० ॥ तत्रत्यैर्यद्यहो भोगै परैस्तृप्तिकरैर्वरै ।
नागातृप्ति मनाग्योऽगी निरोपम्यै सुखोद्भवै ॥ ९१ ॥ स किं यास्यसि तु प्राप्यैरत्रत्यैर्दु खसंभवैः । वपुर्विडवनोत्पन्नैस्तुच्छैर्भोगैर्व्यथार्णवै ॥९२ ॥

जानकार भगवान मल्लिनाथने अपने पिताके आग्रहसे जगद्रतिके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया एवं वे अनेक नृप और देवोंसे वेष्टित हो वड़ी विभूतिके साथ विवाहके लिये चल दिये। मिथिलापुरी उस समय रंग विरंगी ध्वजाओंकी पक्तियोंसे भांति भांतिके नृत्य और वाजे आदिसे जायमान सैकड़ों प्रकारके महोत्सवोंसे व्याप्त थी। राजद्वारसे निकलकर भगवान पृथ्वीपुरकी ओर जाने लगे। अपने पहिले जन्ममें उन्होंने अपराजित विमानकी विभूतिका उपभोग किया था इसलिये मिथिलापुरीकी अद्वितीय शोभा देखकर उन्हें अपराजित विमानका स्मरण उठ आया। उन्हें उसी समय संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया एवं अवधिज्ञानके धारक वे भगवान मल्लिनाथ अपने चित्तमें इस प्रकारका विचार करने लगे ॥ ८८—९० ॥—

अपराजित विमानके अंदर जिन भोगोंका भोग किया गया वे भोग महामनोज्ञ थे तृप्तिको करनेवाले उत्कृष्ट थे, अनुपम थे और सुखके कारण थे जव यह जीव उन विपुल भोगोंसे भी तृप्त नहीं हुआ तब क्या यह इस लोकके ऐसे भोगोंसे तृप्त हो सकता है? जो भोग वड़े दुःखसे प्राप्त होते हैं, अनेक प्रकारके दुखोंको देनेवाले हैं, शरीरको नष्ट भ्रष्ट करनेवाले हैं, अत्यन्त तुच्छ हैं और आधि व्याधि आदि अनेक व्यथाओंके समुद्र है ॥९१—९२॥ ईंधनके विपुल भी ढेरसे अग्निकी तृप्ति नहीं होसकती परन्तु कदाचित् दैवयोगसे उस ईंधनसे अग्निकी तृप्ति हो जाय। अनेक नदियोंके प्रवाहोंसे समुद्रकी तृप्ति नही होती परन्तु कदाचित् दैवयोगसे उसकी भी तृप्ति हो जाय। अनेक प्रकारके धनके संग्रहसे लोभी पुरुषकी तृप्ति नहीं हो सकती परन्तु दैवयोगसे कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाय परन्तु जो पुरुष विषयोंमें आसक्त कामी है उसकी भले प्रकार भोगे जानेवाले अनंते भवोंसे प्राप्त होनेवाले जिनका मिलना वड़ी कठिनता

१ वहनस्तृणकाष्ठसचयैरपि तुष्येदुदधिर्नदीशतै.। न तु कामसुखै पुमानहो वलवत्ता खलु कापि कर्मण' ॥ चन्द्रप्रभ काव्य।

तृप्तिमेति क्वचिद्दैवादग्निरिंधनराशिभिः । सरित्पूरैः समुद्रो वा लोभी च धनसंग्रहात् ॥ ९३ ॥ कामी न जातु संभुक्तैश्चानन्तभवगोचरैः ।
दुर्लभैर्विषयासक्तो भोगैरत्यन्तदुस्त्यजैः ॥ ९४ ॥ इयन्तं कालमेवाय भोगासक्तमना जनः । भुंजानो विविधं दुःखं भ्रमितो दुर्भवाटवीं ॥ ९५ ॥
भोगाशा वर्तते यावच्चित्ते सर्वाशुभाकरा । तावत्कुतः सतां मोक्षस्तं विना च कुतः सुखं ॥ ९६ ॥ ज्ञात्वेति प्रथमं त्याज्या सर्वे भोगा इवोरगाः ।
हालाहलनिभा दूरं शत्रवो वा मुमुक्षुभिः ॥ ९७ ॥ मुमुक्षूणामतश्चेदं महालज्जानिबन्धनं । विवाहादिकरं कर्म शिवघ्नं भवकारणं ॥ ९८ ॥

से है एवं जिनको छोड़ते समय भी महा कष्ट ज्ञान पड़ता है ऐसे भोगोंसे कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती ॥ ९३—९४ ॥ मनमें अत्यन्त भोगोंकी लालसा रखनेके कारण हो यह जीव इतने विपुल काल पर्यंत अनेक प्रकारके दुखोंको भोगता २ इस दुष्ट संसाररूपी महाभयानक वनीके अंदर चक्कर लगाता फिरता है एवं भोगोंमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण इसे वास्तविक मार्गका ज्ञान नहीं होता ॥ ९५ ॥ यह भोगोंकी तीव्र अभिलाषा संसारमें अनेक प्रकारके अशुभोंको उत्पन्न करनेवाली है जबतक यह चित्तके अंदर विद्यमान है तबतक कभी भी जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सक्ती और जबतक मोक्षकी प्राप्ति नही तबतक वास्तविक सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता इसलिये यह भोगोंकी अभिलाषा ही वास्तविक सुखकी बाधक है ॥ ९६ ॥ इसलिये जो पुरुष भोगोंके स्वरूपके वास्तविक रूपसे जानकार हैं और मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे भोगोंका स्वरूप अच्छीतरह जान कर सबसे पहिले इन भोगोंको दूर से ही छोड़ें क्योंकि ये भोग साक्षात् सर्पके समान हैं अर्थात् सर्प जिसे डस लेता है फिर वह जल्दी उछंगता नहीं उसीप्रकार भोगरूपी सर्पोंका डसा हुआ भी जल्दी नही उछंगता तथा ये भोग हलाहल विषके समान है अर्थात् जिसप्रकार हलाहल विषको पीनेवाला बचता नहीं उसीप्रकार भोगोंका काटा हुआ भी नही बचता इसीलिये ये विषय शत्रु स्वरूप हैं क्योंकि इनसे किसी प्रकारकी भलाईकी आशा नहीं ॥ ९७ ॥ इसलिये जो महानुभाव मुमुक्षु हैं संसारके समस्त प्रकारके बंधनोंको तोड़कर केवल मोक्ष ही चाहनेवाले हैं उन्हें विवाह आदिका कार्य सर्वथा छोड़ देना चाहिए क्योंकि यह विवाह आदिका कार्य अत्यन्त लज्जा का कारण है मोक्ष सुखका घात करनेवाला है और संसारमें घुमानेवाला है ॥ ९८ ॥ और भी यह बात है कि यह विवाह मिथ्या मंगलोंसे युक्त है अर्थात् विवाहमें जितने भी मंगलाचार किये जाते हैं वे सब

अलीकमगलोपेत' कृत्स्नदु'खादिसागर' । चिंतादिशतकृन्नृणा विवाह शर्मणे कुत' ॥ ६६ ॥ विना शृ खलया नारी वाह्यातवंधकारिणी । दु'फला भववल्ली वा सता नरकपद्धति' ॥ १०० ॥ शत्रुतुल्याः सुता विश्वधनधान्यादिभक्षकाः । इन्द्रजालनिभा लक्ष्मी' कुटुम्बं पाशसन्निभं ॥१०१॥ जीवित चपल पुंसा प्रातर्दर्भजलोपम । चाक्षार्थाः स्वजना विश्वे कामार्था क्षणभगुरा. ॥ १०२ अतो वृत्तं समादाय वालत्वेऽपि विचक्षणे ।

मिथ्या है समस्त दुख आदि विपत्तियोंका समुद्र है एवं विवाह होते ही सैकड़ों प्रकारकी चिंता पीछे लग जाती हैं इसलिये यह सैकड़ों प्रकारकी चिंताओंका कारण है इसलिये यह विवाह कभी भो कल्याणका करनेवाला नहीं हो सकता—जो महानुभाव इसे कल्याणका करनेवाला समझते हैं वह केवल भ्रम ही है ॥ ६६ ॥ मनुष्य आदिका शरीर साँकलसे ही जिकड़ कर वांधा जाता है परन्तु यह स्त्री सांकलके विना ही भीतर वाहर दोनों प्रकारसे वांधनेवाली है अर्थात् अन्तरंगमें मोहकी तीव्रतासे मनुष्य स्त्रीको छोड़-कर नहीं जा सकता और वाहिरमें जब छोड़कर चलता है तब वह उसके पीछे पड़ती है इसलिये भी छोड़कर नहो जा सकता तथा यह स्त्री खोटे फलोंको धारण करनेवाली संसाररूपी वेल है अर्थात् बेलपर अच्छे बुरे सब प्रकारके फल आते हैं परन्तु स्त्रीरूपी संसार वेलसे सदा दुष्ट फलोंकी ही प्राप्ति होती है। विशेष क्या ? यह स्त्री साक्षात् नरकका मार्ग है ॥ १०० ॥ पुत्र जिनको कि संसारमें उत्कृष्ट पदार्थ माना जाता है वे महा शत्रु हैं एवं संसारके समस्त धन धान्योंको भक्षण करनेवाले हैं। लक्ष्मी जो कि संसारमें वहुत वड़ी चीज मानी जाती हैं वह इन्द्रजालके समान निस्सार है क्योंकि जिसप्रकार इन्द्रजालका ठाट वाट देखते २ विलीन हो जाता है उसीप्रकार लक्ष्मीका वैभव भी देखते देखते विलीन हो जाता है तथा यह कुटुम्ब साक्षात् पाशके समान है ॥ १०१ ॥ प्रातःकालमें जिस प्रकार दर्भकी अनीपर लगी हुई जलकी अत्यन्त चंचल क्षण विनाशीक होती है उसीप्रकार मनुष्यों का जीवन भी अत्यन्त चंचल और विनाशीक है तथा इन्द्रियोंके विषय बंधु वांधव आदि स्वजन एवं संसारके समस्त काम भोग क्षणभंगुर हैं ॥ १०२ ॥ इसलिये जो पुरुष विचक्षण हैं वास्तविक रूपसे संसारके स्वरूपके जानकार हैं उन्हें बाल अवस्थामें ही सम्यकचारित्रको ग्रहण कर लेना चाहिये एवं प्रतिक्षण अपनी मौतकी आशंका कर उन्हें बहुत जल्दी मोक्षकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये ॥ १०३ ॥ जबसे जीव उत्पन्न होता है तभीसे यह यमराज

साधनीयो द्रुत मोक्षो मृत्युमाशक्य चात्मन ॥ १०३ ॥ आजन्मतो यम स्वार्तं जीवान्नयति प्रत्यहं । दिनाद्यैर्यद्यहो कात्र धर्मे कालविलंवना ॥१०४॥ अक्षायुगृहराज्यभोगपरिवारश्र्यादयश्चचला शपाभाश्च न विद्यतेऽत्र शरणं मृत्यो सुधर्मं विना । ससारोऽति भयंकरोऽतिचपलो दु खार्णवोऽशर्मभृदेकोऽप्यघपातक प्रतिदिनं दु खी भ्रमेत्ससृति ॥१०५॥ आत्मान्योऽगकुटुम्ब कर्म सकलोऽज्ञानी प्रकृत्या महान् । कायोऽयं यमधामदु खजलधि॰ सर्वाशुचीना निधि । मिथ्यात्वादिभवोऽप्यनतभवकृत कर्मास्रवो दु खद॰, सर्गाधादिनिरोधनोऽसुखहरो मोक्षप्रद॰ सवर॰ ॥ १०६ ॥ दु कर्मक्षय-

दिन पक्ष मास आदिके हिसाव से जीवको मृत्युके मुखमें प्रविष्ट करानेका प्रयत्न करता है इसलिये धर्मके अन्दर इसप्रकार कालका विलंब नही करना चाहिये कि हम आज न धर्म सेवन करेंगे तो कल करलेंगे वा यह समय विषय भोग भोगनेका है वृद्धावस्थामें जाकर धर्म करलेंगे क्योंकि मृत्युका कोई निश्चय नहीं ॥१०४॥

संसारके अंदर इन्द्रियां आयु घर राज्य भोगोपभोग परिवार और लक्ष्मी आदि जितने भी पदार्थ है वे सब जिस प्रकार विजली चमक कर शीघ्र नष्ट हो जानेवाली है उस प्रकार नष्ट हो जानेवाले हैं यदि संसारमें शरण है तो एक समीचीन धर्म ही है। धर्मके सिवाय मृत्युके मुखसे वचानेवाला कोई भी शरण नहीं। यह संसार अत्यन्त भयानक है अतिशय चंचल है। अनेक प्रकारके दुखोंका समुद्र है एवं अनेक प्रकारके कल्याणोंका करनेवाला है। ऐसे महा भयानक संसारमें यह विचारा दीन जीव अकेला ही अपने पाप कर्मोंके फलसे महा दुखित हो भ्रमण करता फिरता है इसे रंचमात्र भी शांति नहीं मिलती ॥ १०५ ॥ आत्मा पदार्थ ज्ञानी है। आत्मासे भिन्न शरीर कुटुम्ब और समस्त कर्म स्वभावसे ही महा अज्ञानी हैं। यह शरीर जिसका कि लोगोंको घमण्ड है वह यमराजके रहनेका स्थान है। अनेक प्रकारके दुःखोंका समुद्र है एवं रक्त मांस आदि जितने भी अपवित्र पदार्थ हैं उन सवका खजाना है। तथा कर्मोंका आस्रव मिथ्यात्व अविरति आदि कारणोंसे जायमान है। अनंतकाल पर्यंत संसारमें घुमाने वाला है एवं नाना प्रकारके दुःखोंका देनेवाला है तथा संवर समस्त पाप कर्मोंका रोकनेवाला है। दुःखका हरण करनेवाला है और मोक्षको प्रदान करता है ॥ १०६ ॥ संवरके बाद निर्जरा होती है वह निर्जरा समस्त अशुभ कर्मोंकी क्षय करनेवाली है उत्कृष्ट तपसे जायमान है और मोक्षको प्रदान करनेवाली है तथा यह लोक दुख और सुख का स्थान है, अत्यन्त विषम है, अनादि है एवं ऊर्ध्वलोक मध्य लोक पाताललोकके भेदसे तीन प्रकारका

कारिणी वरतपोजा निर्जरा मुक्तिदा लोको दुःखसुखाकरोऽतिविषयोऽनादिस्त्रिधा शाश्वतः। मानुष्यं सकलेंद्रियं च सुकुलं बोध्यादिकं दुर्लभ, धर्मो विश्वसुखाकरो दशविधो दुःखाखिलाघातक ॥ १०७ ॥ इति कुम (मा) रजिनेशो भावना द्वादशैव विरजसि हृदयेऽनुचिंत्य संवेगसवं। शिवसुचरणहेतुं प्राप य काललब्ध्या भववपुषि सुखादौ सोऽस्तु मे तद्गुणाप्त्यै ॥ १०८ ॥

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीतिविरचिते मल्लिनाथवैराग्योत्पत्तिवर्णनो नाम पंचमः परिच्छेदः ॥ ५ ॥

—*—

सदा रहनेवाला है। संसारहै मनुष्य भवका पाना, समस्त इन्द्रियोंका पूरा होना उत्तम कुलका मिलना एवं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप बोधिका होना महा दुर्लभ है—बड़ी कठिनतासे इनकी प्राप्ति होती है। धर्म समस्त संसारके सुखोंका स्थान है। उत्तम क्षमा १ उत्तम मार्दव २ उत्तम आर्जव ३ उत्तम शौच ४ उत्तम सत्य ५ उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिंचन्य ९ और उत्तम ब्रह्मचर्य १० के भेदसे दश प्रकारका है एवं संसारके अन्दर जितने भी दुःख हैं उन सबका सर्वथा नाश करने वाला है ॥ १०७ ॥ इसप्रकार अनित्य १ अशरणत्व २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० बोधिदुर्लभ ११ और धर्म १२ इन बारह भावनाओंका अपने निर्मल चित्त में विचार करनेसे उन कुमार भगवान मल्लिनाथको संसार शरीर और विषय सुख आदिसे मोक्ष प्राप्तिका प्रधान कारण संवेग हो गया। उस समय सिवाय आत्मस्वरूपके कोई भी उन्हें अपना न सूझने लगा ॥ १०८ ॥

इसप्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थविरचित हिन्दी वचनिकामें भगवान मल्लिनाथकी वैराग्य उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला पाचवां परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

—*—

निर्दग्धं येन वाल्येऽपि विषयारण्यमञ्जसा । सार्धं दुष्कर्मवृक्षौघैस्तपोऽग्निनात्र त स्तुवे ॥ १ ॥ अथ देवर्षयो दक्षा निसर्गब्रह्मचारिण' । एकावतारिण. पूज्या' द्विसप्तपूर्ववेदिन. ॥ २ ॥ लोकातिकास्तदागत्य सारस्वताद्योऽष्टधा । मूर्ध्ना नत्वाऽतिभक्त्या तं स्तोतु प्रारेभिरे जिनं ॥३ ॥ त्व देव त्रिजगत्स्वामी त्व त्रातासि भवार्णवात् । कर्ता त्वमेव लोकेऽस्मिन् धर्मतीर्थस्य तीर्थराट् ॥४॥ नि कारणो जगद्बन्धु .कृपानाथस्त्वमेव हि। त्वमेव मुक्तिकान्ताया भर्ता सभवसि स्वयं ॥ ५॥ न' सबोधयिताऽसि त्व न बोध्योऽस्माभिरेव च । दीयते किं प्रकाशाय दीपो दिनकरस्य च

अथ छठा परिच्छेद ।



जिन भगवान मल्लिनाथने तपरूपी जाज्वल्यमान अग्निके द्वारा विषयरूपी विस्तीर्ण वन मय दुष्कर्मरूपी वृक्षोंकी श्रेणीके वाल अवस्थामें ही देखते देखते भस्म कर डाला । उन वाल ब्रह्मचारी जिनेंद्रको मैं भक्ति भावसे प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होकर जिस समय भगवान मल्लिनाथ वारह भावनाओंका चिन्तवन कर रहे थे उसी समय लौकांतिक देव जो कि अपने परम पवित्र भावोंसे देवोंमें ऋषि कहे जाते हैं, महा चतुर होते हैं, स्वभावसे ही ब्रह्मचारी होते हैं, एक भवावतारी होते हैं—अर्थात् मनुष्यभव धारण कर ही मोक्ष चले जाते हैं अतएव पूज्य होते हैं चौदह पूर्वोंके धारक होते हैं एवं सारस्वत आदित्य आठ:जिनके भेद हैं, शीघ्र ही भगवानके समीप आये मस्तक झुकाकर नमस्कार किया एवं भक्तिसे गद्गद हो वे भगवान जिनेन्द्रकी इसरूपसे स्तुति करने लगे—

हे देव ! तुम तीन जगतके स्वामी हो, संसाररूपी अगाध समुद्रमें डूवते हुये प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले आप ही हैं । हे तीर्थोंके राजा ! इसलोकमें इस समय धर्मतीर्थके प्रवर्तक आप ही हैं ॥ २—४ ॥ हे प्रभो ! आप समस्त जगतके अकारण बंधु हैं कृपानाथ हैं एवं आप ही स्वयं मुक्तिरूपी स्त्रीके स्वामी होनेवाले हैं ॥ ५ ॥ लोग ऐसा समझते हैं कि जिस समय भगवान तीर्थंकरको वैराग्य होता है उस समय लौकाँतिक

॥ ६ ॥ त्वं स्वयंभू स्वयंबुद्धो विश्वज्ञो ज्ञाननेत्रवान्। स्वान्ययोर्हितकृद्दे व त्वयाऽत्रेदमनुष्ठितं ॥७॥ यतो बाल्येऽपि तीर्थेश! मोहारिं मदनादिभिः। साधं हत्वा विरागासिना चारित्रे मतिः कृता ॥ ८ ॥ भुक्त्वा ये विविधान् भोगान् रुच्यंते त्यजंति न। तदाश्च (स्व) र्यमिदं चित्रं त्वयिनाथ

देव उन्हें आकर संबोधते और उनके वैराग्यको दृढ़ करते हैं परन्तु हे भगवान! यह कहना कल्पनामात्र है क्योंकि जिस प्रकार अखंड दीप्तिका भंडार सूर्य स्वयं प्रकाशमान है उसे प्रकाश करनेकेलिये दीपककी आवश्यकता नहीं पड़ती उसी प्रकार हे नाथ! उत्तम ज्ञानके धारक आप हम सबोंके सम्बोधनेवाले हैं—हमें समीचीन मार्गके सुझानेवाले हैं हमारे द्वारा कभी भी आप सम्बोधे नहीं जा सकते अर्थात् हमें आपको सम्बोधन करनेवाला बतलाना सूर्यको दीपक दिखाना है ॥ ६ ॥ हे भगवान! आप स्वयं उत्पन्न होनेवाले हैं इसलिये स्वयंभू हैं। आपको सम्बोधन करनेवाला कोई अन्य नहीं—अपने सम्बोधन करनेवाले आप ही हैं इसलिये आप स्वयंबुद्ध हैं समस्त लोक अलोकको जाननेके कारण आप सर्वज्ञ हैं। ज्ञानरूपी नैत्रके धारक हैं। हे देव! आपने जो विचार किया है वह अपना पराया हित करनेवाला है इसलिये वह सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि हे दयासागर भगवान! बाल्य अवस्थाओंमें ही आपने वैराग्यरूपी तीक्ष्ण खड्गके द्वारा अत्यन्त भयङ्कर कामदेव आदिके साथ मोहरूपी शत्रुको नष्टकर महा तीक्ष्ण सम्यक् चारित्रके धारण करनेका साहस किया है ॥ ७—८ ॥ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर जो पुरुष तृप्ति होनेपर भी उनसे विरक्त नहीं होते यह आश्चर्य है अर्थात् तृप्ति होनेपर भोगोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये किन्तु जो ऐसा नहीं करते वे बड़ा अचरजका काम करते हैं परन्तु मोक्ष प्राप्तिके लिए सर्वथा उद्यत आपने विना ही भोगे उनका सर्वथा त्याग कर दिया यह सबसे बढ़कर आश्चर्यको बात है इसलिये हे नाथ! इस संसारमें सबसे धन्यबादके पात्र आप ही हैं। हे भगवान! बाल्य अवस्था ही में आप रागके जीतने वाले हैं अर्थात् किसी भी पदार्थमें आपका राग नहीं—सबसे अधिक राग की कारण स्त्री है सो उसका बंधन भी आपने नष्ट कर दिया--विवाहसे ही विरक्त हो गये, इसलिए मुखमें पहुंचते हुये ग्रासके त्यागके कारण अर्थात् रागके तीव्र बन्धन विवाहसे सर्वथा मुह मोड़ने और सम्यक् चारित्रमें प्रवृत्त होनेके कारण

शिवोद्यते ॥ ६ ॥ अतो नाथ ! त्वमेवात्र धन्यो यात्येऽपि रागजित् । मुखग्रासागतत्यागान्नान्यस्त्वत्सदृशो भुवि ॥ १० ॥ त्वयोदितमहाज्ञानपोतमासाद्य धीधनाः ! भवाब्धिमुत्तरिष्यंति स्वामिन्नत्र न संशय ॥ ११ ॥ भवद्वाक्यामृते पूर्णं धर्मतीर्थं विदो महत् । आप्य प्रक्षालयिष्यति दुष्कर्ममलस चयं ॥ १२ ॥ त्वं ज्ञानज्योत्स्नया देव ! मोहादिध्वांतमजसा । हत्वा सालोकयिष्याति भव्या मुक्तिपथं भुवि ॥ १३ ॥ भवंत पोतसादृश्यं सहायीकृत्य योगिन । केचिद्यास्यति निर्वाण रत्नत्रयधनेश्वरा ॥ १४ ॥ भवद्धर्मोपदेशेनोपार्ज्यान्यपरम वृष । भव्या सर्वार्थसिद्धिं च नाकं वा त्वत्सम श्रियं ॥ १५ ॥ केचिद् ग्रैवेयक दिव्यं केचिच्चक्रयादिगोचरा । लक्ष्मीं केचिन्महाभोगान् वै भोक्ष्यन्ति न चन्यथा ॥ १६ ॥

आप एक अद्वितीय व्यक्ति हैं आपके समान कोई भी नररत्न संसारके अंदर नहीं ॥ ६—१० ॥ हे प्रभो ! आपके अन्दर महाज्ञान केवलज्ञानका उदय होगा उस केवलज्ञानरूपी जहाजका आश्रय कर अर्थात् उस केवलज्ञानकी कृपासे यथार्थ उपदेश पाकर ये विद्वान भव्य प्राणी ससाररूपी महागंभीर समुद्रको तर जावेंगे इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ११ ॥ गंभीर जलसे भरा हुआ गंगा आदिका तीर्थ जिस प्रकार मैलका काटने वाला माना जाता है उसी प्रकार तुम्हारी वचनरूपी अमृतसे परिपूर्ण विशाल धर्मरूपी तीर्थको पाकर भव्य जीवोंके दुष्कर्मरूपी मैलका समूह नियमसे धुलेगा ॥ १२ ॥ हे देव ! तुम्हारे ज्ञानरूपी चांदनीकी ही कृपासे मोह आदि रूप विपुल अन्धकारको नष्ट कर ये भव्यजीव इस संसारमें मोक्षके मार्गको भले प्रकार देखेंगे ॥ १३ ॥ जिसप्रकार रत्नोंके व्यापारी सेठ जहाजकी सहायतासे अपने अभीष्ट स्थानपर पहुंच जाते हैं उसी प्रकार जो योगी रत्नत्रयरूपी विशिष्ट धनके स्वामी हैं वे जहाजके समान आपकी सहायता पाकर मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे द्वारा समीचीन धर्मका उपदेश सुन उत्तम धर्मका उपार्जनकर कोई कोई भव्य सर्वार्थसिद्धि प्राप्त करेंगे। वहुतसे स्वर्ग जांयगे और बहुतसे तुम्हारे समान लक्ष्मी प्राप्त करेंगे अर्थात् आपके समान तीर्थंकर होकर अनन्त विभूति प्राप्त करेंगे ॥ १५ ॥ कोई कोई दिव्य ग्रैवेयकमें जन्म धारण करेंगे कोई २ अत्यन्त पुण्यशाली चक्रवर्तीके होनेवाली लक्ष्मी प्राप्त करेंगे और कोई २ महानुभाव नियमसे मोक्ष प्राप्त करेंगे किन्तु उपदेशके विना सर्वार्थसिद्ध आदि विशिष्ट अभ्युदयके कारण स्थानोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ १६ ॥ इसलिये हे देव ! हमारी यह विनम्र प्रार्थना है कि आप कालका अल्प भी विलम्ब न कर शीघ्र ही संयम धारण करें जिससे अपना पराया अलौकिक हित हो क्योंकि जब

अतो देव ! त्वमेवाशु मुक्त्या कालविलंबितं । गृहाण संयम येन स्वान्ययोर्हितमद्भुत ॥ १७ ॥ इत्यभिष्टुत्य तीर्थेशं संप्रार्थ्य यद्गता श्रियं । मुहुर्नत्वा प्रशास्यौच्चैर्दिव्यवाक्यैर्मनोहरैः ॥ १८ ॥ कृत्वात्मीय नियोगं ते दीक्षाकल्याणशंसिन. । उपार्ज्य बहुधा पुण्यं ब्रह्मलोकं मुदा ययु ॥ १९ ॥ अथ दिव्यविभूत्यामा जगदाश्चर्यकारिण । गीतनर्तनवाद्याद्यैः स्वस्ववाहनमाश्रिता ॥ २० ॥ चतुर्णिकायजा. शक्रा. सकलत्राः सुरावृताः । धर्मात्तमानसास्तत्राजग्मु कल्याणसिद्धये ॥ २१ ॥ ततस्त परिनिष्क्रांतिकल्याणाय सुरै सम । अभिषिच्य महाभूत्या कुंभैः क्षीराबुसभृतै ॥ २२ ॥ देवेंद्रा भूषयामासुरारोप्य हरिविष्टरं । भूषणैः परमैर्माल्यैर्वस्त्रैश्च मलयोद्भवैः ॥२३॥ दिव्यवाण्या प्रबोध्यानु महाकष्टेन मोहिन । पित्रादींश्च श्रिय त्यक्त्वा तृणवत्सयमोद्यतः ॥ २४ ॥ इन्द्रहस्तं समालंब्यारुरोह भूषणान्वित. । यान जयतसंज्ञं स पराद्ध्यमणिनिर्मितं ॥२५॥ देवोऽसौ शिबिकारूढो

तक आप संयम न धारण करेंगे तब तक न तो आप अपना हित कर सकते हैं और न किसी दूसरेका ही ॥१७॥ इसप्रकार भगवानके दीक्षा कल्याणको प्रशसा करनेवाले लौकांतिक देवोंने, पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान मल्लिनाथकी स्तुतिकर, 'आपको जो कुछ विभूति प्राप्त है वह विभूति हमें भी प्राप्त हो' ऐसी प्रार्थनाकर बार बार नमस्कारकर एवं मनोहर दिव्य वाक्योंसे प्रशंसा कर अपना नियोग समाप्त किया तथा इन शुभ चेष्टाओंके द्वारा बहुत प्रकारसे पुण्य उपार्जनकर वे अपने निवास स्थान ब्रह्मलोकको सानंद चले गये ॥ १८—१९ ॥

लौकांतिक देवोंके चले जानेके बाद चारो निकायके इन्द्रगण उनके तप कल्याणकी पूजाके लिये मिथिलापुरी आए वे देव उस समय बड़ी विशाल विभूतिसे मंडित थे। गीत नृत्य और बाजे आदिसे समस्त जगतको आश्चर्य करनेवामें थे, अपनी २ देवांगना और आज्ञाकारी देवोंसे व्याप्त थे और अत्यंत धर्मात्मा थे ॥ २०—२१ ॥ मिथिलापुरीमें आकर चारो निकायके इन्द्रोंने अपने साथमें आए हुए देवोंके साथ दीक्षा कल्याणके उपलक्षमें चीरोदधिसे भरे हुए मनोहर कलशोंसे भगवान जिनेंद्रका बड़े ठाट बाटके साथ अभिषेक किया। सिंहासनपर विराजमानकर उत्तमोत्तम भूषण मालायें और मलयागिरिके वस्त्रोंसे उनका शृंगार किया ॥ २२—२३ ॥ भगवान जिनेंद्रका इसप्रकार जिनदीक्षाके लिये उत्साह देखकर परम मोही उनके माता पिता महाशोक और महा दुःख करने लगे। भगवान जिनेंद्रने बड़े कष्टसे उन्हें मनोहर वाणीसे समझाया और दिलासा दी। जीर्ण तृणके समान समस्त लक्ष्मीका परित्याग कर दिया एवं संयम धारण करनेके लिये सर्वथा तैयार होगए ॥ २५ ॥

वीज्यमानः सुचामरैः । सितैर्देवकराब्जस्थैर्वरो वाभात्तप.श्रिय ॥ सप्तपदानि तामूह्य स्कंधेन प्रथमं नृपा. । ततो विद्याधरानिन्युर्व्योम्नि सप्तपदावलीं तत स्वकंधमारोप्य शिविका ता सुरासुरा· । खमुत्पेतुः प्रमोदाढ्या जनानां दृष्टिगोचरं ॥ मोहारिविजयोद्भूतगीतप्रस्थानमंगलैः । ध्वनद्भिर्विविधैर्वाद्यै नर्तनोत्सवकोटिभि ॥ मोहारिविजयोद्योगं घोषयतो जगद्गुरो । जयकोलाहल चक्रु र्दृष्ट्वा अग्रे मुदा सुरा ॥३०॥ इत्यादिकृतमाहात्म्यकल्पेशै परितो वृतै. । देव. पुराद्विनिष्कामन् पौरै रित्यभिनदित ॥ ३१ ॥ व्रज सिद्ध्यै हतारीश्च शिव पन्था विभोस्तु ते जय नदेश देव त्व विश्वकल्याण-

भूषणोंसे शोभायमान वे भगवान जिनेंद्र इन्द्रके हाथका सहारा लेकर उत्तमोत्तम मणियोंसे निर्मित जयंती * नामकी पालकीमें शीघ्रही सवार होगये ॥ २६ ॥ जिस समय वे पालकीमें वैठ गए उससमय देवगण अपने हाथोंमें धारणकर सफेद चमर उनपर ढोरने लगे इसलिए उससमय वे ऐसे जान पड़ने लगे मानो तपरूपी लक्ष्मीके ये साक्षात् दूल्हा हैं ॥ २६ ॥ सबसे पहिले सात पैंड़ तक तो राजा लोग अपने कंधोंपर रखकर उनकी पालकी ले चलने लगे। उनके बाद आकाशमें सात पैंड तक उनकी पालकी विद्याधरगण ले चले। उनके पीछे सुर और असुरोंने उनकी पालकी अपने अपने कंधोंपर रक्खी। एवं आनंदसे गद्गद वे मनुष्योंकी दृष्टिके गोचर होकर आकाशमें चलने लगे ॥ २७ ॥ उससमय मोहरूपी शत्रुके विजय संबंधी गीत, प्रस्थानं मंगल, नानाप्रकारके वजनेवाले वाजे और नृत्य इस प्रकार करोड़ों उत्सवों के साथ तीन जगतके गुरु भगवान जिनेंद्रके मोहरूपी शत्रुके विजयकी घोषणा करते हुये वे देव उससमय आनन्दसे पुलकित थे एवं बड़े हर्षसे “ हे देव ! आपकी जय हो, जय हो,” इसप्रकार उनके आगे आगे जय जय शब्दका कोलाहल करते चले जाते थे ॥ २६-३० ॥ चारों ओरसे घेरकर खड़े रहनेवाले देवेंद्रोंद्वारा जिनका उपर्युक्त रूपसे माहात्म्य प्रकट किया गया है ऐसे वे भगवान जिनेंद्र जिससमय मिथिलापुरीसे बाहर निकले थे उस समय पुरवासी लोगोंने उनका इस रूपसे अभिनन्दन किया था।

हे स्वामिन्। हे देव ! आप मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करनेके लिये सिधारें। कर्मरूपी शत्रुओंके नाश करने में आप समर्थ हों। हे प्रभो ! तुम्हारा मार्ग कल्याणका करनेवाला हो। आप जयवंते रहें, नादें विरदें एवं

* हरिवंशपुराणमें मल्लिनाथ भगवानकी पालकी का नाम जयंती लिखा है।

भाग भव ॥ ३२ ॥ तपोऽर्थं तं व्रजं तं निलोक्य केचिद्विचक्षणाः । जगुः परस्परं हीति परमाश्चर्यकारणं ॥ ३३ ॥ अहो पश्य महर्द्धीदं चित्रं देवोऽयमद्भुतः । त्यक्त्वा बाल्येऽपि कन्यादीन् यतो गृह्णाति संयमं ॥ ३४ ॥ अन्ये प्राहुरहो नेह चित्रं किन्तु जिनोप्ययं । हत्वा घातीन् जगद्राज्यं स्ववशे सकरिष्यति ॥ ३५ ॥ परे प्राहुरहो केचिज्जायते पुरुषोत्तमाः । अत्र हंतुं क्षमाः कौमारत्वेऽप्यिक्षस्मरारातीन् ॥ ३६ ॥ इत्यादिविविधालापैः श्लाघ्यमान पुरैर्जनै । सयमश्रीवराभोऽसौ पुरोपातं (?) न्यनीयिवान् ॥ ३७ ॥ अथ मप्रस्थिते सूनौ जिनाग्राग पुराकुना । बंधुभि सह शोकाढ्या स्वपुत्रमनु निर्ययो ॥ ३८ ॥ प्रस्खलत्पदविन्यासैर्मुक्तकेशा गतप्रभा । हा पुत्रे नि क्रंदंती प्रताडयती निजोदर ॥ ३९ ॥ नछियोगाग्निदग्धाणा बभूवुर्बंध-

समस्त प्रकारके कल्याणोंके प्राप्त करनेवाले हों ॥ ३२ ॥ जिस समय भगवान तपके लिये जा रहे थे उस समय उन्हें देखकर बहुतसे चतुर पुरुष आपसमें यह कहकर अत्यन्त आश्चर्य करते थे कि देखो ! यह बात बड़ी ही अचरज करनेवाली है कि महान ऋद्धिके धारी, अद्भुत पराक्रमशाली ये भगवान जिनेन्द्र बाल अवस्थामें ही कन्या आदि लुभानेवाले पदार्थोंसे ममत्व तोड़कर संयम धारण करनेके लिये चल दिए हैं ॥ ३३—३४ ॥ अन्य बहुतसे मनुष्य यह कहते थे कि इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है। ये भगवान जिनेंद्र कम चतुर नहीं हैं क्योंकि ये नियमसे समस्त घातिया कर्मोंका नष्टकर तीन लोकके राज्यको अपने वशमें करना चाहते हैं और नियमसे उसे अपने आधीन करेंगे ॥ ३५ ॥ बहुतसे चतुर पुरुष यह विचार प्रदर्शित करते थे कि इस संसारमें विरले ही ऐसे पुरुष उत्पन्न होते हैं जो कुमार अवस्थामें ही इंद्रिय और कामदेवरूपी वैरीके जीतनेमें पूरी पूरी सामर्थ्य रखते हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके वचन कह कह कर पुरवासी जनोंसे प्रशंसा किये गये और संयमरूपी लक्ष्मीके वरसरीखे जान पड़नेवाले वे भगवान जिनेंद्र पुरवासी जनोंके अदृश्य हो गये थे ॥ ३७ ॥

जिससमय भगवान जिनेंद्र दीक्षाके लिए चले गए उनकी माता प्रजावतीको बड़ा दुःख हुआ शोकसे विह्वल हो वह अपनी अंतः पुरकी रानियों और बन्धु बांधवोंके साथ भगवान जिनेंद्रके पीछे पीछे चलने लगीं ॥ ३८ ॥ रानी प्रजावतीकी दशा उस समय बड़ी दयार्ह थी दुःखकी तीव्रतासे उसके दोनों पैर लड़ते २ जमीन पर गिरते थे। शिरके बाल बुरी तरह बीखर रहे थे, शरीरकी सारी कांति फीका पड़ गई थी। हाय प्यारे पुत्र ! तू मुझ अभागिनीको क्यों छोड़कर दीक्षाके लिए चल दिया। इसप्रकार वार वार रोती

वस्तदा। निपेतुर्भूतले केचिन्मूर्छामीलितलोचनाः ॥ ४० ॥ मत्स्वामिन् ! क्व गतोसि त्वं कदा मेलापकस्तव। धरिष्यामः कथं प्राणांस्त्वच्छियोगार्तचेतसः ॥ ४१ ॥ इत्यादि शोचनैर्वाक्यैर्भृत्याश्च बन्धवः स्त्रियः । कुर्वंतो रोदनं देव्यामा मार्गेऽनुव्रजंति तं ॥ ४२ ॥ महत्तरैस्तदागत्य तां निरुद्ध्य निरूपितं । माव्रज त्वं न किं वेत्सि देवि ! वृत्तं जगत्पते ॥ ४३ ॥ मृगवद्बंधपाशे तिष्ठेत्क्व सिंहः कथं तत्र । वीतरागो मुमुक्षुः किं भोगान् भुनक्ति

थी और अपनी छाती कूटती थी ॥ ३९ ॥ भगवान जिनेन्द्रके बहुतसे बंधुगण उनके वियोगरूपी अग्निसे अत्यंत दग्ध हो मूर्च्छासे बेहोश हो जमीनपर गिर गए एवं उन्हें उस समय इतना कष्ट हुआ था कि उन्हें अपने शरीरकी रंचमात्र भी सुध बुध न थी ॥ ४० ॥ उनके वियोगसे अत्यन्त दुःखित चित्त, बहुतसे बन्धुगण यह कह कहकर रुदन करते थे कि हे स्वामी भगवान जिनेंद्र ! आप हमें छोड़कर कहां चले गये। अब कब हमें आपके दर्शन होंगे एवं आपके वियोगसे महा दुःखित हम कैसे संसारमें जीवित रह सकेंगे ॥ ४१ ॥ इसप्रकार अत्यन्त शोक परिपूर्ण वाक्योंसे भगवान जिनेंद्रके भृत्य बंधु बांधव और उनकी माता आदि स्त्रियां बड़े ऊंचे ऊंचे स्वरोंसे रोते चिल्लाते थे और भगवान जिनेंद्र जिस मार्गसे दीक्षावनको गये थे उसी मार्गपर शोकसे विह्वल हो दौड़ते चले जाते थे ॥ ४२ ॥ वैमानिक देवोंमें एक महत्तर जातिके देव हैं शोकसे विह्वल माता प्रजावतीको इसप्रकार जाती देख महत्तर लोग इनके पास आए और उन्हें रोक कर इसरूपसे नम्र निवेदन करने लगे—

हे देवी ! तुम जो इस तरह शोकसे विह्वल हो जा रही हो सो तुम्हारा जाना शोभा नहीं देता। भगवान जिनेंद्र तीनों लोकके स्वामी हैं। समस्त हित अहितके जानकार हैं क्या तुम उनके हालको बिलकुल नहीं समझती हो ॥ ४३ ॥ मृग जिस प्रकार पाशके अंदर फँसकर बंध जाता है उसी प्रकार सिंह पाशके अंदर जिकड़कर नहीं रह सकता। हे माता ! आपके पुत्र भगवान जिनेंद्र वीतराग हैं—समस्त संसारकी संपत्तिसे उनका राग छूट चुका है और मुमुक्षु हैं—मोक्ष प्राप्तिके लिये पूरी अभिलाषा चित्तमें ठान ली है इसलिए भोगोंकी रमणीयता देखकर जिसप्रकार मूर्ख मनुष्य उनमें उलझ जाता है और उन्हें रात दिन भोगता है उस प्रकार वे भगवान जिनेन्द्र नहीं भोग सकते। उनके कार्यपर किसी प्रकार का शोक करना

मूर्खवत् ॥ ४४ ॥ इत्यादि मधुरर्वाक्यैर्बोधिता सा सती समं। वंधुभिर्ययौ ति कष्टेन जगाम निजमन्दिरं ॥ ४५ ॥ अथ श्वेतवनोद्याने रम्ये पुष्पफलादिभि· । सुरै· प्राङ्निर्मितां शुद्धां मणिमण्डपभूषितां ॥ ४६ ॥ मङ्गलद्रव्यपार्श्वस्थां, स्फाटिकीं सुवृत्तां शिलां। यानादवातरद्देवो निर्जरैरवतारितात् ॥ ४७ ॥ क्षेत्रादिदशधाग्रन्थान् वाह्यान् स्रग्वस्त्रभूषणान्। द्विसप्ताभ्यतरं ग्रन्थास्त्रिशुद्ध्या व्युत्सृजेत्तदा ॥ ४८ ॥ तत. पूर्वमुख स्थित्वा नत्वा सिद्धान् परान् जिनः। केशानलुंचत वद्धपल्यंक· पञ्चमुष्टिभि. ॥ ४९ ॥ मार्गशीर्षसितैकादशीदिनेऽतिशुभे-मुदा। अश्विन्याख्ये सुनक्षत्रे उच्चार्य सिद्धसा-

बृथा है ॥ ४४ ॥ जब महत्तर जातिके देवोंने इसप्रकार मधुर वचनोंमें माता प्रजावतीको समझाया तो उनकी समझमें आगया एवं वह सती माता अपने वन्धुओंके साथ बड़े कष्टसे राज मन्दिरकी ओर लौट गई ॥ ४५ ॥

भगवान जिनेंद्रने जिस वनमें जिनदीक्षा धारण की थी उस वनका नाम श्वेतवन था। श्वेतवनका उद्यान उस समय बड़ा ही मनोहर था एवं जगह २ भांति भांतिके पुष्प और फल उनकी शोभा बढ़ाते थे देवोंने वहांपर पहिले ही एक शिलाका निर्माण कर रक्खा था। वह शिला अत्यंत शुद्ध थी मणिमयी मंडपसे अत्यंत शोभायमान थो। उसके पसवाड़ोमें कलश झाड़ो आदि मंगलीक द्रव्य विद्यमान थे। स्फटिकमणिकी बनी थी और गोलाकार थी। शिलाके पास आते हो जिस पालकीको देवगण लाए थे भगवान जिनेंद्र उससे उतर पड़े। उसी समय भगवान जिनेंद्रने क्षेत्र १ वास्तु २ हिरण्य ३ सुवर्ण ४ धन ५ धान्य ६ दासी ७ दास ८ कुप्य ९ भांड १० इसप्रकार दश प्रकारका बाह्य परिग्रह और मिथ्यात्व १ स्त्रीवेद २ पुरुषवेद ३ नपुंसक वेद ४ हास्य ५ रति ६ अरति ७ शोक ८ भय ९ जुगुप्सा १० क्रोध ११ मान १२ माया १३ और लोभ १४ इसप्रकार यह चौदह—प्रकारका अंतरंग परिग्रह[१] इसप्रकार चौवीस प्रकारके वाह्य और अभ्यंतर परिग्रहका मन वचन और कायकी विशुद्धतासे सर्वथा त्याग कर दिया। वे भगवान् मल्लिनाथ उसी समय पूर्व दिशाको ओर मुख कर बैठ गए। आठों कर्मोंके सम्बन्धसे रहित भगवान् सिद्धिपरमेष्ठोको नमस्कार किया एवं पल्यंक आसन (पलोती) माढ़कर पांच मुष्टियोंसे शीघ्र हो केश लूंचकर फैंक दिए ॥ ४६—४९ ॥ उन भगवान मल्लिनाथने अत्यंत शुभ अगहन सुदी

१ समिथ्यात्वस्त्रयो वेदा हास्यप्रभृतयोऽपि षट्। चत्वारश्च कषाया· स्यु रन्तातर्ग्रथाश्चतुर्दश। यशस्तिलकचम्पू।

क्षिक ॥ ५० ॥ मोक्षमूलान् गुणान् मूलाख्यानष्टाविंशतिप्रमान्। मुक्त्यै मुक्तिसखीं जैनीं दीक्षां देव उपाददौ ॥ ५१ ॥ सायाह्ने भूमिप सार्धं त्यक्तरागैः शतत्रिकैः। मुमुक्षुभिर्महादक्षैरुपवासद्वयान्वितः ॥ ५२ ॥ निरुद्धयाय जिनो योग सकल्पाश्च परात्मनि । दध्याद्ध्यानं विरस्याशु सावद्यान् सकलाशिवदे ॥ ५३ ॥ केशान् रत्नपटल्या तान्निधायाशुकसवृतान्। भक्त्या नीत्वा विभूत्या सुराः क्षीरोदे निचिक्षिपुः ॥ ५४ ॥ ईषन्नम्राननाः भक्त्या शक्रास्तद्गुणरजिताः। तत्कालोचितसद्वाक्यैः स्तोतुं प्रारेभिरे प्रभुं ॥ ५५ ॥ त्वं देव! भुवनाधीशो गुरुस्त्वं गुरुयोगिनां धर्मवित्तीर्थकर्ता त्वं कृपानाथस्त्वमेव हि ॥ ५६ ॥ अ तर्बाह्यमलापायादद्य ते निर्मला गुणा । विभ्राजतेऽप्रमाणा देव ! चिंतामणयो यथा ॥ ५७ ॥ स्वमुक्ते निस्पृहोऽसि

एकादशीके दिन जब कि अत्यंत कल्याणकारी अश्विनी नामका नक्षत्र था "ओं नमःसिद्धेभ्यः।" सिद्ध भगवानको नमस्कार हो" ऐसा उच्चारण किया एवं सिद्धोंकी साक्षी पूर्वक मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति की अभिलाषासे उन्होंने अट्ठाईस प्रकारके मूलगुणोंको धारण किया एवं सायंकाल के समय वीतरागी मोक्षाभिलाषी और महादक्ष तीनसौ राजाओंके* साथ शीघ्र ही मोक्षरूपी लक्ष्मीकी सखीस्वरूप दिगम्बर जैन दीक्षा धारण करली। उन भगवान जिनेंद्र ने दो उपवासोंका नियम लिया। मन वचन कायकी क्रियारूप योग और संकल्पोंका निरोध किया। वास्तविक आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये समस्त सावद्य योगोंका परिहार कर दिया एवं परमात्मा के स्वरूपमें उन्होंने ध्यान लगाया ॥५०—५३ ॥ भगवान जिनेन्द्र जो केश उखाड़ कर फेंके थे इन्द्रने उन्हें बड़ी भक्ति और आदरसे रत्नमयी पिटारीमें रक्खा। अतिशय उत्तम वस्त्रसे ढक लिये एवं बड़े ठाट बाटके साथ क्षीरोदधि समुद्रके जलमें जाकर क्षेपण कर दिये ॥ ५४ ॥ जिनके मुख—मस्तक नम्रीभूत हैं और भगवानके गुणोंपर जिनका पूरा पूरा अनुराग है ऐसे वे इन्द्र उस समयके अनुकूल उत्तमोत्तम वाक्योंसे भगवान जिनेन्द्रकी इसप्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे—

हे देव ! आप तीनों लोकके स्वामी हो। जो योगी लोग बड़े बड़े लोगोंके भी गुरु हैं उन पूज्य योगियोंके भी आप गुरू हैं। समीचीन धर्मके स्वरूपके भले प्रकार जानकार हैं। जिनके पूजन करनेसे सैकड़ों भव्य जीव तर जाते हैं—संसारसे छूटकर मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति कर लेते हैं उन पवित्र तीर्थोंके आप प्रवर्तक हैं एवं समस्त जीवोंपर कृपा करनेवाले कृपानाथ आप हैं ॥ ५६ ॥ हे भगवान ? अंतरंग और बाह्य मैलके दूर

* हरिवंशपुराणमें छहसौ छह राजा बतलाये हैं।

त्वं सस्पृहोऽनंतशर्मणि । निर्ग्रंथोऽपि महानर्घ्यरत्नत्रयेधनेश्वरः ॥ ५८ ॥ निरीहोऽप्यत्र नार्यादौ चाकाक्षी मुक्तिसंगमे । देव ! त्वं त्यक्तराज्योऽपि त्रिजगद्राज्यलोलुपः ॥ ५९ ॥ उपोषितोऽपि नाथ ! त्वं सद्ध्यानामृतपानवान् । धीरोऽक्षोभ्योऽपि दक्षस्त्वं कातर. कर्मबंधने ॥ ६० ॥ रागादौ वीतरागोऽपि सरागो मुक्तिसाधने । क्षमावानऽपि लोके त्वं कोपी कर्मारिघातने ॥ ६१ ॥ निर्लोभस्तुच्छलक्ष्म्यादौ महालोभस्तपोधने ।

हो जानेपर जिस प्रकार चिंतामणि रत्न चमचमा उठते हैं उसी प्रकार अंतरंग और वाह्य मलके नाश हो जानेसे आज आपक निर्मल और अपरिमित गुण चमचमा रहे हैं ॥ ५७ ॥ प्रभो ? यद्यपि आप स्वर्गोंके सुखोंमें सर्वथा अभिलाषारहित हैं परंतु अनंत कल्याण स्वरूप मोक्षके सुखोंमें आप पूरी पूरी अभिलाषा रखने वाले हैं। वाह्य अभ्यंतर समस्त प्रकारके परिग्रहसे रहित हैं परंतु रत्नत्रयरूपी अचिंत्य धनके आप स्वामी हैं। संसारकी समस्त स्त्रियोंमें यद्यपि आप अभिलाषा रहित हैं तथापि मोक्षरूपी स्त्रीके साथ संगम करनेकेलिये आपकी पूरी पूरी इच्छा है। हे देव। यद्यपि आपने यहांकी राज्यविभूतिका सर्वथा त्याग कर दिया है परंतु तीन लोकके राज्यके प्राप्त करनेमें आपकी लोलुपता पूरी है। आपने दो उपवासोंका नियम ले रक्खा है इसलिये यद्यपि आप उपवासयुक्त हैं तथापि निरंतर समीचीन ध्यानरूपी अमृतका आप पान करते रहते हैं। यद्यपि सब बातोंमें आप धीर वीर हैं किसी आपत्तिके आजानेपर जल्दी क्षोभको प्राप्त नहीं होते इसलिये अक्षोभ्य हैं और अत्यन्त चतुर हैं परंतु कर्मोंके बंध करनेमें कातर—डरनेवाले हैं, अर्थात् यह आपको सदा भय लगा रहता है कि कहीं मेरे कर्मोंका बंध न हो जाय इसलिये उनके बंध न होनेकेलिये आप पूरी पूरी चेष्ठा रखते हैं उस समय कर्मोंके बांधनेमें आपकी धीर वीरता एक ओर किनारा कर जाती है एवं कर्मोंके बंधसे चित्त उथलपुथल हो निकलता है ॥ ५७—६० ॥ हे भगवान ! अन्य राग द्वेष आदिके अंदर वीतराग हैं—उन्हें अपनाना नहीं चाहते परंतु मोक्षके सिद्ध करनेमें अत्यंत रागी हैं—सदा मोक्षकी प्राप्तिके कारणोंकी आप चेष्टा करते रहते हैं। यद्यपि शत्रु और मित्रोंको समान माननेके कारण आप क्षमावान हैं तथापि कर्मरूपी वैरियोंको आप अपने पास तक नहीं फटकने देना चाहते सदा उनके नाश करनेके लिये प्रवृत्त रहते हैं ॥ ६१ ॥ हे भगवान ! यद्यपि संसारकी तुच्छ लक्ष्मीमें आपका किसी

निर्मोहोऽपि स्वकार्यादौ मुक्तिस्त्रस्नेहतत्परः ॥ ६२ कौमारत्वेऽपि कामारिर्मोहाक्षारातिभिः सम । हतः स्वामिंस्त्वया शीघ्रमतो न त्वत्समोऽपरः ॥ ६३ ॥ अतो देव ! नमस्तुभ्यं सद्बालब्रह्मचारिणे । निर्मोहायातिशांताय तपःश्रयलंकृताय ते ॥ ६४ ॥ नमस्ते दिव्यरूपाय नमो मुक्तिस्पृहालवे । नमो हितात्मने नाथ । नमस्ते गुणसिंधवे ॥ ६५ ॥ देव । देहि त्वमस्माकं स्तुतिभक्तिफलेन हि । भवे भवे भद्वीयं बालत्वे संयमातवे ॥ ६६ ॥ इति स्तुत्वा मुहुर्नत्वा कृतकार्या सुरेश्वरा । तत्तपोवार्तयाऽसक्ता ययुः स्वं स्वं मुदाश्रयं ॥ ६७ ॥ तत्रैव ध्यानसामर्थ्यात्तुर्यज्ञानभास्कर ।

प्रकारका लाभ नहीं इसीलिए उसे छोड़कर आपने पवित्र जिनदीक्षा धारण की है तथापि तपरूपी लक्ष्मीके लिये आप बड़े लोभी हैं—एक क्षणके लिये भी तपरूप लक्ष्मीसे विमुख होना नहीं चाहते। आप अपने शरीर आदिमें सर्वथा ममत्वरहित निर्मोही हैं परंतु मोक्षरूपी स्त्रीपर आपका पूरा पूरा स्नेह है। उसकी प्राप्तिके लिए आप कोई भी बात उठा रखनेवाले नहीं हैं॥६२॥ हे स्वामी! कुमार अवस्थामें कामदेवका जीतना अत्यंत कठिन है परंतु आपने कुमार अवस्थामें ही मोह और इंद्रियरूपी वैरियोंके साथ कामदेवरूपी बलवान शत्रुको देखते देखते नष्ट कर डाला इसलिये आपके समान अन्य कोई महापुरुष नहीं अतएव हे देव! आप उत्तमकोटिके बाल ब्रह्मचारी हैं इसलिए आपके लिए नमस्कार है। आप मोहके विकारोंसे रहित निर्मोह हैं अत्यंत शांत हैं और तपरूपी लक्ष्मीसे शोभित हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है। ॥ ६३—६४ ॥ आप दिव्यरूपके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है। मोक्ष सुख प्राप्त करनेके लिए आपकी पूरी इच्छा है इसलिये आपके लिये नमस्कार है। आप हितात्मा हैं—दूसरे जीवोंका और अपना भी हित करनेवाले हैं इसलिये आपके लिए नमस्कार है एवं आप समस्त गुणोंके समुद्र हैं इसलिए आप नमस्कार करनेके योग्य हैं। ॥ ६५ ॥ हे देव! यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि यह जो हमने आपकी भक्ति और स्तुति की है उसका फल हम यही चाहते हैं कि बाल अवस्थामें भी संयमकी प्राप्तिके लिये जिस प्रकार आपके अंदर अचिंत्य शक्ति विद्यमान है वह शक्ति आपकी कृपासे हमें भी प्राप्त हो ॥ ६६ ॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान मल्लिनाथकी स्तुतिकर देवेंद्रोंने बार बार उन्हें नमस्कार किया एवं उनकी महिमाकी प्रशंसा करते हुए वे लोग अत्यंत प्रसन्नताके साथ अपने अपने स्थान लौट गये ॥ ६७ ॥

पारणाह्नेऽथ मार्गोऽयमिति सञ्चित्य संयमे ॥६८॥ भावयन् हृदि निर्वेदं स्वेर्यापथविलोचनः। प्रकुर्वन् दानिना तोषं प्राविशन्मिथिलां जिन ॥६९॥ महापात्रं तमालोक्य निधानमिव दुर्लभं। नदिषेणनृपो हेमद्युत प्राप्य परं मुदं ॥ ७० ॥ स्वहस्तौ कुड्मलीकृत्य नत्वा नच्चरणाम्बुजौ। तिष्ठ तिष्ठेति सम्प्रोक्त्या स्थापयामास तत्क्षणं ॥ ७१ ॥ श्रद्धादिगुणसम्प्राप्तस्तस्मै पात्रोत्तमाय स। प्रतिगृहादिपुण्यार्जनहेतुनवसयुत ॥ ७२ ॥

दीक्षाके समय परिणामोंकी इतनी उज्ज्वलता रहती है कि उस समय सातवें गुणस्थानके परिणाम हो जाते हैं एवं सातवें गुणस्थानका काल अंतरमुहूर्तमात्र होनेसे पीछे वे छठे गुणस्थानमें आते जाते रहते हैं। समस्त बाह्य अभ्यंतर परिग्रहोंका त्यागकर जिस समय भगवान मल्लिनाथ ध्यानके अंदर निश्चल हुए थे उस समय उस उत्कट ध्यानकी सामर्थ्यसे उनके मनःपर्ययज्ञान नामका चौथा ज्ञानरूपी सूर्य प्रकट हो गया था एवं उस समय वे मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान इसप्रकार चार ज्ञानोंके धारक बन गए थे। जो दिन उनके पारणाका था उस दिन उन्होंने संयम करते करते ही यह विचारा कि शरीरकी स्थितिके लिए आहार लेना भी सुनिश्चित मार्ग है अर्थात् संयमका साधक है, इसलिये आहारका लेना उन्होंने निश्चित कर लिया। वे भगवान जिनेंद्र, हृदयमें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यकी भावनाका चिंतवन करते करते जूरा प्रमाण जमीनको देखते देखते आहारके लिये चल दिये एवं दानियों को संतोप प्रदान करनेके लिये मिथिलापुरीमें प्रवेश कर गए ॥ ६८—६९ ॥

मिथिलापुरीमें सुवर्णके समान महामनोज्ञ कांतिका धारक एक नंदिषेण नामका राजा भी रहताथा आहारकी अभिलाषासे घूमते हुए भगवान जिनेंद्रको देखकर एवं हृदयमें यह विचारकर कि जिस प्रकार खजानेका मिलना अत्यन्त दुर्लभ है—सामान्य भाग्यवालोंको वह नहीं प्राप्त होसकता उसीप्रकार जब उत्तम पात्र मुनिका मिलना भी कठिन है तब महापात्र भगवान तीर्थंकरका मिलना तो अत्यन्त कठिन है —हर एक समय हर एकको उनका मिलना नही प्राप्त हो सकता, भगवानको देखकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। दोनों हाथ जोड़ उनके चरण कमलोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं हे प्रभो! तिष्ठ तिष्ठ ऐसा कह-कर उसी क्षण उन्हें ठहराया ॥ ७०—७१ ॥ श्रद्धा तुष्टि भक्ति आदि दाताके सात गुणोंसे भूषित एवं पुण्यकी उत्पत्तिके कारण पडिगाहन उच्चासन प्रदान करना प्रक्षाल पूजा आदि नवधा भक्तिसे विभूषित

क्षीरान्नं मधुरं रम्यं ददौ तृप्तिकरं परं। कृतादिरहितं भक्त्या प्रासुकं स्वान्यशर्मदं ॥ ७३ ॥ तद्दानेन स पुण्यं प्रोपार्ज्य स्वं स्वं गृहाश्रमं। सफलं मन्यते राजा धनं च जीवितं परं ॥ ७४ ॥ देवोऽथ भावयन्नित्यं संयमं च विरागतां। ध्यानाध्ययनमाकुर्वन्निर्जनं स्थानमाश्रयन् ॥ ७५ ॥ निर्ग्रंथो विहरन् भूमिं स विक्रम्य दिनानि षट्। छाद्मस्थ्येनागमत्प्राक्तनं दीक्षाग्रहणं वनं ॥ ७६ ॥ तत्र ध्यानं समालंब्य सोऽशोकस्य तरोरधः। तदर्थी चिंतयेदादौ सिद्धानां सद्गुणाष्टकं ॥ ७७ ॥ ततश्चित्तं स्थिरीकृत्य निःप्रमादो जितेंद्रियः। धर्म्यध्यानं समुत्कृष्टं चतुर्धा ध्यायति स्फुटं ॥ ७८॥

राजा नंदिषेणने उत्तम पात्र भगवान जिनेंद्रके लिये क्षीरान्न [खीर] का भक्तिपूर्वक आहार दिया जो कि दोषरहित, मधुर था, मनोहर था, तृप्तिका करनेवाला था, उत्कृष्ट था, प्रासुक था और अपना पराया कल्याण करनेवाला था ॥ ७२—७३ ॥ महापात्र भगवान तीर्थंकरको दान देनेसे उत्पन्न हुए पुण्यकोउपार्जनकर राजा नंदिषेणने स्वयं भगवान तीर्थंकरको आहारदान देनेसे अपने गृहाश्रमको सफल समझा एवं अपना धन और जीवन भी उसने सफल और उत्कृष्ट समझा ॥ ७४ ॥

वे भगवान तीर्थंकर सदा संयम और वैराग्यकी भावनाका चिंतवन करते थे, ध्यान और अध्ययन में सदा प्रवृत्त रहते थे, जंगल खंडहर आदि निर्जन स्थानोंमें सदा उनका निवास स्थान रहता था एवं पराक्रमके साथ निर्ग्रंथ हो भूमिपर विहार करते फिरते थे। इसप्रकार छह दिनतक विहारकर वे भगवान जहांपर दीक्षा धारण की थी उसी दीक्षावन—श्वेतवनमें आगये ॥ ७६ ॥ श्वेतवनमें आकर अशोक वृक्षके नीचे उन्होंने अच्छीतरह ध्यानका अवलम्बन किया। सम्यक्त्व ज्ञान वीर्य आदि जो सिद्धोंके आठ गुण कहे गये हैं उन्हें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे सबसे पहिले उन्होंने सिद्धोंके आठ गुणोंका ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया ॥ ७७ ॥ उसके बाद परम जितेन्द्रिय और प्रमादिरहित वे भगवान जिनेंद्र चित्त को स्थिरकर उत्कृष्ट ध्यान धर्म्यध्यानके आज्ञाविचय आदि चारों पायोंका स्फुटरूपसे ध्यान करने लगे ॥ ७८ ॥ स्थिर चित्तके धारक वीतराग भगवान जिनेन्द्रने उस धर्म्यध्यानके बलसे बहुतसे कर्मोंको शिथिल कर

१—आज्ञाविचय १ अपायविचय २ विपाकविचय ३ संस्थानविचय ४ इसप्रकार ये चार धर्म्यध्यानके पाये हैं। बुद्धिकी मंदतासे एवं यथार्थ उपदेश देनेवाला न होनेसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रणीत मार्ग से इस रूपसे श्रद्धान कर लेना कि भगवान जिनेन्द्रने जो कहा है वह यथार्थ है और वैसाही है भगवान जिनेन्द्र अन्यथा प्ररूपण करनेवाले नहीं हो सकते इसप्रकारके विचारका नाम आज्ञाविचय है। मिथ्यादर्शनकी कृपासे

शिथिलीकृत्य कर्माणि क्षपयित्वा च कानिचित् । तेन ध्यानेन चारुह्य श्रेणि क्षपकसंज्ञिका ॥ ७६ ॥ शिवधामनि निःश्रेणीं वीतराग. स्थिराशयः । आद्यशुक्लासिना शीघ्रं जघान माद्यशात्रव ॥ ८० ॥ रणरागे तदा देवो महाभट इवाबभौ । चारित्रसगरे ध्यानतीक्ष्णखड्गो महातापा. ॥ ८१ ॥ पूर्वाह्ने पौषिके मासि कृष्णपक्षे मनोहरे । द्वितीयाया सुनक्षत्रे पुनर्वसुसुनामनि ॥ ८२ ॥ ततो द्वादशकं (मं) प्राप्य गुणस्थान जिनाग्रणी· ।

डाला और बहुतसे कर्मोंको क्षय भी कर डाला एवं उस ध्यानके सम्बन्धसे मोक्षरूपी महल में जानेके लिये सीधो सीढ़ी स्वरूप क्षपकश्रेणीमें पदार्पणकर दिया एवं पृथक्त्ववितर्क नामक प्रथम शुक्लध्यानके द्वारा मोहनीय कर्मकी इक्कीस प्रकृतितों का सर्वथा क्षयकर उसे सर्वथा उखाड़कर फैंक दिया ॥७६—८०॥ महायुद्धमें शत्रूको मारकर तीक्ष्ण खड्गका धारक महाभट जिसप्रकार शोभित होता है उसीप्रकार चारित्ररूपी संग्राममें ध्यानरूपी तीक्ष्ण खड्गके धारक महातपस्वी भगवान जिनेंद्र भी मोहरूपी मल्लको मारकर महाभट के समान अत्यन्त शोभित होने लगे ॥ ८१ ॥ पौषवदी द्वितीयाके दिन पूर्वाह्नके समय जब कि पुनर्वसू नामके शुभ नक्षत्रका उदय था उन भगवान जिनेंद्रने बारहवें गुणस्थान में पदार्पण किया बारहवें गुणस्थानका काल अंतर्मुहर्त है और वहांपर एकत्ववितर्क विचार नामका दूसरा शुक्लध्यान प्रगट होता है इसलिये बारहवें गुणस्थानमें एकत्ववितर्कविचार नामक दूसरे शुक्लध्यानकी कृपासे मोहनीय कर्मके सिवाय बाकीके कर्म—अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन

लोगोकी प्रवृत्तिमें स्वेच्छाचारका प्रचार हो गया है सन्मार्ग से बिलकुल हो वे दूरभागते हैं इस प्रकार सन्मार्ग के अपाय (विनाश) का विचार करना अपायविचय है। ज्ञानावरण दर्शना वरण आदि कर्मों के फलो का द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार विचार करना विपाकविचय नामका तीसरा धर्मध्यान है एवं लोकके संस्थानका विचार करना संस्थानविचय नामका धर्म्यध्यान हैं ॥ १ ॥ सातवे गुणस्थानकी अप्रमत्त सज्ञा है। निरतिशय अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्तके भेदसे वह दो प्रकार का है। जो हजारोवार छठेसे सातवेंमें और सातवेंसे छठेमें आवे वह निरतिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती कहा जाता है और जो क्षपक वा उपशम कोई भी श्रेणी चढनेके सन्मुख हो वह सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती कहा जाता है इस रूप से सातवें गुणस्थानवाला क्षपकश्रेणी माढ़ता है। क्षपकश्रेणीमें अनन्तानुबन्धीके चार कषायोंके सिवाय बारह कषाय और नो नोकषायोका क्षय किया जाता है। क्षपकश्रेणीके गुणस्थान आठवा नववा दशमा और बारहवा इस प्रकार चार हैं। क्षपकश्रेणीवाला फिर नहीं गिरता वह प्रथम और द्वितीय शुक्लध्यानसे चारों घातिया कर्मोंको नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। २—पृथक्त्ववितर्कवीचार १ एकत्व वितर्कविचार २ सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती ३ और व्युपरतक्रियानिवृत्ति ४ शुक्लध्यानके ये चार भेद हैं।

शेषघातित्रयं हत्वा द्वितीयशुक्लयोगतः ॥ ८३ ॥ केवलावगमं प्राप्य लोकालोकविलोकनं । जगदाश्चर्यकर्तारं तत्क्षणं मुक्तिदर्पणं ॥ ८४ ॥
स्वर्गे घंटारवोज्योतिर्लोके सिंहध्वनिस्तदा । फणींद्रभवने शंखनादों व्यंतरधामसु ॥ ८५ ॥ भेरीशब्दः पृथुध्वानश्चाभूत्तज्ज्ञानसूचकः ।
अम्लानकुसुमैश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं सुरद्रुमाः ॥ ८६ ॥ ववौ मरुत्सुगंधः सत्र्भूवुर्निर्मला दिशः । विष्टराणि सुरेशानामासमं प्रचकंपिरे ॥ ८७ ॥
इत्यलोक्य तदाश्चर्यं ज्ञात्वा तत्केवलोदमं । उत्थाय स्वासनसनादिंद्राः प्रणेमुस्तं जगद्गुरुं ॥ ८८ ॥ ततः सौधर्मकल्पेशस्तत्केवलतमहोत्सवं ॥
कर्तुं व्यधान्मतिं तद्वत्सर्वे चेंद्रा व्यधुस्तरां ॥ ८९ ॥ तदा वलाहको देवो विमानं कामकाह्वयं । लक्षयोजनविस्तीर्णं मुक्तास्रग्भूषिततं व्यधात् ॥ ९० ॥

घातिया कर्मों का भी सर्वथा नाश कर दिया। बस! चारों घातिया कर्मों के सर्वथा नाशसे उन तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेंद्रके समस्त लोक और अलोकके चर अचर पदार्थों के साक्षात् प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान प्रगट होगया जो कि अपने स्वरूपसे समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाला था और जिस क्षणमें उत्पन्न हुआ था उसी क्षणमें मुक्तिके लिये दर्पणस्वरूप था अर्थात् जिसप्रकार दर्पणमें मुक्ति का स्वरूप साक्षात् प्रतिभाषित होता है उसी तरह वस्तुका स्वरूप साक्षात् उसके अंदर प्रतिभाषित होता था ॥ ८२—८४ ॥ भगवान जिनेन्द्रको केवलज्ञानकी प्राप्ति होतेही उसके माहात्म्यसे स्वर्गों के अंदर घंटे अपने आप वजने लगे। ज्योतिषी देवोंके भवनोंमें शंखध्वनि होनेलगी, भवनवासी देवोंके भवनोंके अंदर शंखनाद होनेलगा एवं व्यंतरनिकायके देवोंके भवनोंमें भेरियोंका उन्नत शब्द होने लगा जिससे भगवानके केवलज्ञानकी सूचना होगई। उससमय कल्पवृक्षोंसे नवीन ताजे फूलोंकी वृष्टि हो लगी। शीतल मंद सुगंध पवन वहने लगी। समस्त दिशायें निर्मल होगईं एवं वैमानिक देवोंके आसन चल विचल हो उठे ॥ ८५—८७ ॥ इसप्रकारके अनेक आश्चर्योंको देखकर इन्द्रोंने यह निश्चयकर लिया कि भगवान जिनेंद्रको केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। वे शीघ्र ही अपने अपने आसनोंसे उठे। एवं तीन जगतके गुरु भगवान जिनेंद्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ ८८ ॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने भगवान मल्लिनाथ का केवलज्ञान महोत्सव करनेकेलिये तैयारियां कीं एवं जिसप्रकार सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने तयारियां कीं उसी प्रकार जितने भी इन्द्र भगवान मल्लिनाथके केवलज्ञान महोत्सवमें आने वाले थे सबोंने तयारियां करनी प्रारम्भ कर दीं ॥८९॥ भगवानके केवलज्ञान महोत्सवमें जाते समय वलाहक नामके देवने कामक नामके

लक्षयोजनसद्वृत्तकाय घटारवाँकितं । किंकणीचामरोपेत कामग बहुभूषित ॥६१ श्वेतमेरावतारयं सद्गजं दक्षं प्रभास्वरं । नागदत्ताभियोग्येशश्चक्रे ऽप्यत्यतन्सुन्दर ॥ ६२ ॥ द्वात्रिंशत्सन्मुखान्यस्य मुख प्रति रदाष्टक । प्रतिदन्त सरोहो कमळिन्येका सर प्रति ॥६३॥ अब्जिनीप्रति सादृश्याद् द्वात्रिंशत्कमला· पृथक । कमल प्रति पत्राणि द्वात्रिंशत्प्रमितान्यपि ॥ ६४ ॥ एककस्मिन् सुपत्रे नर्तक्यो द्वात्रिंशदेव हि । नृत्यंति लीलया हावैर्भावै श्रृंगारखानय ॥ ६५ ॥ इत्यादिवर्णनोपेत तमारुह्य गजाधिप । निश्चकामादिकल्पेशो जिनेंद्रपूजनाय सः ॥ ६६ ॥ स्वस्ववाहनमारूढा देवा· सामानिकादय. । स्वस्वभूत्यामुदा शक दशधा परिवव्रिरे ॥ ६७ ॥ ऐशानेंद्राद्यः सर्वे इन्द्र· स्ववाहनाश्रिता । शेषा निकायजा शक्रा· स्वस्वभूत्या च निययु· ॥ ६८ ॥ पूरयंतो दिश सर्वा जयनंदादिघोषणै· । वाद्यौघैर्योतयंतश्च नभोऽगभूषणाशुभि ॥ ६६ ॥ खांगण छादयंतः सद्विमानवाहनादिभिः

विमानकी रचना की। जो विमान एक लाख योजन चौड़ाथा और महा मनोज्ञ मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान था ॥ ६० ॥ अत्यंत चतुर नागदत्त नामके आभियोग्य जातिके देवने उस समय ऐरावत हाथीकी रचना की जो कि लाख योजन प्रमाण अत्यंत सुडौल शरीरका धारक था। बजते हुए घंटाके शब्दसे अत्यंत शोभायमान था। छोटी छोटी घंटियां और चामरोंसे अलंकृत था। विक्रियासे इच्छापूर्वक रचा गया था। बड़े ठाट बाटसे सजाया गया था। महा मनोहर और श्वेतवर्णका था ॥६१—६२॥ इस ऐरावत हाथीके मुख बत्तीस थे, हर एक मुखमें आठ आठ दांत थे, हर एक दांतपर एक एक सरोवर विद्यमान था। हर एक सरोवरमें एक एक कमलिनी थी (कमलोंकी वेल थी।) प्रत्येक कमलिनीमें बत्तीस बत्तीस कमल थे। हर एक कमलके बत्तीस बत्तीम पत्ते थे। प्रत्येक पत्तेमें नाचनेवालीं बत्तीस बत्तीस देवियां थी जो कि पूर्ण श्रृंगारसे शोभायमान थीं और लीलापूर्वक बड़े हाव भावोंके साथ नृत्य करती थीं ॥ ६३—६५ ॥ इसप्रकारके उत्तम वर्णनोंके धारक उस ऐरावत हाथी पर सौधर्म स्वर्गका इन्द्र सवार हो गया एवं भगवान जिनेंद्रकी पूजाके लिये चल दिया ॥ ६६ ॥ भगवान जिनेन्द्रकी पूजाके लिये इन्द्रको इसप्रकार तयार देखकर सामानिक आदि देव भी अपने अपने बहनोंपर सवार होगए एवं अपनी अपनी विभूतिके साथ चारो ओरसे इंद्रको वेष्टित कर बड़े हर्षसे खड़े होगये ॥ ६७॥ ऐशान इन्द्रको आदि लेकरअन्य स्वर्गोंके इन्द्र अपने अपने वाहनोंपर सवार होगए तथा अपनी अपनी विभूतिके साथ ज्योतिषी आदि निकायोंके इन्द्र भी अपने अपने भवनोंसे निकल पड़े ॥६८ जिससमय चारों निकायोंके देवेंद्र भगवान जिनेंद्रकी पूजाकेलिये निकल पड़े उससमय हे देव!

महोत्सवशतै सार्धमाजग्मुर्भूतलं सुरा. ॥ १०० ॥ ददृशुर्नाकिनो हृष्टा विभोरास्थानमडलं । तेज पुंजनिभं दूराद्ध्वराद् शिल्पिनिर्मितं ॥ १०१॥
करोमि वर्णनं किंचिदस्य प्रीत्यै सतां मुदा । निरौपम्यस्य विश्वर्द्धिसकुलस्य समासत ॥ १०२ ॥ योजनत्रिकविस्तीर्णमिंद्रनीलमणिप्रभं ।
वृत्त पीठं व्यधादादावस्थानस्य जिनेशिन ॥ १०३ ॥ तस्य पर्यंतभूभागमलं चक्रे महाद्युति । धूलीशालपरिक्षेपो रत्नचूर्णमयो महान् ॥ १०४ ॥
चतुर्दिक्ष्वस्य विस्तीर्णा हेमस्तंभाग्रलंबिताः । तोरणा मकरा (?) स्फोटरत्नमाला विरेजिरे ॥ १०५ ॥ ततोऽन्तरांतरं किंचिद्गत्वा हेममयोन्नताः ।

आप जयवंते रहें नादें और विरदें इत्यादि उनके कोलाहलों से और अनेक प्रकारके बाजोंके शब्दों से समस्त दिशायें व्याप्त हो गई थी। शरीरोंपर पहिने हुए भूषणोंकी कांतिसे समस्त आकाश जगमगा उठा था एवं उत्तमोत्तम बिमान और बाहन आदिसे सारा आकाश ढका सरीखा जान पड़ता था। इस प्रकार सैकड़ों महोत्सवोंके साथ वे देव जिस बनमें भगवान मल्लिनाथको केवलज्ञान हुआ था उस वन की भूमिपर आकर पहुच गए ॥ ६६—१०० ॥ शिल्पकलामें पूर्ण चातुर्य रखनेवाला कुबेर पहिले ही इन्द्र की आज्ञासे वहाँ पहुंच चुका था और उसने बड़ी सुंदरताके साथ समवसरणकी रचना कर रक्खी थी जिस समय देवेंद्रगण भूमि-पर उतरे साक्षात् तेजोंका पुंज स्वरूप दूरसे हो उन्होंने भगवान जिनेंद्रका शमवसरण देखा और वे अत्यंत हर्ष प्रकट करने लगे ॥१०१॥ समवसरणकी रचना सज्जनोंको परमानन्द प्रदान करनेवाली होती है अनुपम और समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त रहती है इसलिये सज्जन पुरुषोंको आनंदित करनेके लिये उस अनुपम और समस्त प्रकारकी ऋद्धिसे व्याप्त समवसरणका मैं (ग्रंथकार) संक्षेप वर्णन करता हूं—

जिस भूमिपर भगवान जिनेन्द्रका समवसरण रचा गया था उस भूमिका विस्तार तीन योजन प्रमाण था वह इन्द्रनील मणिके समान कांतिकी धारक और गोलाकार थी ॥१०२—१०३॥ कांतिसे जाज्वल्यमान उस पृथ्वीका पर्यंत भाग धूलीशाल [परकोट] से चारों ओरसे वेष्टित था जो धूलीशाल रत्नमयी था और विशाल था ॥ १०४ ॥ धूलीशालकी चारों दिशाओंमें सुवर्णमयी स्तंभोंके अग्रभागमें बहुत बड़े मनोहर तोरण मीनाकारी और रत्नोंकी मालाएं लटक रही थीं जिनसे उन स्तंभोंकी अद्वितीय शोभा दीख पड़ती थी ॥ १०५ ॥ कुछ फासलापर उस भूमिके भीतर जाकर गलियोंके मध्यभाग में मानस्तंभ विद्यमान थे

अधोमध्यजिनार्च्यांगा ध्वजछत्रादिभूषिता॰ ॥ १०६ ॥ चतुर्गोपुरसंबद्धशालत्रितयवेष्टिता॰ । रेणुमध्येषु वीथीना मानस्तंभा मनोहरा॰ ॥ १०७ ॥
स्तंभपर्यंतभूभागमलंचक्रु र्दिश प्रति । चतस्रो मणिसोपाना वाप्यो नन्दोत्तरादिका. ॥ १०८ ॥ तत स्तोकातरं गत्वा परिवव्रेऽवुखातिका ।
ता महीं स्वच्छनीराढ्या वातोत्पन्नोर्मिसंकुला ॥ १०९ ॥ तदभ्यंतरभूभाग प्रवेष्ट्याभूल्लतावनं । सत्क्रीडाद्रिलतागेहं सर्वर्तु कुसुमांचितं ॥ ११० ॥
स्तोकातर ततोऽतीत्य मुक्तादामादिमंडित॰ । प्राकार प्रथमो वव्रे महातुंगो हिरण्मय ॥ १११ ॥ महांति गोपुराण्यस्य संवभुर्दिक्चतुष्टये ।
राजतानि त्रिभूगानि शृंगाणीव महागिरे ॥ ११२ ॥ प्रत्येकं गोपुरेष्वेव मंगलद्रव्यभूतय । शतमष्टोत्तरं भाति भृंगारकलशादिका. ॥ ११३ ॥
प्रत्येकतोरणास्तेषु शतसंख्या विभासिरे । रत्नाभरणयुक्ताश्च तद्द्वारे निधयो नव ॥ ११४ ॥ तेषामतर्महावीथ्येरुभयो पार्श्वयोरभूत ।

जो कि सुवर्णमयी थे। नीचे भाग और बीच भागमें भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमाओंके रहनेके कारण पूज्य और पवित्र थे, ध्वजा और छत्र आदिसे शोभायमान थे जिनके अन्दर चार चार विशाल गोपुर [सदर दरवाजे] विद्यमान हैं ऐसे तीन प्रकारोंसे वेष्टित थे और महामनोहर जान पड़ते थे ॥ १०६—१०७॥ स्तंभोंके पर्यंतके भूमि भागोंपर प्रत्येक दिशामें चार वापियां थीं जो कि मणिमयी सीढ़ियोंसे शोभायमान थीं और नंदा नन्दोत्तरा आदि उनके शुभ नाम थे ॥ १०८ ॥ मानस्तंभों की जगहसे थोड़ा दूर जाकर मानस्तंभोंकी भूमिको चारों ओरसे वेढकर रखनेवाली एक विस्तीर्ण खाई थी जो कि अत्यंत निर्मल जलसे भरी हुई थी एवं पवन वेगसे उत्पन्न होनेवाली चंचल तरंगोंसे व्याप्त थी ॥१०९॥ खाईके मध्यभागकी भूमिको वेढकर रखनेवाला एक आम्रवन था जो कि महा मनोहर कीड़ा पर्वत और लता मंडपोंसे युक्त था और समस्त ऋतुओंमें होनेवाले महामनोहर पुष्पोंसे शोभायमान था ॥१०९—११०॥ आम्रवनसे कुछ फासलापर सबसे पहिला विशाल प्राकार था जो कि मुक्तमाला आदिसे भूषित था, अत्यंत उन्नत था और सुवर्णमयी था ॥१११॥ इस प्रकारकी चारों दिशाओं में चार सदर दरवाजे थे जोकि चांदीके बने हुए थे। तीन तीन खनोंके थे एवं विशाल पर्वतकीशिखर सरीखे जान पड़ते थे ॥११२॥ हर एक सदर दरवाजेके अंदर झाड़ी कलश आदि मंगलीक द्रव्य एकसो आठ आठ शोभायमान थे ॥११३॥ हर एक दरवाजेपर सौ सौ तोरण लटक रहे थे जो कि अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे। उन द्वारोंके भीतर रत्नमयी आभरणोंसे युक्त नौ निधियें जगमगा रही थीं ॥ ११४ ॥ गोपुरोंके भीतर जाकर एक विशाल गली थी और उस गलीके दोनों पसवाड़ोंमें दो नाट्य-

नाट्यशालाद्वयं रत्नस्तम्भभूमित्रयान्वितं ॥ ११५ ॥ ततो धूपघटौ द्वौ द्वौ वीथीनामुभयोर्दिशो । तत्र वीथ्यंतरेष्वासीद्वन्यं वनचतेष्टय ॥ ११६ ॥
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्ययं गृहवाप्यादिशोभित। अशोकं सप्तपर्णाख्यं चापकाम्रवनद्वय ॥ ११७ ॥ अशोकादिवनेषु स्युरशोकाद्या द्रुमा परा ।
त्रिमेखलानि पीठानि हैमानि समधिष्ठिता ॥ ११८ ॥ मालावस्त्रमयूराब्जहंसवीनमृगेशिना । वृषहस्तींद्रचक्राणा दशधा स्युर्ध्वजा. परा ॥ ११९ ॥
अष्टोत्तरशतं ज्ञेया प्रत्येक पालिकेतव । एकैकस्या दिशि प्रोक्ता मोहमल्लजयोर्जिता. ॥ १२० ॥ दिश्येकस्या ध्वजा सर्वा सहस्रं स्युरशीतियुक ।
चतुर्दिक्षु च शून्यद्वित्रिचतु.संख्यका ध्वजा. ॥१२१॥ अन्तर्भागे तत शालोऽभूद्गोपुरादिमण्डित । तोरणादियुतः प्राग्वद्द्वितीयो योऽर्जुनो महान् १२२

शालयें थी जो कि रत्नमयी स्तंभोसे शोभायमान थीं और तिखनी बनी हुई थीं ॥ ११५ ॥ उन महा वीथियोंकी दोनों दिशाओंमें दो दो धूपघट विद्यमान थे तथा उनसे आगे गलियोंमें चार मनोहर वन थे जो कि सब ऋतुओंमें होनेवाले फल और पुष्पोंसे शोभायमान थे। लता गृह वापी आदिसे महामनोहर जान पड़ते थे एवं अशोकवन १ सप्तपर्णवन २ चम्पकवन ३ और आम्रवन ४ ये उन वनोंके चार मनोहर नाम थे ॥ ११६-११७ ॥ अशोक आदि चारोंवनोंमेंसे अशोकवनके अंदर वहुतायतसे अशोकवृक्ष थे। सप्तपर्णवनमें सप्तपर्णा जातिके वृक्ष थे। चम्पकवनमें चम्पाके वृक्ष और आम्रवनमें महामनोहर आम्र वृक्ष विद्यमान थे और ये समस्त वृक्ष, सुवर्णमयी तीन कटनीवाले पीठों [थामरों] से शोभायमान थे ॥ ११८ ॥ माला १ मगर २ मयूर ३ कमल ४ हंस ५ वीन—गरुड़ ६ सिंह ७ बैल ८ गज ९ और चक्र १० इसप्रकार उत्कृष्ट ध्वजायें दश प्रकारकी मानी हैं ॥ ११९ ॥ मोहरूपी मल्लके जीतनेसे उन्नत पालि ध्वजायें [प्रधान ध्वजायें] एक एक दिशामें एक एकसौ आठ थीं तथा सामान्य रूपसे एक एक दिशामें समस्त ध्वजायें एक हजार अस्सी अस्सो थीं एवं मिलकर चार हजार तीन सौ वीस ४३२० थीं ॥ १२०—१२१ ॥

चारों वनोंके भीतर जाकर पुनः एक दूसरा प्राकार था जोकि पहिले प्राकारके समान ही चार सदर दरवाजोंसे युक्त था। जिसप्रकार पहिले प्राकारमें तोरण आदिकी विभूति वतलाई गई है उसी प्रकारकी विभूतिसे युक्त था चांदीके वर्णका और विशाल था। इस प्रकारके भी दोनों पसवाड़ोंमें पहिले प्राकारके पसवाड़ोंके समान दो नाट्यशालायें थीं एवं धूपसे जायमान धूवांसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले दो धूप घड़े विद्यमान थे। धूप घड़ोंके आगे दूसरी वीथीमें कल्पवृक्षोंका एक विशाल वन था जोकि फैली

अत्रापि पूर्ववज्ज्ञेयं नाट्यशालाद्वयं महत्। तद्वद्धूपघटद्वन्द्वं धूपधूमात्तदिङ्मुखं ॥ १२३ ॥ ततो वीथ्यांतरेष्वासीद्वनं कल्पमहीरुहां। नानारत्नप्रभोत्सर्पद्ध्वांत मनोहरं ॥ १२४ ॥ चतुश्चैत्यद्रुमास्तत्राशोकाढ्याः स्युः प्रभास्वराः। अधोभागे जिनार्चाढ्या सपीठाश्छत्रशोभिताः ॥ ततौ बभौ वनानां हि पर्यंते वनवेदिका। मंगलद्रव्यभूषाढ्यैश्चतुर्भिर्गोपुरैः परैः ॥ १२६ ॥ ततः परा महीं रत्नपीठस्तंभाग्रलंबिताः। अलचक्रुः शुभास्तुंगा विविधा ध्वजपंक्तय. ॥ १२७ ॥ प्राकाराश्चैत्यवृक्षाश्च केतवो वनवेदिका.। स्तूपाः सतोरणा. स्तंभा मानस्तंभाश्च तेऽखिलाः ॥ १२८ ॥ प्रोक्तास्तीर्थकरोत्सेधादुत्सेधेन द्विषड्गुणाः। दैर्घ्यानुरूपमेतेषां रौद्र्यमाहुर्गणाधिपाः ॥ १२९ ॥ (१) क्रीडाद्रीणां च गेहानां

हुई उग्ररत्नोंकी प्रभासे समस्त अन्धकारका नाश करनेवाला और मनोहर था ॥ १२२—१२४ ॥ उस कल्पवृक्षोंके वनके अंदर अशोक आदि चार चैत्यवृक्ष थे जो कि अपनी महामनोहर कांतिसे अत्यंत देदीप्यमान थे। उनके नीचेके भागमें भगवान जिनेंद्रकी प्रतिमायें थी एवं वे वृक्ष मय सिंहासन और छत्रोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभायमान थे ॥ १२५ ॥ उन अशोक आदि वृक्षोंसे परिपूर्ण वनोंके पर्यंत भागमें एक वनवेदी थी जो कि कलश झाड़ी आदि मंगलीक द्रव्योंसे परिपूर्ण परमोत्तम चार सदर दरवाजोंसे शोभायमान थी ॥ १२६ ॥ उससे आगेकी भूमिमें नाना प्रकारके रत्नमयी चबूतरोंके धारक स्तंभोंके अग्रभागमें नाना प्रकारकी ध्वजायें फहरा रही थीं जो कि अत्यन्त शुभ थीं और बहुत ऊंची २ थीं जिनसे कि वह भूमि अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती थी ॥ १२७ ॥ समोशरणके अन्दर रहनेवाले प्राकार चैत्रवृक्ष, ध्वजायें, वन वेदियां, स्तूप, तोरणोंसे अलंकित स्तंभ और मानस्तंभ इन सबकी ऊंचाई तीर्थंकरों की ऊंचाईसे बारह गुणी अधिक होती है अर्थात् जिस तीर्थंकरका समोवसरण होगा उस तीर्थंकरके शरीरकी जितनी उंचाई होगी उस ऊंचाईसे समवसरणके अंदर रहनेवाले परकोट आदिकी उंचाई नियमसे बारहगुणी होगी। तथा जितनी ऊंचाई होती है उसीके अनुकूल उनकी चौड़ाई होती है। यह समवसरणके उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथका था इसलिये उनके शरीरकी जितनी उंचाई थी उससे बारह गुणी इस समवसरणके प्राकार आदिकी उंचाई थी और उंचाईके अनुकूल चौड़ाई थी ॥१२९॥ क्रीड़ा पर्वत लतागृह और वनोंकी उंचाई आगमके जानकार पुरुषों ने आगममें एकसी ही बनाई है॥१३०॥ पुराणोंके जानकर समस्त आगमके पारगामियोंने पर्वतोंकी चौड़ाई अपनी अपनी उंचाईकी अपेक्षा आठ

वनाना च जिनागमे। तुंगत्वं ह्येकमे दे वोक्त दक्षैरागमवेदिभिः ॥ १३० ॥ अचलाना भवेद्रौष्यं स्वोत्सेधादष्टसंगुण । स्तूपाना किल विस्तार मुच्छ्रायात्साधिकं मतं ॥ १३१ ॥ उशति वेदिकादीना स्वोत्सेधस्य चतुर्थक । विस्तारं सुपुराणाज्ञा. सर्वागमाब्धिपारगा. ॥ १३२ ॥ ततोऽभ्यंतरभूभागे नानाप्रासादपक्तय । द्वित्रिचतुस्तला रम्यास्तु गा रत्नमया बभुः ॥ १३३ ॥ वीथीना मध्यभागे तु नवस्तूपाः समुद्ययु. । पद्मरागमयाः सिद्धजिनबिंबाद्यलकृताः ॥ १३४ ॥ स्तूपानामतरेष्वेषा रत्नतोरणमालिका. । बभुरिद्रधनुमध्य इवोद्योतितखागणाः ॥ १३५ ॥ ततः प्रोल्लध्य ता भूमि शुद्धस्फाटिकरत्नजः । नभः स्फाटिकशालोऽस्ति श्वेतिताखिलदिक्चय. ॥ १३६ ॥ अस्यापि पूर्ववद्दिक्षु गोपुराणि विभाति च। पद्मरागमयान्येव निधिमगलसंपदा ॥ १३७ ॥ गदादिपाणयस्तेपु गोपुरेष्वभवन सुरा । शालत्रये क्रमाद्व्यस्था भौमभावननाकजाः ॥ २३८ ॥

आठ गुणी मानी है। स्तूपोंकी जो उंचाई कही गई है उससे कुछ अधिक उनकी चौड़ाई मानी है तथा वनवेदी आदिका विस्तार उनकी उंचाईसे चौथा भाग माना है॥ १३१—१३२ ॥

वनवेदियोंके भीतरकी भूमिमें प्रासादोंकी पंक्तियां थीं जो कि दोखन तीन खन और चार खनवालीं थीं। महा मनोहर ऊंची २ और रत्नमयी थीं ॥ १३३ ॥ गलियोंके मध्यभागमें नौ स्तूप थे जो कि पद्मराग मणिमयी थे एवं सिद्ध भगवानकी प्रतिमाओंसे अलंकृत थे ॥ १३४ ॥ स्तूपोंके मध्यभागोंमें रत्नमयी तोरण और मालिका थीं जिन्होंने कि अपनी कांतिसे समस्त आकाशको व्याप्त कर रक्खा था अतएव जो इन्द्र धनुषमयी सरीखी जान पड़तीं थीं ॥ १३५ ॥ स्तूपोंकी भूमिके बाद एक स्फटिकमयी परकोटा था जो कि शुद्ध स्फटिक रत्नका बना हुआ था एवं अपनी प्रभासे समस्त दिशाओंको सफेद करनेवाला था अतएव जो आकाशका बना हुआ सरीखा जान पड़ता था ॥ १३६ ॥ इस स्फटिकमयी परकोटकी भी चारों दिशाओंमें पहिलेके समान चार सदर दरवाजे थे जोकि अत्यंत शोभायमान थे। वे दरवाजे पद्मराग मणियोंसे बने हुए थे एवं पहिले प्राकारोंके दरवाजोंके समान हां निधियें और कलश झाड़ी आदि मंगलीक द्रव्योंसे युक्त थे ॥ १३७ ॥ सदर दरवाजोंपर गदा आदि शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए देव थे उनमें भी पहिले परकोटके दरवाजोंपर हाथोंमें शस्त्रलिये व्यंतर देव खड़े थे। दूसरे परकोटके दरवाजोंपर भवनवासी देव थे एवं तीसरे परकोटके सदर दरवाजोंपर वैमानिक देव हाथमें हथियारोंको लिये द्वारपालोंका कार्य कर रहे थे ॥१३८ ॥ समवसरणकी भूमिके मध्य और आदिके भागसे सटी हुई परकोटोंके अंततक

मध्यायपीठसंलग्नाः शालाता स्फाटिकोद्भवा. । भित्तय षोडशा भाति महावीथ्यंतराश्रिता ॥ १३९ ॥ तासामुपरि विस्तीर्णो महान् श्रीमंडपोऽभवत् । रत्नस्तंभोद्धृत शुद्धनभ स्फाटिकनिर्मित ॥१४०॥ तद्रुद्धक्षेत्रमध्येऽभात्प्रथमा पीठिका शुभा । वैडूर्यरत्ननिर्माणा मगलद्रव्यभूतिभिः ॥१४१॥ धर्मचक्राणि चोढानि दीप्राणि यक्षमस्तकैः । सहस्रराणि तस्यां वा भानुबिंबानि रेजिरे ॥ १४२ ॥ तत्र षोडश सोपानपथ्या स्यु षोडशांतरा । चतुर्दिक्षु समाकोष्ठप्रवेशेषु च निर्मला ॥ १४३ ॥ तस्योपरि भवेत्पीठं द्वितीयं सुहिरण्मय । भूषित दिक्षु, अष्टासु चक्रेभाद्यष्टध्वजैः ॥ १४४ ॥ स्फुरन्मणिमय पीठं तस्योपरि तृतीयक । त्रिमेखलं व्यभात्तु ग तेजसा व्याप्तदिग्मुख ॥ १४५ ॥ तत्र गंधकुटीपृथ्वी सुगंधीकृतदिग्मुखा । दिव्यामोदा परा भाति पुष्पप्रकरचर्चिता ॥ १४६ ॥ तस्या मध्ये स्फुरन्नानारत्नामायोतितांबरं । तु ग सिंहासनं दिव्य मेरुशृंगमिवाबभौ ॥ १४७ ॥

सोलह भीतियां थीं जो कि स्फटिक रत्नोंकी बनी थीं और विशाल गलियोंके अंतरालोंमें विद्यमान थीं ॥ १३९ ॥ उन स्फटिक मणिमयी भीतोंके ऊपर विशाल श्रीमंडप बना हुआ था जो कि विस्तृत था। रत्नमयी स्तंभोंसे वेष्टित था और निर्मल स्फटिक पाषाणका बना हुआ था अतएव साक्षात् आकाशका बना हुआ जान पड़ता था ॥ १४० ॥ श्रीमंडपसे जितना क्षेत्र रुका हुआ था उस क्षेत्रके ठीक मध्यभागमें पहिली पीठिका [पीठ] थी जोकि वैडूर्यजातिकी हरी मणियोंसे बनी थी, अत्यन्त शुभ थी एवं मंगलीक द्रव्य और अन्य विभूतियोंसे शोभायमान थी ॥ १४१ ॥ इस पीठिकाके अंदर धर्मचक्र विद्यमान थे जिन्हें यक्षगण अपने मस्तकोंपर रक्खे थे. महा देदीप्यमान थे हजार हजार अराओंके धारक थे एवं सूर्यके प्रतिबिंबों सरीखे जान पड़ते थे ॥ १४२ ॥ उसी जगहपर सोलह फासलोंसे व्याप्त सोलह सोपान मार्ग [जीने] थे जिनसे कि चारों दिशाओंमें विद्यमान कोठोंके अंदर प्रवेश किया जाता था ॥ १४३ ॥

उस प्रथम पीठके ऊपर दूसरा पीठ था जो कि सुवर्णमयी था एवं आठो दिशाओंमें चक्र और हाथी आदिके चिह्नोंकी धारक आठ ध्वजाओंसे शोभायमान था ॥ १४४ ॥ इस दूसरे पीठके ऊपर तीसरा पीठ था जो कि देदीप्यान मणियोंका बना हुआ था, तीन कटिनियोंसे शोभायमान था, उन्नत था और उसकी प्रचंड कांतिसे समस्त दिशायें जगमगाती थीं ॥ १४५ ॥ इस तृतीय पीठ पर गंधकुटी थी जो कि अपनी उत्कट सुगंधिसे समस्त दिशाओंको सुगंधित करनेवाली थी, दिव्य सुगंधि की धारक थी, उत्कृष्ट थी एवं भांति भांतिके पुष्पोंके समूह से व्याप्त थी ॥ १४६ ॥ इस गंधकुटीके मध्य भागमें महाम-

विष्टर' तदलंचक्रे दिव्यरूपी जगद्गुरु' चतुर्भिरंगुले स्वे न महिम्नाऽस्पृष्टतत्तल ॥ १४८ ॥ आद्ये कोष्ठे मुनींद्रौघा द्वितीये कल्पयोषितः । तृतीयें क्षातिका स्त्रियस्तुर्ये ज्योतिषां स्त्रिय ॥१४६॥ पञ्चमेऽखिलव्य तर्यः षष्ठिऽथ भावनागना । सप्तमे भावना देवा अष्टमे व्य तरामरा १५० नवमे सर्वज्योतिष्का दशमे कल्पवासिन । तथैकादशके (मे) मर्त्या अतिमे पशवोऽखिला ॥ १५१ ॥ एते द्विषड्गुणास्तीर्थनाथ परीत्य भक्तिका' । तत्सन्मुखाः स्थिति चक्रु धर्मामृतपिपासिता ॥ १५२ ॥ इत्युक्तैश्च गणैर्विभूतिविविधे. सत्प्रातिहार्याष्टकें दिव्यै. केवललब्धिभिश्च नवभि. सभूषित कामदं । तीर्थेशं गुणसागर निरुपम दिव्यासने सस्थितं देवास्त ददृशु. प्रविश्य सुसभा भक्त्या स्फुरच्चक्षुष ॥१५३॥ भूयस्त' त्रिजगद्गु रु' गुणनिधि

नोहर सिंहासन विद्यमान था जो कि देदीप्यमान नाना प्रकारके रत्नोंकी प्रभासे समस्त आकाशको व्याप्त करनेवाला था, दिव्य था एवं मेरुका शिखर सरीखा जान पड़ता था अतएव वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥ १४७ ॥ इसी पवित्र सिंहासनको दिव्य रूप के धारक तीन जगत के गुरु भगवान जिनेंद्र ने सुशोभित कर रक्खा था और वे अपने अलौकिक माहात्म्यसे उसके तल भाग का स्पर्श न कर चार अंगुल प्रमाण आकाशमें विराजते थे ॥ १४८ ॥ इस दिव्य सिंहासनके चारों ओर देव आदिके बैठनेके बारह कोठे थे उनमें से पहिले कोठेमें मुनिगण विराजते थे, दूसरेमें कल्पवासी स्त्रियां, तीसरेमें आर्यिकायें, चौथे में ज्योतिषी देवोंकी देवांगनायें, पांचवेंमें व्यंतर देवोंकी देवियां, छठेमें भवनवासी देवोंकी देवांगनायें, सातवेंमें भवनवासी देव, आठवेंमें व्यंतर देव, नौवेंमें समस्त ज्योतिषी देव, दशवेंमें वैमानिक देव, ग्यारह वेंमें मनुष्य और बारहवेंमें तिर्यंच बैठे थे ॥ १४६—५१ ॥ इस प्रकार भगवान मल्लिनाथको चारों ओरसे घेरकर ये बारह कोठोंमें बैठनेवाले अतिशय भक्ति रखनेवाले जीव धर्मरूपी अमृतके पीनेकी इच्छासे उनके सम्मुख स्थित होगए* ॥ १५२ ॥

आनंदसे फुरफुराते हुए नेत्रोंके धारक देवोंने जिस समय समवसरणके मंडपमें प्रवेश किया उस समय भगवान जिनेंद्रको देखा। वे भगवान उस समय बारह कोठोंमें बैठनेवाले प्राणीगणोंसे शोभायमान थे अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे व्याप्त थे, अशोकवृक्षका† होना १ रत्नमयी सिंहासन २ भगवान के शिरपर

* समवसरणका वर्णन हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथके समवसरणकी रचनाके समय विस्तारसे किया गया है।

† अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासन च भामडलं दुंदुभिरातपत्र सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणा । [पूजापाठ]

विश्वद्धिधर्माकरं भक्त्या देवगणे. परीत्य सकला वारत्रयं वासवा. । देवीभि सह कुड्मलीकृतकराश्चूडामणिद्योतिना मूर्ध्ना तद्द णराजनाश्च परमा भूत्या प्रणेमुस्तरां ॥ १५४ ॥ असमगुणसमुद्रो विश्वतत्त्वप्रदीपो रहितसकलदोषो घातिकर्मारिहंता । त्रिभुवनपतिभर्व्यैः सेवितो वदितश्च तदसमविभवाप्त्यै सोऽस्तु मे मल्लिनाथ ॥ १५५ ॥

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते मल्लिनाथनिष्क्रमणकेवलोत्पत्तिवर्णनो नाम षष्ठ परिच्छेदः ॥ ६ ॥

तीन छत्रोंका फिरना ३ भगवानके पोछे भामंडलका होना ४ भगवानके मुखसे निरक्षरी दिव्यध्वनिका खिरना ५ देवोंके द्वारा पुष्पवृष्टिका होना ६ यक्ष देवोंके द्वारा चौंसठ चमरोंका ढुरना ७ और ८ दुंदुभी वाजोंका वजना इसप्रकार आठ प्रातिहार्योंसे शोभायमान थे। क्षायिकज्ञान १ क्षायिकदर्शन २ क्षायिकदान ३ क्षायिकलाभ ४ क्षायिकभोग ५ क्षायिकउपभोग ६ क्षायिकवीर्य† ७ क्षायिकसम्यक्त्व ८ और क्षायिकचारित्र ९ इस प्रकार नौ केवललब्धियोंसे भूपित थे, समस्त प्रकारकी वांछाओं को पूरण करनेवाले थे, संसारके दुःखोंसे तारनेवाले तीर्थके स्वामी थे, सम्यक्त्व आदि गुणोंके समुद्र थे, उपमातीत थे, एवं दिव्य आसनपर विराजमान थे ॥ १५३ ॥ उसके वाद तीनों लोकके गुरु, गुणोंके खजाने समस्त प्रकारकी ऋद्धियां और धर्मके स्थान भगवान जिनेंद्रको समस्त इन्द्रोंने भक्तिपूर्वक अपने सहचारी देव और देवांगनाओंके साथ तीन प्रदक्षिणा दीं एवं गुणोंमें अनुरक्त हो सबोंने अपने अपने हाथोंको जोड़कर चूड़ामणियोंसे जगमगानेवाले मस्तकोंसे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥ १५४ ॥ इसप्रकार समस्त अनुपम गुणोंके समुद्र समस्त तत्वोंके प्रकाश करनेवाले, समस्त दोपोंसे रहित, ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मरूपी वैरियोंके नाशक, मोक्षाभिलाषी तीनों लोकके इन्द्रोंसे सेवित और वंदित वे भगवान अपने समान असाधारण ऐश्वर्य हमें भी प्रदान करें ॥ १५५ ॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी प० गजाधरलालजी न्यायतीर्थविरचित हिंदी अनुवादिकामें भगवान मल्लिनाथका दीक्षा कल्याण और केवल ज्ञान कल्याणका वर्णन करनेवालाछठा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ६ ॥



† ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च । ४ । तत्त्वार्थसूत्र अ० २

धर्मोपदेशनोद्युक्तं श्रीमत त्रिजगद्गुरुं । स्थित सदसि भव्याना स्तुवे देव गुणार्णव ॥१॥ अथ शक्रा मुदोत्थाय पूजा तस्य क्रमाब्जयोः । परया दिव्यसामग्रया भक्त्या चक्रुः सहामरैः ॥ २ ॥ स्वच्छनीरैः पवित्रैश्च दिव्यगंधैर्विलेपनै. । मुक्ताफलाक्षतै कल्पवृक्षपुष्पजदामभि. ॥३॥ सुधापिंडसुनैवेद्यै रत्नदीपैश्च नाकजै. । धूपै. फलोत्तमै पुष्पाजलिभिर्गीतनर्तनै. ॥४॥ भर्तुरग्रे शची भक्त्या विचित्रं वलिमूर्जित। नानावर्णै. सुशोभाढ्यै रत्न चूर्णैश्चकार सा ॥ ५ ॥ ततो हृष्टा सुराधीशा भक्तिभार वशीकृता । तुति प्रारेभिरे कर्तुं तस्यासाधारणैर्गुणै ॥६॥ अद्य नाथ ! वयं धन्या. सफल

अथ सातवां परिच्छेद ।

—*—

भव्योंकी सभा—समवसरणके अन्दर विराजमान, समीचीन धर्मके उपदेश देनेके लिये उद्यत, वाह्य अन्तरंग दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी, तीन जगतके गुरु एवं अगणित गुणोंके समुद्र देव भगवान मल्लिनाथको मैं ग्रन्थकार मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ इन्द्रगण जिससमय नमस्कार कर उठे उस समय उन्होंने देवोंके साथ पवित्र स्वच्छ जल, दिव्य चन्दन, मुक्ताफलोंके अक्षत, कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी मालायें, अमृतके पिंडस्वरूप नैवेद्य, स्वर्गलोक सम्वंधी रत्नमयी दीपक, धूप, उत्तम फल, पुष्पोंकी अंजली, गीत और नृत्यरूप उत्कृष्ट दिव्य सामग्रीसे भगवान जिनेन्द्रके चरण कमलोंकी भक्तिभावसे सानन्द पूजा की ॥ २—४ ॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणीने भगवान जिनेंद्रके सामने नाना प्रकारके वर्णवाले अत्यंत शोभासे शोभायमान रत्नमयी चूर्णोंसे देदीप्यमान वलि [माढना] माड़ा ॥ ५ ॥ जिससमय यह कार्य समाप्त हो चुका उस समय भक्तिके भारसे वशीभूत और प्रसन्न चित्त देवेंद्रोंने भगवान जिनेंद्रके असाधारण गुणोंकी इसप्रकार स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी—

तीव्र पुण्यके उदयसे आपके चरण कमलोंका आज हमें दर्शन हुआ है इसलिये आज हम धन्य हैं और हमारा जीवन सफल है ॥ ५—६ ॥ हे देव ! आप तीन जगतके नाथ हो। गुरुओंके महागुरू हो। तीन जगतके स्वामियोंके अर्थात् देवेंद्र नरेंद्र और नागेंद्रोंके आप स्वामी हो एवं जिन योगियों को वड़े

नोऽद्य जीवितं । यतोऽस्माभिर्महापुण्याद् दृष्टौ ते चरणाम्बुजौ ॥ ७ ॥ त्वं देव ! जगतां नाथस्त्वं गुरूणां महागुरुः । त्रिजगत्स्वामिनां प्राच्य-स्त्वं प्राच्योयोगिनां ॥ ८ ॥ ज्ञानिनां त्वं च सर्वज्ञस्तपस्विनां महातपाः । योगिनां त्वं महायोगी जिनानां त्वं परो जिनः ॥९॥ विश्वोद्धर्तुमना दुःखा न्निरीहस्त्वं जगद्धितः. द्विधाश्रयलक्ष्मतोपि त्वं महानिर्ग्रंथराड् भुवि ॥ १० ॥ शच्याद्यैः सेव्यपादोपि महांस्त्वं ब्रह्मचारिणा । ज्ञानविश्वार्थसर्वोऽपि त्वमक्षज्ञानदूरगः ॥ ११ ॥ त्वद्दर्शनांशुभिर्देवाज्ञानध्वांतचयं द्रुतं । एनसामां क्षयनोऽगाद्यथात्र भानुना तमः ॥ १२ ॥ नित्यं स्वामिन्! नमस्तुभ्यं स्वर्मुक्त्यै गुणसिंधवे । नमस्ते दिव्यदेहाय नमस्ते घातिघातिने ॥१३॥ भवद्भूतिं समग्रां त्वं देहि नः कृपयाद्रुतं । कृपानाथो यतस्त्वं हि याचकानां सुरद्रुमः ॥१४॥ इति भक्त्या स्तवं कृत्वा प्राप्यैप्रार्थनां परां । नत्वा स्वं स्वं प्रकोष्ठं तेऽभजंस्तत्सम्मुखाद्भिदे ॥१५॥ अथ दृष्ट्वागणाधीशो

वड़े पदवीधारी भी पूजते हैं वे पूज्य योगी भी आपकी सेवा करते हैं। हे भगवान! ज्ञानियोंमें आप सर्वज्ञ हैं प्रचंड तप तपनेवाले तपस्वियोंमें आप महा तपस्वी हैं, योगियोंके अन्दर महायोगी और कर्मोंके जीतनेवाले जिनोंमें आप उत्कृष्ट जिन हैं ॥ ७—९ ॥ हे भगवान! आपका चित्त संसारके दुखोंसे समस्त जगत्‌को उद्धार करनेका है, आपकी संसारके किसी भी पदार्थमें इच्छा नहीं इसलिये आप निरीह हैं, समस्त जगतका हित करनेवाले हैं, वहिरङ्ग और अन्तरंग दोनों प्रकारकी लक्ष्मीसे शोभायमान हैं और संसारमें समस्त निर्ग्रंथोंके आप राजा हैं ॥ १० ॥ हे भगवान! यह वड़े अचरजकी वात है कि इन्द्राणी आदि आपके चरण कमलोंकी सेवा करती हैं तव भी आप ब्रह्मचारी हैं, यद्यपि आप समस्त संसारके पदार्थोंके जानकार हैं तथापि इन्द्रियोंके ज्ञानसे आप दूर हैं अर्थात् इंद्रियजन्य ज्ञान आपके अंदर नहीं ॥ ११ ॥ हे भगवान! जिसप्रकार सूर्यके द्वारा अंधकारका नाश होता है उसीप्रकार आपके दर्शनरूपी किरणोंसे हमारा अज्ञानरूपी अंधकार और पापोंका क्षय हो गया ॥ १२ ॥ हे भगवान! आप गुणोंके समुद्र हैं इसलिये स्वर्ग और मोक्ष की अभिलाषासे आपके लिये नमस्कार है, आप दिव्य शरीरके धारक हैं और घातिया कर्मोंके नाश करनेवाले हैं इसलिये आपके लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ विशेष क्या? वस! सविनय प्रार्थना यही है कि आपने जिस अलौकिक विभूतिको प्राप्त किया है वह कृपाकर वहुत शीघ्र हमें भी प्रदान करें क्योंकि आप संसारके अंदर कृपानाथ हैं और याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हैं ॥ १४ ॥ इसप्रकार देवेंद्रों

विशाखाख्य समग्रधी. । महर्द्धिको गणान् सर्वान् सद्धर्मश्रवणोत्सुकान् ॥१६॥ उत्थाय कुड्मलीकृत्य करौ नत्वा जगद्गुरुं । स्तुत्वा स्तुतिशतैर्भूयोऽकरोत्पृच्छामितिस्वयं ॥ १७ ॥ देव ! त्वं विश्वतत्त्वानि समग्रं धर्मलक्षणं । द्वादशांगभवा सर्वं न सर्वज्ञ ! निरूपय ॥ १८ ॥ ततोऽवादीज्जगन्नाथो गभीरध्वनिना चिदे । विश्वसत्त्वहितार्थाय मुक्तिमार्गप्रवृत्तये ॥ १९ ॥ मुखाम्बुजेऽस्य वक्तुर्विकृतिनाभून्मनाग् न च । नाल्वोष्ठाना परिस्पदो निर्ययौ भारती मुखात् ॥ २० ॥ शृणु त्वं हे गणाधीश ! धीमन्नेकाग्रचेतसा । सर्वै गणैः सम सर्वं वक्ष्ये व श्रुतविस्तर ॥२१॥ जीवाजीवास्रवा

ने भक्तिपूर्वक भगवान जिनेंद्रकी स्तुति की। जिस अभीष्ट वस्तुको उन्हें प्रार्थना करनी थी वह प्राथनाकी एवं वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वे भगवान जिनेंद्रके सन्मुख अपने अपने कोठोंमें जाकर बैठ गए ॥ १५ ॥ भगवान मल्लिनाथके सबसे प्रधान गणधर विशाख थे जो कि पूर्ण बुद्धिके धारक थे, नाना प्रकार की ऋद्धियोंको प्राप्त थे, जिस समय उन्होंने देखा कि कोठोंमें बैठनेवाले समस्त भव्य जीव धर्मका स्वरूप जाननेके लिये उत्सुक हैं वे उठे, हाथोंको जोड़कर उन्होंने तीन जगतके गुरु भगवान जिनेंद्रको भक्तिभावसे नमस्कार किया। सैकड़ों प्रकारके स्तुति परिपूर्ण वचनोंसे स्तुति की एवं स्वयं इसप्रकार भगवान जिनेंद्रसे पूछने लगे—

हे देव! आप सर्वज्ञ हैं इसलिये तत्वोंका स्वरूप, धर्मका अखंड लक्षण और बारह अंगोके अंदर जो जो बातें बतलाई गईं हैं उन सब बातोंके जानकार हैं कृपाकर उन सब बातोंका हमारे जाननेके लिये स्वरूप वर्णन करिये ॥ १६—१८ ॥ गणधर विशाखकी इस प्रकारकी पवित्र धर्मजिज्ञासा सुनकर समस्त प्राणियोंका हित संपादन करनेके लिये और मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति प्रकट करनेके लिये "जीवोंको वास्तविक ज्ञान हो" इस कृपासे प्रेरित वे भगवान जिनेंद्र धर्मोपदेशके लिये प्रवृत्त होगये ॥ १९ ॥ यह नियम है कि वक्ता जिससमय बोलता है उसके मुखपर कुछ विकार और तालु ओठोंका हलन चलन होने लगता है परंतु जिस समय भगवान धर्मोपदेशके लिये प्रवृत्त हुए थे उस समय उनके मुखपर किसी प्रकारका विकार नहीं प्रतीत होता था एवं तालु ओंठ आदिका हलन चलन भी किसी प्रकारसे नहीं होता था इसलिये इस आश्चर्यकारी रूपसे भगवान जिनेन्द्रके मुखसे वचन भंगी निकलती थी। वे भगवान जिनेन्द्र, गणधर विशाखको उत्तरमें इस प्रकार कहने लगे—हे बुद्धिमान समस्त गण-सभासदोंके स्वामी! मैं आगमके

वध. संवरो निर्जरा शिव. । इति सप्तैव तत्त्वानि प्रोक्तानि श्रीजिनेशिना ॥ २२ ॥ तेषा भेदं च विस्तारं हेयाहेयं च लक्षण । द्रव्यपर्याय भेदाश्च रचयामास सोऽजसा ॥ २३ ॥अपारसंसृतेर्भव्यान् यद्दुद्धृत्य शिवालये, धरत्येव स धर्मोऽत्र श्रेयोऽनतसुखार्णव. ॥ २४ ॥ समग्रेतरभेदेन द्विधा धर्मो दयामय । यतिश्रावकदक्षाणा स्वर्गमोक्षप्रदोमत. ॥२५ ॥ आदौ सद्दर्शन धार्यं धर्ममूलं गुणैर्युत । त्यक्तदोषं गृहस्थश्चो संयतैर्मु क्तिवल्लभं

स्वरूपका विस्तारसे वर्णन करता हूं वह तुम्हें और समस्त गणको चित्त एकाग्रकर ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए

जीव अजीव आस्रव वंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व सात हैं। इन जीव अजीव आदि तत्त्वोंके भेद, उनका विस्तार, कौन तत्व हेय है और कौन उपादेय है यह वात, जीव अजीव आदिका लक्षण और द्रव्य पर्यायोंके भेद, इन सब वातोंको उन्होंने कहा और वोले कि ॥२०—२३॥ यह संसाररूपी समुद्र अपार है इस अपार संसाररूपी समुद्रसे उठाकर जो जीवोंको मोक्षमें लेजाकर रक्खे वह धर्म कहा जाता है और वह अनंते सुखोंका समुद्र स्वरूप है ॥२४॥ वह दयामय धर्म, सकल और विकलके भेदसे दो प्रकार का है। सकल धर्मको धारण करनेवाले मुनि होते हैं और विकल धर्मको धारण करनेवाले श्रावक होते हैं एवं वह स्वर्ग और मोक्षके सुखोंका प्रदान करनेवाला है ॥२५॥ गृहस्थोंकी ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन करते हुए वे जिनेन्द्र कहने लगे—धर्मका मूलकारण समस्त दोषोंसे रहित सम्यग्दर्शन है और वह मोक्षकी परम प्यारी वस्तु है। जो महानुभाव धर्मको धारण कर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं वे चाहे गृहस्थ वा मुनि कोई हों उन्हें सवसे पहिले सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये। मद्य मांस मधु और पांच उदंवर अर्थात् ऊमर कठूमर कटहर पीपर और पाकर इन आठोंका त्याग गृहस्थोंके आठ मूलगुण है। जो महानुभाव अणुव्रत वा महाव्रतोंके धारण करनेके अभिलाषी हैं उन्हें पहिले इनआठ मूलगुणोंको धारण करना चाहिये जूआ खेलना १ शराव पीना २ मांस खाना ३ वेश्यासेवन करना ४ परनारी सेवनकरना ५ चोरी करना ६ और शिकार खे-

१ । सम्यग्दर्शनशुद्ध. संसारशरीरभोगनिर्विण्ण । पचगुरुचरणशरणो दर्शनिस्तत्त्व पथगृह्य ॥ १३७ ॥ जो महानुभाव सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हो, ससार शरीर और भोगोंमें विरक्त हो, पांचों परमेष्ठियोंके चरणोंको शरण समझे और समीचीन मार्गका ग्रहण करनेवाला हो वह महानुभाव पहिली प्रतिमा दर्शन प्रतिमाका धारण करनेवाला है । रत्नकरंडश्रावकाचार । मद्यमासमधुत्यागै. सहाणुव्रतपंचक । अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणा श्रवणोत्तमा ॥ ६६ ॥ रत्नकरंडश्रावकाचार ।

॥२६॥मद्यमासमधून्येव सहोदुम्बरपंचके । त्यक्त्वा मूलगुणा अष्टौ धार्या आदौ व्रताप्तये ॥ २७ ॥ य सप्तव्यसनं त्यक्त्वा धत्ते मूलगुणाष्टकं सम्यग्दर्शनसशुद्धस्तस्याद्या प्रतिमा मता ॥ २८ ॥ अणुव्रतानि पंचैव त्रिप्रकारं गुणव्रत । शिक्षाव्रतानि चत्वारि द्वादशेति व्रतान्यपि ॥ २६ ॥ मनोवाक्काययोगेन कृताद्यैस्त्रसघातन । यो न कुर्यात्सुधीस्तस्य भवेदाद्यगुण व्रत ॥ ३० ॥ सर्वव्रत समूहानामहिंसा जननी मता । खानिर्विश्वगुणाना च धरा धर्मतरो. परा ॥ ३१ ॥ परपीडाकर स्थूलमसत्य यः कृतादिभि । न वक्ति जातु धीमान् स भजेत्सत्यमणुव्रतं ॥ ३२ ॥ सत्यं हितं मितं तथ्यं वधवधादिदूरगं । वक्तव्य व्रतिभिर्नित्यं मधुरं धर्मसूचक ॥ ३३ ॥ नष्टं वा पतितं स्थूलपरवस्त्वादि विस्मृत । पथ्यादौ गृह्यते यन्न तत्तृतीयं व्रतं

लना ७ ये सात व्यासन माने हैं इन सातों प्रकारके व्यसनोंका सर्वथा त्यागकर जो पुरुष आठ मूलगुणोंको धारण करता है वह सम्यग्दर्शनसे शुद्ध कहा जाता है एवं जो महानुभाव इसप्रकार सात व्यसनोंका त्याग कर आठ मूलगुणोंको धारण करता है वह दर्शन नामक पहिली प्रतिमाका धारक माना जाता है ॥२५—२८॥ हिंसा १ चोरी २ झूठ ३ कुशील ४ और परिग्रह ५ स्थूलरूपसे इन पांचों पापोंका त्याग करना पांच प्रकारका अणुव्रत है। दिग्व्रत अनर्थदंडव्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं एवं देशावकाशिक १ सामायिक २ प्रोषधोपवास ३ और अतिथिसंविभागव्रत ४ ये चार शिक्षाव्रत हैं इस प्रकार ये वारहव्रत श्रावकोंके हैं ॥२६॥ मनसे करना कराना और करनेकी अनुमोदना करना, वचनसे करना कराना और अनुमोदना करना एवं शरीर से करना कराना और अनुमोदना करना इसप्रकार मनबचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जो दोइंद्रिय आदि त्रस जीवोंका घात नहीं करना है वह पहिला अहिंसा अणुव्रत कहा जाता हैं ॥ ३० ॥ यह अहिंसा समस्त व्रतोंकी जननी है अर्थात् जबतक हृदयमें अहिंसाकी सत्ता नहीं है तबतक किसी भी व्रतका पलन नहीं हो सकता। यह समस्त गुणोंकी खानि है। अहिंसाके पालन करनेसे हो आत्मामें समस्त गुणोंकी प्राप्ति होती है एवं धर्मरूपी वृक्षोंको उत्पन्न करनेवाली उत्तमभूमि है—अहिंसाके पालन से ही वास्तविक धर्मकी उत्पत्ति होती है ॥ ३१ ॥ मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे दूसरे को पीड़ा करनेवाले स्थूल झूठका न बोलना सत्य अणूव्रत कहा जाता है जो महानुभाव सत्य अणुव्रतके पालन करनेवाले हैं उन्हें चाहिये कि जब बोलें उससमय सत्य

स्मृतं ॥ ३४ ॥ मात्रादिसदृशा: सर्वा ये पश्यन्ति परस्त्रियः । न कुर्वंति मनागागं तेषा तुर्यमणुव्रतं ॥ ३५ ॥ क्षेत्रादिदशसंगाना प्रमाणं यद्विधीयते । सतोषाल्लोभमाहत्य तत्पंचममणुव्रतं ॥ ३६ ॥ षोडशस्वर्गपर्यंत फल पुण्य पर मतां । पापादिरसवरं पंचाणुव्रतानि फलन्ति च ॥ ३७ ॥ संख्या या क्रियते दक्षैर्जीवघातादिहानये । दिग्देशाना प्रणीता तज्जिनैर्दिग्विरतिर्व्रत ॥ ३८ ॥ वृथा पापास्रव सर्वोऽपध्यानादिहापने । यो निराक्रियते भव्यै-

ही बोलें । हितकारी बोलें । बहुत थोड़ा परिमित बोलें । पक्षपात रहित निर्दोष बोलें । "मारो बांधो" इत्यादि शब्द कभी न बोलें एवं बहुत मीठा और धर्मके स्वरूपका सूचन करनेवाला वचन बोलें ॥ ३२—३३ ॥ जो सोना चांदी आदि वस्तुयें नष्ट हों अर्थात् जमीन आदिके अंदर गड़ी आदि हों वा मार्ग आदिमें गिरी पड़ीं हों वा किसी कारण वश भूली हुई हों उन्हें मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जो ग्रहण नहीं करना है वह तीसरा अचौर्य नामका अणुव्रत है ॥ परस्त्रियोंको जो माता आदिके समान समझता है अर्थात् अपने से छोटी स्त्रीमें पुत्रीके भाव, बराबर वालीमें बहन सरीखे भाव और बड़ीमें माता सरीखे भाव होना है एवं उन्हें देखकर जरा भी राग भावका न होना है वह चौथा ब्रह्मचर्य (स्वदारसंतोष) नाम का अणुव्रत है ॥ ३५ ॥ तथा संतापको हृदयमें धारणकर और लोभका सर्वथा त्यागकर ऊपर जो क्षेत्र वस्तु आदि दशप्रकारके परिग्रह कहे गये हैं उनका परिणाम करलेना है अर्थात् हम अमुक चीज इतनी ही रक्खेंगे इसप्रकारकी मर्याद बांध लेना है वह पांचवां परिग्रह परिणाम नामका अणुव्रत है ॥ ३६ ॥ इन पांचों अणुव्रतोंके पालन करनेका फल यह है कि पंचाणुव्रती महानुभाव पवित्र पुण्य उपार्जन कर सोलहवें स्वर्गतक के सुखोंको भोगते हैं एवं पापके आगमनको रोकते हैं ॥ ३७ ॥

दिशाओंकी मर्यादाकर उनसे आगे न जाना दिग्विरति कही जाती है । जीवोंके घात आदि न हों, इस पवित्र अभिलाषासे जो दिशाओंके अन्दर यह परिणाम करलेना कि अमुक दिशामें में इतने कोसतक जाऊंगा उससे आगे न जाऊंगा वह दिग्विरति नामका गुणव्रत है ॥ ३८ ॥ जिन जिन कार्योंसे व्यर्थ ही पापका आस्रव होता हो उन कार्योंका जहांपर त्याग हो एवं अपध्यान-खोटे ध्यान आदिका भी त्याग हो वह अनर्थदण्ड व्रत है । इसका विशेष तात्पर्य यह है —

स्तद्द्वितीयं गुणव्रत ॥३९॥ तांबूलान्नादिभोगानां प्रमाण क्रियते व यत् । स्त्रोभूपाद्युपभोगाना तृतीयं तद्गुणव्रतं ॥४०॥ शृंगवेरादिकान् कंदांस्त्व-

विना प्रयोजन ही जीवोंको दंड देना अनर्थदण्ड कहा जाता है एवं उसका त्याग कर देना अनर्थदंडव्रत नामका गुणव्रत है। अनर्थदण्डके पापोपदेश १ हिंसादान २ अपध्यान ३ दुःश्रुति ४ और प्रमादचर्या ५ ये पांच भेद हैं। मारना बांधना वहुत वोझा लादना आदि रूपसे तिर्यचोंको क्लेश करनेवाला उपदेश देना, व्यापारका उपदेश देना, जिसकार्यके करनेमें छह कायके जीवोंकी हिंसा होती हो ऐसा हिंसापरिपूर्ण उपदेश देना, वा महल आदिका बनावनारूप आरम्भका उपदेश देना एवं छल कपट धोखेवाजीका उपदेश देना इस प्रकार पापका कारण उपदेश देना पापोपदेश नामका अनर्थ दंड है। फरसा तलवार फावड़ा अग्नि आयुध और वेड़ी आदि हिंसाके उपकरणोंका दूसरे को प्रदान करना हिंसादान नामका अनर्थदण्ड है। तीव्र द्वेष वा तीव्र रागसे पराये स्त्री पुत्र आदिके विषयमें यह चिंतवन करना कि यह वंध जाय वा मर जाय वा छिद जाय आदि तो अच्छा ऐसे खोटे चिंतवनका नाम अपध्यान नामका अनर्थदंड है। जो शास्त्र असि, मषि, कृषि आदि आरम्भ, धन धान्य आदिक परिग्रह, रौद्र कामोंका साहस मिथ्यात्व द्वेष राग अहंकार और कामके विकारोंको उत्पन्न करनेवाले हों ऐसे खोटे शास्त्रोंका सुनना विचारना दुःश्रुति नामका अनर्थदंड है। पृथिवी खोदना जल वहाना अग्निका जलाना और पवनका फूँकना इसप्रकार व्यर्थ आरम्भ करना, विना कारण वनस्पतिका छेदना स्वयं चलना और दूसरों को चलाना यह सव प्रमादचर्या नामका अनर्थदंड है। इन पांचों प्रकारके अनर्थदंडों का त्यागना अनर्थदण्डव्रत कहा जाता है।

तथा तांवूल अन्न आदि भोगरूप पदार्थोंका और स्त्री भूषण वस्त्र आदि उपभोगस्वरूप पदार्थोंका जो प्रमाण करना है वह भोगोपभोग परिमाण नामका गुणव्रत है। जो वस्तु एक वार भोगकर पुनः भोगने में न आवे वह भोग और जो वार-वार भोगनेमें आवे वह उपभोग स्वरूप कहलाती है। पान इलायची भोजन आदि पदार्थ एकही वार भोगनेमें आते है इसलिये ये भोगस्वरूप है एवं स्त्री भूषण आदि पदार्थ वार २ भोगनेमें आते हैं इसलिये ये उपभोग स्वरूप हैं। इन तीनों दिग्व्रतोंके साथ साथ अनंते जीवोंसे

नंतजीवसंकुलान् । मूलकीटफलान्निद्यान् पुष्पादीन् विषवत्त्यजेत् ॥ ४१ ॥ दिशा या गमने संख्या दिनं प्रति विधीयते । क्षेत्रादिसीमया मुक्त्यै तत्स्याद्देशावकाशिकं ॥ ४२ ॥ त्रिकाल क्रियते यद्धि नित्यं सामायिकं बुधै. । त्रिशुद्धया मुक्तये शिक्षाव्रतं स्यात्तद्द्वितीयकं ॥ ४३ ॥ अष्टम्या च चतुर्दश्या निरारम्भो विधीयते । नियमेनोपवासो यस्तत्प्रोषधव्रतं मतं ॥ ४४ ॥ पात्रदानाय नित्यं यद् गृहद्वारं विलोक्यते । चतुर्धा दीयते दानं तत्स्याच्छिक्षाव्रतातिमं ॥ ४५ ॥ प्रतिपालयतीमानि यो द्वादशव्रतान्यपि । अतीचारान् विना सोऽयाद्यतिः षोडशमं दिवं ॥ ४६ ॥ यावज्जीवं

व्याप्त अदरख आदि कंदमूलोंको, जिनके मूलभागमें कीड़े हों ऐसे फलोंको और निंद्य पुष्प आदि चीजोंको भी विषके समान अहितकारी जान छोड़ देना चाहिये ॥ ३९—४१ ॥ पूर्व दिशामें मैं सौ कोशतक जाऊंगा वा उत्तर दिशामें मैं पचास आदि कोश तक जाऊंगा ऐसा परिमाण करना तो दिग्व्रतका विषय है परन्तु इसी परिमाणमेंसे क्षेत्रकी मर्यादा बांधकर जो प्रतिदिन यह परिमाण कर लेना है कि आज मैं अमुक घर तक जाऊंगा वा मन्दिर तक जाऊंगा मंदिरसे बाहर नही जाऊंगा वह देशावकाशिक नामका शिक्षाव्रत कहलाता है यह देशावकाशिक शिक्षाव्रत विशेषरूपसे जीवकी हिंसाका निरोधक होनेसे निर्मलता का कारण है इसलिये मोक्षको प्राप्त करानेवाला माना जाता है ॥ ४२ ॥ सामायिकका विधान तीनों काल माना जाता है जो महानुभाव मोक्षप्राप्तिकी अभिलाषासे मन वचन कायकी शुद्धतासे तीनों काल सामायिक करते हैं उनके सामायिक नामका दूसरा शिक्षाव्रत होता है ॥ ४३ ॥ प्रत्येक मासकी अष्टमी चतुर्दशी के दिन किसी प्रकारके आरंभको न कर नियमसे उपवास करना है वह प्रोषधोपवास नामका तीसरा शिक्षाव्रत है ॥ ४४ ॥ उत्तम आदि पात्रोंको दान देनेकेलिये जो प्रतिदिन अपने घरका द्वार देखते हैं द्वाराप्रेक्षण करते हैं तथा पात्रोंके प्राप्त होनेपर उन्हें आहार औषधि आदि चारों प्रकारका दान करते हैं वे महानुभाव अतिथिसंविभाग नामके चौथे शिक्षाव्रतके धारक हैं जिसकी कोई निश्चित तिथि न हो वह अतिथि कहलाता है और संविभागका अर्थ निर्दोष वस्तुका देना है अर्थात् मुनि आदि अतिथियोंके लिये जो आहार औषधि आदिका प्रदान करना है वह अतिथिसंविभागका अन्वर्थ है ॥ ४५ ॥ ग्रन्थकार फल प्रदर्शन करते हुए कहते हे कि जो महानुभाव उपर्युक्त व्रतोंका अतीचार रहित पालन करते हैं उन्हें सोलहवें स्वर्ग के दिव्य सुख भोगनेके लिये प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥

प्रपाल्योच्चैर्व्रतानि सकलान्यपि । अन्ते सल्लेखना कार्या विधिना तत्फलाप्तये ॥ ४७ ॥ द्वादशव्रतसर्वाणि यो विधत्ते बुधोत्तम. । द्वितीया प्रतिमा तस्य भवेत्स्वर्गश्रिय. सखी ॥ ४८ ॥ सामायिकाभिधा ज्ञेया तृतीया प्रतिमा परा । सत्प्रोषधोपवासाख्या चतुर्थी कर्मनाशिनी ॥ ४६ ॥ पत्रबीजफलादीनि सचित्तानि त्यजेत्त्रिधा । चाप्रासुकजलादीनि पचमी प्रतिमाप्तये ॥ ५० ॥ अशन पानकं खाद्य स्वाद्यं च त्यज्यते निशि । अखाद्यवद्दयायै

व्रतोंको पालन करनेवालोंके लिये अन्त समयमें सल्लेखनाका भी विधान है। सल्लेखनाका लक्षण यह बतलाया गया है—कि तीव्र उपसर्ग आनेपर वा दुर्भिक्ष उपस्थित होनेपर वा अत्यन्त वृद्धावस्था होनेपर अथवा तीव्र रोगके उपस्थित होनेपर जिसका कि किसी प्रकारसे प्रतीकार न हो सके—मृत्युका ही समय आकर उपस्थित हो जाय उससमय किसी कषाय आदिसे प्रेरित न होकर धर्मके लिये जो सन्यासपूर्वक शरीरका त्याग करना है वह सल्लेखना व्रत है। जो महानुभाव बारह व्रतोंके पालन करनेवाले हैं उन्हें उपर्युक्त व्रतोंका यावज्जीव पालनकर अंतमें मृत्युके समय उन समस्त व्रतोंके पवित्र फलकी प्राप्तिके लिये शुद्ध भावोंसे सल्लेखना करनी चाहिये ॥ ४७ ॥ इसप्रकार जो महानुभाव इन बारह व्रतोंका अतीचाररहित विशुद्ध भावों से पालन करता है उसके दूसरी प्रतिमा होती है जो कि स्वर्गरूपी लक्ष्मीकी सखी स्वरूप मानी गई है ॥ ४८ ॥ तीसरी सामायिक प्रतिमा है जो पुरुष प्रत्येक दिशामें तीन तीन आवर्त्त इसप्रकार बारह आवर्त्तोंको कर एवं चारों दिशाओंमें चार प्रणामकर स्थिति होनेवाला हो यथाजात रूपका धारक हो दोनों प्रकारके आसनोंसे युक्त हो मन वचन कायकी शुद्ध रखनेवाला हो और तीनों काल सामायिक करनेवाला हो वह सामायिक प्रतिमाका धारक है। चौथी प्रतिमाका नाम सत्प्रोषधोपवास है। जो महानुभाव प्रत्येक मासकी अष्टमी और चतुर्दशीको शक्तिको न छिपाकर प्रोषधोंका करनेवाला है वह कर्मोंको नाश करनेवाली सत्प्रोषधोपवास प्रतिमाका धारक है। पांचवी प्रतिमाका नाम सचित्तविरत है जो महानुभाव इस पांचवीं प्रतिमाकापालन करना चाहैं उन्हें मन बचन और कायसे सचित्त पत्र बीज और फल आदिका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये एवं उन्हें अप्रासुक जल भी ग्रहण न करना चाहिये ॥४६—५०॥ छठी प्रतिमा रात्रिभुक्तिविरत है। जो महानुभाव रात्रिभुक्तिविरत प्रतिमाके धारक हैं उन्हें दया धर्मकी प्राप्तिके लिये जिस प्रकार अखाद्य-नहीं खाने योग्य, वस्तुका सर्वथा त्याग कर दिया जाता है उसीप्रकार रात्रिमें

पत् षष्ठी च प्रतिमा हि सा ॥ ५१ ॥ यो विधत्ते इमाः षट् प्रतिमा दोषतिगा बुध । जघन्यः श्रावकः प्रोक्त सद्दृग्शुद्धो जिनागमे ॥ ५२ ॥ स्वावामिव सर्वनारी मत्वावामेध्यखातिका । पाल्यते ब्रह्मचर्यं यत्सप्तमी प्रतिमात्र सा ॥ ५३ ॥ पापाकरो गृहारम्भस्त्यज्यते सकलो हि य । मनोवाकाययोगै स्यादष्टमी प्रतिमात्र सा ॥ ५४ ॥ वस्त्रपात्रे विना शोषस्त्यज्यते यः परिग्रह. । सर्वानर्थकरीभूतो नवमी प्रतिमा हि सा ॥ ५५ ॥ नवैता प्रतिमा धत्ते य सद्दृष्टिर्विरागवान् । मध्यमः श्रावकः सोऽत्र मनो धर्मपरायणः ॥ ५६ ॥ मनाग् नानुमति धत्ते यो गेहाद्यादिकर्मणि । आहारादौ

अन्न पान खाद्य और स्वाद्य इन चारों प्रकारके आहारोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये । अन्नसे यहांपर भोजन लिया गया है । पानसे जल दूध शरबत आदि पीने योग्य पदार्थका ग्रहण है । खाद्यसे खाने योग्य पदार्थ पेड़ा लाडू आदि लिये हैं और स्वाद्यसे इलाची पान सुपारी आदि पदार्थोंका ग्रहण है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार जो महानुभाव पहिली प्रतिमासे छठी प्रतिमापर्यंत यह प्रतिमाओंका निर्दोषरूपसे पालन करनेवाला है वह सम्यग्दर्शनसे महानुभाव जघन्य श्रावक माना गया है ॥ ५२ ॥ सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा है जो महानुभाव अपनी पराई समस्त स्त्रियोंको अपनी माताके समान मानता है एवं उनसे रंचमात्र भी रागका स्पर्श नहीं रखता वह महानुभाव ब्रह्मचर्य प्रतिमाका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी है ॥ ५३ ॥ घरका समस्त आरम्भ अनेक प्रकारके पापोंका कारण है अर्थात् सेवा खेती व्यापार आदि कोई भी आरम्भ किया जाय नियमसे उससे पापोंकी उत्पति होती है । जो महानुभाव इसप्रकार पापके कारण स्वरूप घरके आरम्भका मन वचन और कायकी शुद्धतापूर्वक त्याग करनेवाले हैं उन महानुभावोंके आरम्भ त्याग नामक आठवी प्रतिमा होती है ॥ ५४ ॥ नवमी प्रतिमाका नाम परिचित परिग्रह त्याग है । परिग्रह समस्त अनर्थोंका मूल कारण है । जो महानुभाव वस्त्र और पात्रके सिवाय शेष समस्त प्रकारके परिग्रहका त्यागी है अर्थात् क्षेत्र वस्तु आदि ऊपर कहे गए दश प्रकारके परिग्रहसे ममत्व हठाकर जो महानुभाव निर्ममत्व परिणाममें लीन है और अपने आत्मस्वरूपके अन्दर विराजमान है और संतोषी है वह पुरुष परिचित परिग्रह त्याग नामक नवमी प्रतिमा का धारक है ॥ ५५ ॥ इसप्रकार जो सम्यग्दृष्टि रागरहित और धर्ममे लीन होकर इन नौहो प्रतिमाओंका निर्दोष रूपसे पालन करनेवाला है वह मध्यम श्रावक कहा जाता है ॥ ५६ ॥ दशवीं प्रतिमाका नाम अनुमति त्याग है जो महानुभाव घर आदिके कार्योंमें और आहार आदिमें रंचमात्र भी अपनी अनुमति (सलाह) नही देता अर्थात् सदा मध्यस्थभाव रखता है वह महानुभाव अनुमति त्याग नामक दशवीं प्रति-

च तस्यैव प्रतिमा दशमी भवेत् ॥ ५७ ॥ अखाद्यमिव विज्ञाय सदोपाहार मंजसा। योऽस्ति सद्भिक्षयाहारं तस्य स्या त्प्रतिमाविमा ॥ ५८ ॥ एना य प्रतिमा धत्ते सम्यग्दृष्टिः शिवाप्तये। उत्तमः श्रावक प्रोक्तः स जिनै स्वर्गमुक्तिभाग् ॥ ५९ ॥ गृहिणा मुदमुत्पाद्य गृहिधर्मोपदेशने। यतिधर्ममतो ब्रूते जिनो यतिसुखाप्तये ॥ ६० ॥ महाव्रतानि पचैव तथा समितयः परा। पचेन्द्रियनिरोधाश्च लोच आवश्यकानि षट् ॥ ६१ ॥ अचेलत्व तथा स्नानं क्षितौ हि शयन परं। अदंतघर्षण रागदूरं च स्थितिभोजनं ॥ ६२ ॥ एकभक्तं गुणा एते मूलाख्या द्विचतुर्दश। मूलभूता मुनीना सद्धर्मस्य मोक्षकारिण ॥ ६३ ॥ प्राणान्तेऽपि न मोक्तव्या धर्ममूला इमे गुणाः। मूलभूता यमादीना जातूत्तरगुणाप्तये ॥ ६४ ॥ सर्वमूलगुणा-

माका धारक कहा जाता है ॥ ५७ ॥ तथा ग्यारहवी प्रतिमाका उत्कृष्ट श्रावक है। जो महानुभाव अपने निमित्तसे होनेवाले सदोष आहारको अखाद्यके समान निंदनीक जान कर उसे ग्रहण नहीं करता एवं क्षोभि वृत्तिसे आहार ग्रहण करता है अर्थात्- घरबारसे विरक्त हो जहां मुनिराज विराजमान हों उस वनमें जाकर एवं गुरुके समीपमें व्रतोंको धारणकर तपका आचरण करता हे, भिक्षाचर्यासे आहार ग्रहण करता हे एवं चेलखंड--कोपीनमात्र परिग्रहका धारक है वह पुरुष उत्कृष्ट श्रावक नामक ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक है ॥ ५८ ॥ इसप्रकार जो सम्यग्दृष्टि मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे इन ग्यारह प्रतिमाओंका निर्दोष रूपसे पालन करता है वह उत्कृष्ट श्रावक है और वह स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिका पात्र है ॥ ५९ ॥ इसप्रकार गृहस्थ धर्मका उपदेश देकर भगवान जिनेन्द्रने कहा कि गृहस्थोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये गृहस्थ धर्मका वर्णन कर दिया गया अब यतियोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये यति धर्मका व्याख्यान किया जाता है—

अहिंसा आदि पांच महाव्रत, ईर्या आदि पांच समितियां, पांचों इन्द्रियोंका निरोध १५ केशोंका लोंच करना १६ समता आदि छह आवश्यक २२ समस्त वस्त्रका त्याग २३ यावज्जीव स्नानका न करना २४ भूमिपर शयन २५ दंतधावन नही करना २६ रागरहित खड़े खड़े आहार लेना २७ और एकवार लघु भोजनका करना ये २८ अट्ठाईस मुनियोंके मूल गुण हैं। समीचीन धर्मके मूलकारण होनेसे इनकी मूलगुण संज्ञा है एवं ये मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ॥ ६०—६३ ॥ मूलगुणोंकी प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि-ये मूल गुण वास्तविक धर्मके मूल कारण हैं एवं यम नियम आदिकी उत्पत्तिके भी प्रधान कारण हैं एवं मूलगुणोंके पूर्णरूपसे पालन करनेसे ही चौरासी लाख उत्तर गुणोंकी सिद्धि होती है इसलिए जो पुरुष उत्तर गुणोंकी प्राप्तिके अभिलाषी हैं उन्हें प्राणोंके जानेपर भी कभी भी इन मूलगुणोंका परित्याग नहीं करना चाहिये।

चारात्परो धर्मश्च जायते । धर्माल्लोकत्रये शर्म महन्मोक्ष क्रमात्सतां ॥ ६५ ॥ इति मत्वा सदाराध्या विश्वे मूलगुणास्त्रिधा । जिनमुद्रा समादाय धर्मार्थिभिमुमुक्षुभि. ॥ ६६ ॥ उत्तमाद्या क्षमा मार्दवं तथार्जवमुत्तम । सत्य शौच पर संयमस्तपस्त्याग उत्तम ॥ ६७ ॥ आकिंचन्यं महद्ब्रह्मचर्यं बीजसमान्य हो । लक्षणानि दशेमानि स्युर्धर्मकल्पशाखिन. ॥ ६८ ॥ अतो धर्मार्थिभिर्हि तानि लक्षणानि मुक्तये । धर्महेतूनि सेव्यानि न मोक्तव्यानि जातुचित् ॥ ६९ ॥ नि पापो जायते धर्मस्तपोभिर्निखिलोऽनघो । उत्तमाचरणे. सर्वैर्ध्यानाध्ययनकर्मभि. ॥ ७० ॥ वैराग्यभावनाद्यैश्च मनोवा-वाक्कायकर्मभिः । शुद्धै साम्यैश्च निष्पापै धर्मसवेगवासितै ॥ ७१ ॥ तस्माद्धर्मार्थिभि कार्यं तप सर्वं द्वि षड्विधं । ध्यानाध्ययनयोगाचारादिकं

तथा इन समस्त मूलगुणोंके आचरण करनेसे वास्तविक धर्मकी प्राप्ति होती है उस धर्मकी कृपासे तीनो लोकका महान कल्याण प्राप्त होता है एवं कर्मसे मोक्ष भी मिलती है इसलिए जो महानुभाव धर्मको प्राप्त करना चाहते है और अनंतसुखमय मोक्ष प्राप्तकी पूरी २ अभिलाषा रखते हैं उन्हें दिगम्बर जैन दीक्षा धारण कर मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक समस्त मूलगुणोंका अच्छी तरह आराधन करना चाहिये। उनके पालन करनेमें किसी प्रकारकी विराधना न हो यह प्रति समय ध्यान रखना चाहिये ॥ ६४-६६ ॥

उत्तम क्षमा मर्दव आर्जव सत्य सौच संयम तप त्याग आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दश लक्षण वास्तविक धर्मरूपी कल्पवृक्षके बीज स्वरूप हैं-इनको धारण करनेसे वास्तविक धर्मकी नियमसे उत्पत्ति होती है। इसलिये जो पुरुष धर्म प्राप्त करना चाहते हैं और मोक्ष प्राप्तिकी हृदयमें पूरी पूरी अभिलाषा रखते हैं उन्हें वास्तविक धर्मके कारण स्वरूप उत्तमक्षमा आदि लक्षणोंका नियमसे सेवन करना चाहिये और कभी भी उनसे विमुख नहीं रहना चाहिये ॥ ६७—६९ ॥ जिस उत्तम क्षमा आदि धर्मका ऊपर उल्लेख किया गया है वह निर्दोष समस्त धर्म निर्दोष तपोंके द्वारा होता है उत्तम आचरण ध्यान अध्ययन वैराग्य भावना शुद्ध मन वचन कायकी क्रियायें, निर्दोष समता भाव एवं धर्मानुकूल संवेगकी वासनावोंसे होता है इसलिये जो महानुभाव धर्मके अभिलाषी हैं उन्हें धर्मकी वृद्धिके लिये बारह प्रकारका तप ध्यान अध्ययन शुभयोग और आचार आदिका सदा ध्यान रखना चाहिये ॥ ७०—७२ ॥ इस परम पावन धर्मकी कृपासे ही पुत्र पौत्र आदिकी प्राप्ति होती है। इष्ट भोगोंका मिलना भी धर्मसे ही होता है। सज्जन और मित्रके समान सेवक भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होते हैं। पिता माता आदि बांधवोंकी प्राप्ति भी धर्मकी ही कृपासे होती है। शृंगारकी खानियाँ एवं धर्मकार्योंमें पूरी सहायता पहुचानेवाली स्त्रियां, पर्वतके

धर्मवृद्धये ॥ ७२ ॥ धर्मेण पुत्रपौत्राद्य' कामाभाश्च सज्जना । सेवका मित्रतुल्या पितृमात्राद्याश्च बांधवा ॥ ७३ ॥ शृंगारखानयो नार्य' सहायां धर्मकर्मणि ।'पर्वताभा गजास्तुंगा रथा अश्वा सुवेदिन' ॥ ७४ ॥ छत्रचामरराज्याद्यलंकरणानि पराणि च । तुंगधाम सुवस्तूनि जायते धर्मिणां स्वय ॥ ७५ ॥ सना श्रीगृंहदासीव धर्ममंत्रवशीकृता । विश्वशर्मकरा धर्ममूला कुर्यात्स्थितिं गृहे ॥ ७६ ॥ अहमिंद्रपदं धर्माच्छक्रराजपदं बुधै. । सर्वार्थसिद्धिभूतिश्च लभ्यते स्वर्ग उत्तम ॥ ७७ ॥ षट्खंडनिधिरत्नादिपूर्णा सर्वा विभूतय । चक्राका धर्मिणा धर्मादुत्पद्यते परश्रिय' ॥ ७८ ॥ प्राप्यंते धार्मिकैर्धर्मोत्तीर्थनाथश्रियो वरा । गणेशादिपदान्याशु विद्या ऋद्ध्यादमोऽखिला. ॥ ७९ ॥ यद्दूरं दुर्लभं सर्वं चातर्व्यं भुवनत्रये । तद्वस्तु स्वयमायाति धर्मात्करतले सतां ॥ ८० ॥ मुक्तिश्री स्वयमासक्ता चैत्य-धर्मधनेश्वरान् । दत्ते सालिंगन नून का कथा कल्पयोषिता ॥ ८१ ॥ इतिमत्वा सदा कार्यो धर्मो यत्नात्सुधार्मिकै. । सुखिभिर्धर्मवृद्ध्यर्थं सुखवृद्ध्यै शिवाय च ॥ ८२ ॥ दु खिभिर्दु खघाताय विधेयो धर्म उत्तम । पापिभि

समान विशाल हाथी, ऊंचे ऊंचे रथ और अच्छीतरह शिक्षित घोड़े भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होते हैं छत्र चमर राज्य आदि पदार्थ, उत्तमोत्तम भूषण, ऊंचे ऊंचे मकान और भी उत्तमोत्तम पदार्थ धर्मात्माओंके स्वतः सिद्ध प्राप्त होते हैं। जो पुरुष धर्मात्मा हैं उनके समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्रदान करनेवाली लक्ष्मी धर्मरूपी मंत्रसे वश की गई गृहदासीके समान रहती है। अहमिंद्रपद इन्द्रपद सर्वार्थ सिद्धि विमानकी विभूति उत्तम स्वर्गका सुख भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होता है। जो मनुष्य धर्मात्मा हैं धर्मकी कृपासे उनके छह खंडकी विभूति नौ निधि चौदह रत्न सुदर्शन चक्र आदि समस्त चक्रवर्तीकी विभूति प्राप्त होती है और भी अनेक प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त होती है। सबसे पवित्र और प्रधान तीर्थंकर की विभूति है परंतु धर्मात्माओंको धर्मकी कृपासे वह भी प्राप्त हो जाती है। गणधर पद और ऋद्धि आदि अनेक प्रकारकी विद्यायें भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होती हैं। विशेष क्या! तीनों लोकमें जो चीज बहुत दूर है, अत्यन्त दुर्लभ है और अमूल्य है वह चीज भी धर्मकी कृपासे अपने आप हाथपर आकर विराज जाती है। मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति संसारमें अत्यंत कष्टसाध्य है परंतु जो महानुभाव धर्मरूपी धनके ईश्वर हैं वह मुक्ति लक्ष्मी भी उनपर रीझ जाती है और पास आकर प्राप्त हो जाती है फिर अन्य देवांगनाओंकी तो बात ही क्या है अर्थात् धर्मकी कृपासे उनका प्राप्त होना अत्यन्त सुलभ है। इसलिये ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि जो महानुभाव धार्मिक हैं—परम धर्मात्मा हैं उन्हें यत्नपूर्वक सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। जो महानुभाव पूर्व पुण्यके उदयसे संसारमें सुखी है उन्हें भी धर्मवृद्धि सुखवृद्धि और मोक्षके लिये धर्म धारण करना

पापहान्यै च मोक्षाय भवभीरुभिः ॥ ८३ ॥ अतो बुधैर्न नेतव्या ह्येका कालकला क्वचित्। विना धर्मेण चानित्ये नृजन्मन्यतिदुर्लभे ॥ ८४ ॥ निरूप्येत्यादि सद्धर्मं फलभेदादिविस्तरात्। भावमुत्पादयामास सभ्यानां धर्मकर्मसु ॥ ८५ ॥ मोक्षं मोक्षफलं मोक्षमार्गं च मोक्षकारणं। संसारभ्रमणं पंचधा संसारनिबंधनं ॥ ८६ ॥ अधोमध्योर्ध्वभेदेन त्रिधा लोकस्थितिं जिन.। अलोकं सकलं निस्संदेहं दिव्यगिराभ्यधात् ॥ ८७ ॥ उत्स-

चाहिये। जो दुःखी हैं उन्हें दुःख दूर करनेकेलिये सदा उत्तम धर्म धारण करना चाहिये। पापी जीवोंको पापकी हानिके लिये धर्म धारण करना परमावश्यक है एवं जो संसारकी दुष्ट दशासे भयभीत हैं उन्हें मोक्ष की प्राप्तिके लिये धर्मका सेवन करना चाहिये। संसारमें मनुष्य जन्मका पाना अत्यन्त दुर्लभ है—बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये जो मनुष्य विद्वान हैं—संसारकी परस्थितिके वास्तविकरूपसे जानकार हैं उन्हें कालका एक टुकड़ा भी धर्मके विना न विताना चाहिये ॥ ७३—८४ ॥

इसप्रकार जिससमय भगवान जिनेन्द्रने समीचीन धर्म उसका फल और उसके भेद आदिका विस्तार से वर्णन किया उस समय समवसरणके अंदर जितने भी सभ्य बैठे थे सबकी परिणति धर्म कार्योंकी ओर झुक गई ॥ ८५ ॥ धर्मोपदेशके साथ २ भगवान जिनेन्द्रने मोक्ष, मोक्षका फल, मोक्षका मार्ग, और मोक्षके कारणोंका भी विस्तारसे निरूपण किया। द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव इसप्रकार पांचों परावर्तनोंका भी खुलासारूपसे प्रतिपादन किया ॥८६॥ अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्व लोकके भेदसे लोक तीन प्रकार का है। भगवान जिनेंद्रने तीनों प्रकारके लोकका भी विस्तारसे वर्णन किया। लोकके बाद अलोक है। सिवाय आकाश द्रव्यके उसके अंदर कोई भी द्रव्य नहीं रहता, भगवान जिनेंद्रने अपनी दिव्य वाणीसे उसका भी निस्संदेहरूपसे वर्णन किया ॥८७॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके भेदसे काल दो प्रकारका माना है। जिस कालमें मनुष्योंके बल वीर्य आदिकी निरंतर वृद्धि होती जाय उस कालका नाम उत्सर्पिणी है एवं जिस कालमें उनकी हीनता होती जाय उस कालको अवसर्पिणी माना गया है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों कालोंमेंसे प्रत्येक कालके छह छह भेद माने हैं और वे सुषमा सुषमा १ सुषमा २ सुषमादुःषमा ३ दुःषमासुषमा ४ दुःषमा ५ और दुःषमादुःषमा ६ इसरूपसे हैं। भगवान जिनेंद्रने किसरूपसे किस कालकी हानि होती है और किसरूपसे किस कालको वृद्धि होती है, विस्तारसे यह बात बतलाई

पिण्यवसर्पिण्योः षट् काला हानिवृद्धिजा । आयु.कायादिभेदेन सर्वे प्रोक्ता जिनेशिना ॥ ८८ ॥ तीर्थेशवलचक्रेशार्धचक्रितद्विपां विभुः । व्याजहार पुराणान्यागद्धिशमेवलादिभिः ॥ ८६ ॥ त्रिकालगोचरं देवो द्वादशागश्रु ताह्वन । यत्तत्सर्वं पदार्थादि गणान् प्रत्यबूबुधत् ॥ ६० ॥ तद्धाग्धर्मामृत मिष्टं पीत्वा सर्वे गणास्तदा । जन्मदाहविमुक्ता वा बभूवुः सुखिनो मुदा ॥ ६१ ॥ तद्धाण्याप्य बुधा केचित् सवेगं धर्मकर्मसु । वैराग्य पविना हत्वा मोहाद्रिमादद्दुस्तप. ॥ ६२ ॥ केचिच्च पशवो मर्त्या श्रावकव्रतमजसा । स्वीचक्रुर्भावना केचित्तपोदानार्चनादिपु ॥ ६३ ॥ काललब्ध्या सुरा केचित्तद्ध्वन्यभृतपानत' । मिथ्याविंप वमित्वाशु जगृहुर्दर्शनं परं ॥ ६४ ॥ गणाधीशोऽपि भव्यानां चोपकाराय मुक्तये । निरौपम्यधियाऽ-

तथा कौन कौन कालमें कितना कितना आयु काय आदिका परिमाण होता है यह बात भी भगवान जिनेंद्रने अच्छी तरह प्रतिपादन की ॥ ८८ ॥ तीर्थंकर, बलभद्र, चक्रवर्ती नारायण और प्रतिनारायणों के चरित्रोंका भी वर्णन किया एवं उनके कैसे शरीर थे, कैसी कैसी ऋद्धियां थीं, कैसे कैसे उन्हें सुख प्राप्त थे एवं कैसी कैसी उनके शरीर आदिकी सामर्थ्य थी यह बात भी अच्छी तरह वर्णन की ॥ ८६ ॥ द्वादशांग श्रुतज्ञानके अंदर तीनों कालसंबंधी पदार्थोंका जो भी वर्णन था वह भी भगवान जिनेंद्रने गणधरोंके लिये व्यक्त कर बतलाया ॥ ६० ॥ महामिष्ट भगवान जिनेंद्रके मुखसे निकले हुए वचनरूपी धर्म्मामृतका पानकर समस्त गण—संघने उस समय अपनेको जन्मरूपी दाहसे रहित समझा एवं वे अपने को परमसुखी अनुभव करने लगे ॥ ६१ ॥ भगवान जिनेंद्रका उपदेश सुनकर बहुतसे धर्मात्मा भव्य जीवोंको संसारसे उदासीनता हो गई । उन्होंने धर्मसंबंधी कार्योंके अंदर मन लगाया एवं वैराग्यरूपी वज्रसे मोहरूपी पर्वतके खंड खंड कर पवित्र तप धारण करलिया ॥६२॥ भगवान जिनेंद्रके मुखसे धर्मोपदेश पाकर बहुतसे पशु और मनुष्योंने श्रावकव्रत अर्थात् अणुव्रतोंको धारण कर लिया एवं तप दान पूजन आदि पवित्र कार्योंमें उन्होंने अपने भावोंको दृढ़ किया ॥ ६३ ॥ बहुतसे देवोंने काल लब्धिकी कृपासे भगवान जिनेंद्रके मुखसे धर्मामृतका पानकर मिथ्यादर्शनरूपी विषको वमन करदिया और सम्यग्दर्शनको धारण कर लिया ॥ ६४ ॥ गणधरोंमें प्रधान गणधर विशाखने भी समस्त भव्य जीवोंका उपकार हो, मोक्ष मार्गकी प्राप्ति हो एवं अहिंसारूपी धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति हो, इस अभिलाशासे अपनी निरुपम प्रखर बुद्धिसे भगवान जिनेंद्रके मुखसे तत्त्वरूप प्राप्त कर उसे करोड़ों नयोंकी भंगियोंके साथ द्वादशांग महा समुद्ररूप रचदिया ॥ ६४—६५ ॥ भगवानकी दिव्यध्वनिका खिरना जिस समय समाप्त हुआ और

हिं साधर्मतीर्थप्रवृत्तये ॥ ६५ ॥ जिनेंद्रावर्थमादाय द्वादशागमहोदधेः। चकार रचना नानानयभंगार्थकोटिभिः ॥ ६६ ॥ प्रशातेऽथ जनक्षोभे दिव्यभाषोपसंहृते धर्मतीर्थविहारे सद्मनाः सौधर्मकल्पराट् ॥ ६७ ॥ प्रणम्य तत्क्रमाब्जौ प्रवांछन्विश्वहितं मुदा। प्रारेभे तत्स्तवनं कर्तुं धर्मोपदेशजैर्गुणे ॥ ६८ ॥ त्वं देव ! त्रिजगद्भर्ता भव्यबंधुस्त्वमेव हि। मोहाज्ञानतमो यात्यद्य क्षय तद्वचोंऽशुभि ॥ ६६ ॥ भवाब्धौ दुस्तरे भव्यांस्त्वं सुतारयितुं क्षम.। धर्मोपदेशपोतेन नेतुं च मुक्तिपत्तने ॥ १०० ॥ ताराकदंगिवार्ध्यूर्मिखप्रदेशशरीरिणा। संख्या न ज्ञायते यद्वत्तथा हो गुणवारिधे.

मनुष्योंका कोलाहल शांत होगया उससमय धर्मतीर्थोंमें भगवान जिनेंद्रका विहार हो, इस पवित्र अभिलाषाको हृदयमें धारण कर समस्त प्राणियोंके हितके इच्छुक सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने बड़े आनंदसे भगवान जिनेंद्रके दोनों चरण कमलोंको प्रणाम किया एवं धर्मोपदेशसे जायमान जो गुण हैं उन्हें लक्ष्यकर वह भगवान जिनेंद्रकी इसप्रकार स्तुति करने लगा—

हे भगवान ! आपके वचनरूपी किरणोंसे मोह और अज्ञानरूपी अंधकार आज सर्वथा नष्ट हो रहा है जिससे भव्य जीवोंको वास्तविक मार्गका ज्ञान हो रहा है इस लिये तीनों लोकके भरण पोषण करनेवाले आपही हैं और आपही समस्त भव्य जीवोंके वंधुस्वरूप हैं ॥ ६५—६६ ॥ गंभीर समुद्रके अंदर पड़नेवाले जीव जिसप्रकार जहाजके सहारे अपने अभीष्ट स्थानपर पहुंच जाते हैं उसीप्रकार हे स्वामी ! यह संसाररूपी समुद्र दुस्तर है—जल्दी तिरा नहीं जासकता, इसमें गोता मारते हुए प्राणियोंको धर्मोपदेशरूपी जहाजकी सहायतासे आप ही तार सकते हो एवं उन प्राणियोंकी अभिलाषा मोक्षरूपी पत्तनको प्राप्त करनेकी है सो उस पत्तनमें आपही उन्हें पहुंचा सकते हो, अन्य किसीकी इससमय वैसी सामर्थ नहीं ॥ १०० ॥ संसारमें तारागण, कंदमूलके अंदर रहनेवाले जीव, समुद्रकी लहरें, आकाशके प्रदेश और एकेन्द्रिय आदि जीवोंकी गणना नहीं की जा सकती—कितना भी कोई प्रयत्न क्यों न करे उन्हें गिन नहीं सकता उसी प्रकार हे भगवान ! आप गुणसमुद्र हैं इसलिये आपके अगणित गुणोंको भी गिना नहीं जा सकता अर्थात् आप अनंते गुणोंके पिंड स्वरूप हैं ॥ १०१ ॥ इसलिये हे नाथ ! आपके गुण अनंते हैं और हमारे सरीखे हीनशक्तिके पुरुष उन्हें वर्णन करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते अतः आपके गुणोंके वर्णन करनेके लिये हम किसी प्रकारका परिश्रम नही उठाना चाहते ॥ १०१—१०२ ॥ हे तीनों लोकके स्वामी भगवन ! जिसप्रकार सूर्यके उग्रतापसे मुरझाये हुये धान्योंके बृक्षोंको जलके सेकसे सीचा जाता है उस समय वे उत्तम फलोंको प्रदान करते हैं उसीप्रकार ये भव्यरूपी धान्य पापके आताप आदिसे मुरझाये

॥ १०१ ॥ अतो नाथ ! गुणास्तेऽनंता अशक्यां किलोदितुं । ज्ञात्वेति न कृतोऽस्माभिः श्रमस्त्वद्गुणभाषणे ॥ १०२ ॥ लोकेश ! भव्यसस्यानां पापातापाद्विशोषिणां । धर्मामृतप्रसेकेन विधेहि फलमूर्जितं ॥ १०३ ॥ निर्धूय मोहसेना हि विश्वानर्थविधायिनीं । सन्मार्गमुपदेष्टुं ते कालोऽय समुपस्थित. ॥ १०४ ॥ किमत्र बहुनोक्तेन जनानां शरणं भव । त्वमेव नापरो लोके इत्युक्त्वाऽस्थात्सुराधिप ॥ १०५ ॥ शक्रप्रार्थनयेत्याशु देवो विश्वहितोद्यत । भव्याब्जानुग्रहं कर्तुमुत्तस्थे धर्मभानुमान् ॥१०६॥ सार्धं विश्वमहाभूत्या धर्मचक्रपुरस्सरं प्रचक्रे विजयोद्योगं सर्वेवैश्च धर्म राट् ॥ १० ॥ पटहादिमहाध्वानैर्जयनदादिसत्स्वनैः । पूरयतो दिशो देवा. प्रचेलु प्रमुदा तदा ॥ १०८ ॥ सुभिक्षता तदास्थानात्परित. शतयो-

हुये हैं—पापकी तीव्रतासे इनकी आत्मा शक्तिहीन होचुकी है आप धर्मामृत प्रदान कर इन्हें सबल बनावें जिससे ये उत्तम फलों को प्राप्त करलें ॥ १०३ ॥ हे प्रभो ! समस्त प्रकारके अनर्थों को करनेवाली बलवान् शत्रु मोहनीय कर्मकी सेनाको आपने सर्वथा नष्ट कर दिया है और सन्मार्गके उपदेश करनेकी आपको परिपूर्ण योग्यता प्रगट होगई है । अब यह समय उस वास्तविक मार्गके उपदेशका आकर उपस्थित हो गया —आप भव्यजीवोंको धर्मोपदेश प्रदान करें । विशेष कहना व्यर्थ है । प्रभो ! प्रार्थना यही है कि भव्यजीवों के आप शरण बनें—उन्हें वास्तविक मार्गका उपदेश प्रदान करें क्योंकि इस संसारमें भव्यजीवों के शरण आप ही हैं—आपके सिवाय और कोई शरण नहीं हो सकता । बस ? इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर वह धर्मात्मा सौधम स्वर्गका इन्द्र अपनी जगहपर जाकर बैठ गया ॥ १०४—१०५ ॥

जिसप्रकार सूर्य खिलानारूप कमलोंका उपकार करनेवाला है और समस्त जीवोंके हितमें उद्यत रहता है अर्थात् सूर्यके उदय कालमें ही समस्त प्राणी अपने अपने हितकारी कार्योंमें उद्यत होते हैं उसी प्रकार धर्मके सूर्य स्वरूप वे भगवान जिनेंद्र समस्त जीवोंके हितमें उद्यत हो समस्त भव्यजीव रूपी कमलों के उपकारकी अभिलाषासे इंद्रको प्रार्थनाके अनुसार शीघ्र ही अपने आसनसे उठ खडे हुए एवं चक्रवर्ती जिस प्रकार विशाल विभूति और सेना आदिके साथ दिग्विजय करनेके लिये जाता है और चक्र उसकेआगे आगे चलता है उसी प्रकार धर्मके चक्रवर्ती वे भगवान जिनेंद्र मुनि आर्यिका आदिका संघ और अनेक देवोंके साथ विशाल विभूतिसे मंडित हो दिग्विजय करनेकेलिए अर्थात् समस्त आर्यक्षेत्रमें धर्मोपदेश करनेकेलिए चल दिये एवं धर्मचक्र उनके आगे आगे चलने लगा ॥ १०६-१०७॥ उस समय भगवानके प्रस्थान करनेपर पटह आदि अगणित वाजोंके उन्नत शब्दोंसे एवं "हे देव ! जीवें नादें विरदें" इत्यादि मनोहर शब्दोंसे समस्त

जनं। आकाशगमनं चासीद्विभोरंतेऽगिना वधः ॥ १०६ ॥ व्याघ्रादिक्रूरसत्त्वैर्न स्याद् भुक्तिर्नातिशर्मण । नोपसर्गश्चतुर्वक्त्रो दृश्यते दिक्षु सज्जनैः स्वामित्व सर्वविद्याना चाच्छायत्व पूजापतेः। अस्पंदो नेत्रयोरस्य चावृद्धिर्नखकेशयोः ॥ १११ ॥ घातिक्षयभवा एते दशैवातिशया प्रभोः। निरौपम्या भवंत्येव शेषा देवकृता इति ॥ ११२ ॥ अर्धमागधिकाकाराभाषा विश्वार्थसूचिनी। विभोरासी द्विविका हि पशुदेवनृणा परा ॥ ११३ ॥ देहिना परमा मैत्री जातिहेतुविरोधिना। सर्वर्तुफलपुष्पाढ्या नभूरुस्तरुजातय ॥ ११४ ॥ आदर्शमंडलाकारा मही रत्नमयी व्यभात्। तामवेति मरुद् वातकुमारकृत्सुशीतल ॥ ११५ ॥ जिनातेऽभूच्च सर्वेषा परमानदमञ्जसा। तृणकीटकसंत्यक्त मरुत् कुर्यान्महीतल॥ ११६ ॥ शतयोजनपर्यंत

आकाशको व्याप्त करते हुए देवगण अत्यंत आनंदित हो उनके साथ साथ चलने लगे ॥ १०८ ॥ भगवान अर्हंतके चौंतीस ३४ अतिशय माने हैं उनमें दश जन्मके अतिशय हैं उनका वर्णन तो उनके जन्मके समय कह दिया गया।। केवल ज्ञानके समय दश अतिशय होते हैं और वे इस प्रकार हैं—

जिस स्थानपर भगवान जिनेंद्रका समवसरण है उसके चारों ओर एकसौ योजन पर्यंत सुभिक्षता का होना १ आकशामें गमन २ व्याघ्र आदि क्रूर जीवोंके द्वारा अन्य निर्बल प्राणियोंका न मारा जाना अर्थात् अदयाका अभाव ३ अलौकिक कल्याणके धारक केवलीके भोजनका न होना अर्थात् कवलाहार रहितपना ४ उपसर्गका अभाव ५ चारों दिशाओंमें चार मुखोंका दीखना ६ समस्त विद्याओंका स्वामीपना ७ छायासे रहित शरीरका होना ८ नेत्रोंके पलकोंका न लगना ६ एवं नख केशोंका न बढना १० इसप्रकार ज्ञानावरण आदि चार घातिया कर्मोंके नाशसे ये दश अतिशय केवली भगवानके प्रगट होते हैं जो कि निरौपम्य होते हैं उनकी उपमा नहीं दी जा सकती। इनके सिवाय शेष चौदह अतिशय देव कृत होते हैं और वे इसप्रकार हैं—

भगवानकी भाषा अर्धमागधी थी जो कि पशु देव और मनुष्योंको भिन्न भिन्नरूपसे समस्त अर्थों को सूचित करती थी १ स्वभावसे ही वध्यघातक नामका विरोध रखनेवाले सर्प नौला आदि जीवोंकी परस्पर मित्रता थी २ वृक्षोंकी पंक्तियां समस्त ऋतुओंके फल फूलोंसे युक्त थीं ३ दर्पणके मध्यभागके समान अत्यंत निर्मल मणिमयी पृथिवी थी ४ वातकुमार देवोंके द्वारा शीतल मंद सुगंध पवन वहती थी ५ भगवान जिनेंद्रके समीपमें रहनेवाले समस्त जीवोंको परमानंद था ६ पवनकुमार देवोंने जमीन को तृण कंटक आदिसे रहित कर दिया था ७ स्तनितकुमार जातिके भवनवासी देवोंने भगवानके समीप की सौ योजन प्रमाण पृथिवी सुगंधित जलकी वर्षासे सुगंधि कर रक्खी थी ८ चलते समय भगवान

विभोर्निकटभूतले । गंधोदकमयी वृष्टिं विधत्ते स्तनितामरः ॥ ११७ ॥ हैमाब्जानि पदन्यासे संचारयंति नाकिनः । शाल्यादिसर्वधान्यौघा फल भारनता बभुः ॥ ११८ ॥ जिनेन्द्रनिकटे खेन सार्धं स्युर्निर्मला दिशः । देवा इन्द्राज्ञया कुर्यु राह्वानं परस्परं ॥ ११९ ॥ धर्मचक्रं सहस्रार रत्नरश्म्यात्तदिक्तटं । व्रजत्येव प्रभोरग्रे हतध्वांतं सुरैर्वृत १२० ॥ आदर्शाद्या विभात्यष्टमंगलद्रव्यसंपद. । एतेऽत्रातिशया भर्तुश्चतुर्दश सुरोद्भवाः ॥ १२१ ॥ शोकहंता स्फुरद्रत्नमयोऽशोकतरुर्व्यभात् । कल्पाघ्रिपजपुष्पौघैः पुष्पवृष्टिर्व्यधु. सुराः ॥ १२२ ॥ गभीरो मधुरो दिव्यध्वनिर्विश्वहितंकरः । अज्ञानध्वांतहंतास्य भवेद्विश्वार्थदीपकः ॥ १२३ ॥ उत्क्षिपंति सुरा यस्य चतुःषष्टिप्रकीर्णकान् । नानामणिमयं हैमं दिव्यं सिंहासनं विभोः ॥ १२४ ॥ भामडल विभोरेजे भानुकोट्यधिकप्रभं । सार्द्धं द्वादशकोटीवाद्यैरभूद्दुंदुभिध्वनिः ॥१२५॥ इंदुत्रयसमं छत्रत्रय मुक्तास्रगंकित । इत्यष्टप्रातिहार्याणि कुर्वतेऽस्य परा श्रिय ॥ १२६ ॥ अनंतं केवलज्ञानं दर्शनं वीर्यमूर्जितं । सुख चास्य गुणा ख्याताः षट्चत्वारिंशदित्यहो ॥ १२७ ॥ विजहार महीं

जिनेंद्रके चरण कमलों तले देवगण सुवर्णमयी कमलोंकी रचना करते चले जाते थे ॥ ९ ॥ शालि आदि धान्योंके वृक्ष फलोंके भारसे नम्रीभूत थे १० भगवान जिनेन्द्रके समीपमें आकाश और दिशायें निर्मल थीं ११ इन्द्रकी आज्ञासे देवगण आपसमें एक दूसरेको बुलाते थे १२ भगवानके आगे २ धर्मचक्र चलता था जोकि हजार अरोंका धारक था अपनी देदीप्यमान किरणोंसे समस्त दिशाओंको चम चमाता था अंधकारका नाशक था और चारों ओरसे देवोंसे वेष्टित था १३ तथा भगवानके चारो ओर दर्पण कलश झारी आदि आठ मंगलीक द्रव्य शोभायमान थे १४ इसप्रकार भगवानके ये चौदह अतिशय देवकृत थे ॥१०९-१२१ ॥ भगवान जिनेन्द्रके समीपमें आठ प्रातिहार्योंकी भी अपूर्व शोभा थी और वे प्रातिहार्य इस प्रकार थे—

भगवान जिनेन्द्रके समीपमें अशोकवृक्ष विद्यमान था जोकि शोकका नाश करनेवाला था एवं देदीप्यमान रत्नमयी था १ कल्पवृक्षोंसे जायमान पुष्पोंके समूहोंसे देवगण पुष्पवृष्टि करते थे २ भगवानकी दिव्य ध्वनि खिरती थी जोकि मेघकी गर्जनाके समान गंभीर थी, मधुर थी, समस्त लोकका हित करनेवाली थी, अज्ञानरूप अंधकारको नाश करनेवाली थी एवं समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेमें दीपकके समान थी ३ देवगण भगवानके ऊपर चौसठ चमर ढोरते थे ४ प्रभूका भांति भांतिको मणियोंसे जड़ा हुआ सुवर्णमयी दिव्य सिंहासन था ५ भगवानके पीछे भामंडल विद्यमान था जो कि करोड़ सूर्योंकी प्रभासे अधिक प्रभाका धारक था ६ साढ़े बारह करोड़ बाजोंके साथ साथ दुंदुभीकी ध्वनि होती थी ७ तथा शिरपर तीन छत्र थे जो कि तीन चंद्रमा सरीखे जान पड़ते थे और मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान थे ८ इसप्रकार ये आठ प्रातिहार्य भगवान जिनेन्द्रकी अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १२२—१२६ ॥ भगवानके

कृत्स्ना भव्याना प्राणयन् जिन । दिव्यैर्वचोऽमृतै. कुर्वन् प्रीति च जलदोपम ॥१२८॥ मिथ्यामोहाधकारादीन् - विघटय्य वचोऽशुभि ।। जगदुद्योतयामास जिनार्कस्तत्त्वमजसा । विश्वद्धिभूपिता सर्वेविशाखाद्या गणाधिपा. । प्रणमत्यस्य पादाब्जौ ह्यष्टाविंशतिसख्यका । पूर्वधारिण एवास्य सार्ध पचशतप्रमा. । शिक्षकाश्च विलैकोनत्रिशत्सहस्रशसिता । अवधिज्ञानिनोऽस्व स्युर्द्वाविंशतिशतप्रमा नोवतः केवलज्ञाना लोकालोकविलोकिन. । वादिनो हतमिथ्यात्वाश्चतुर्दशशतप्रभा । भवत्येकोनत्रिशच्छतसख्या विक्रियर्द्धय ॥ १३३ ॥ (२६००) कुर्वंत्यस्यपरा भक्ति मन·पर्ययभूषिता. । सार्धं सप्तदशैव स्यु. शतानि सूक्ष्मदर्शिन । १३४ । (१७५०) चत्वारिंशत्सहस्राणि सर्वं पिंडीकृता

अनंतज्ञान—केवलज्ञान १ अनंतदर्शन—केवलदर्शन २ अनंतवीर्य ३ और अनंतसुख ४ ये चार अनंत चतुष्टय शोभायमान थे इस प्रकार चौतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य और चार अनंत चतुष्टय इसप्रकार छियालीस गुणोंके धारक वे भगवान मल्लिनाथ अत्यंत शोभायमान जान पड़ते थे।

वे भगवान जिनेन्द्र समस्त भव्य जीवोंको संतोष उपजाते एवं मेघके समान अपने दिव्य वचनरूपी अमृतोंसे सबोंको आनंदित करते समस्त पृथ्वीपर विहार करने लगे ॥ १२७—१२८ ॥ जिसप्रकार सूर्य अपनी उग्र किरणोंसे अंधकारको नष्ट करता है और समस्त जगतको प्रकाशमान करता है उसीप्रकार वे भगवान जिनेन्द्ररूपी सूर्य भी अपने वचनरूपी किरणोंसे मिथ्या मोहरूपी अंधकारका सर्वथा नाशकर संसारमें तत्वोंके स्वरूपका प्रकाश करने लगे ॥ १२६ ॥ भगवान मल्लिनाथ के विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे जो कि समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे शोभायमान थे और भगवानके चरण कमलोंको प्रणाम करते थे ॥ १३० ॥ भगवान जिनेन्द्रके साथमें ग्यारह अंग चौदह पूर्वके धारी साढ़े पांचसौ ५५० मुनि थे। शिक्षक जातिके मुनि उनतीसहजार थे। जो मुनि अवधिज्ञानके धारक थे वे बाईस सौ २२०० प्रमाण थे। जितने प्रमाण ये अवधिज्ञानी थे उतने ही प्रमाण अर्थात् बावीस सौ ही केवलज्ञानी मुनि थे जोकि अपने केवलज्ञानसे समस्त लोक अलोकको स्पष्ट रूपसे देखते थे। मिथ्यात्वको सर्वथा नष्ट करनेवाले परमसम्यग्दृष्टि वादी मुनि चौदहसौ १४०० थे। विक्रिया ऋद्धिके धारक उनतीस सौ २६०० थे। मनःपर्ययज्ञानी मुनि भगवान जिनेन्द्रके समवसरणमें साढ़े सत्रहसौ १७५० थे जो कि भगवान जिनेन्द्रके परम भक्त थे और सूक्ष्मरूपसे पदार्थोंके देखनेवाले थे। इस प्रकार ये समस्त विद्वान मुनि मिलकर चालीस हजार ४००००

विद्‌ । यतयो हिहताशीना भवंति भूतये भुवि ॥ १३५ ॥ (४००००) आर्यिका वंधुषेणाद्या दृष्टिमूलगुणान्विता । नमतिपचपंचाशत्सहस्रण्यस्य सत्क्रमौ ॥ १३६ ॥ (५५०००) लक्षकं १००००० श्रावका. प्रोक्ता श्राविकास्त्रिगुणा विभोः। दृग्व्रतालंकृता दानपूजाभक्तिपरायणा' ॥ १३७ ॥ (३०००००) देव देव्यस्त्वसख्याता' संख्याताः पशवोऽखिला । दृक्श्रावकव्रतोपेताः सेवंतेऽस्य क्रमाम्बुजौ ॥ १३८ ॥ एवं द्वादशभिर्देवो गणै रभिपरिष्कृत । नयन् मुक्तिपथं भव्यान् धर्ममार्ग प्रकाशयन् ॥ १३९ ॥ विहरन्नार्यखंडस्थान् सर्वान् देशपुरादिकान्। सहस्रपचपचाशद्वर्षाकाल' स केवली ॥ १४० ॥ द्वात्रिंशद्दिवसैरूनं संवत्सरशतेन च । अंते मासाऽवशेषायु सम्मेदाचलमागत' ॥ १४१ ॥ स्वध्वनिं चोपसंहृत्य स्वयोगं च स निष्क्रिय' । प्रतिमायोगमाधायघातिक्षयाय मुक्तये ॥ १४२ ॥ संयतै सह तत्रैव सहस्रपंचसंख्यकैः । ध्यानेन तृतीयेनाथ्याधावदायु परिक्षय'

प्रमाण थे । ये मुनिगण मोहांधकारके सर्वथा नाश करनेवाले थे और संसारकी शोभा थे ॥१३५॥

भगवान जिनेन्द्रकी सभामें वंधुषेणा आर्यिकाको आदि लेकर पचपन हजार ५५००० आयिकायें थीं जो कि सम्यग्दृष्टि और मूलगुणोंकीधारण करनेवाली थीं और भगवान जिनेन्द्रके चरण कमलोंको प्रणाम करनेवाली थीं ॥ १३६ ॥ एकलाख १००००० श्रावक थे और तीन लाख श्राविकायें थीं जो कि सम्यग्दृष्टि थे, श्रावकोंके व्रतोंके धारक थे और भगवान जिनेन्द्रकी पूजा और भक्तिमें सदा तत्पर थे ॥ १३७ ॥ तथा भगवान मल्लिनाथकी सभामें देव और उनकी देवियां असंख्याते थे, संख्याते पशु थे। ये समस्त सम्यग्दृष्टि और श्रावकोंके व्रतोंसे युक्त थे और भगवान जिनेन्द्रके चरणोंको पूजा करनेवाले थे ॥ १३८ ॥ इस रूपसे वे भगवान मल्लिनाथ केवली उपर्युक्त वारह गणोंसे परिवेष्टित थे, भव्योंको मोक्ष स्थानमें ले जानेवाले थे, वास्तविक धर्मका मार्ग प्रकाशन करते थे इस प्रकार आर्यखंडमें रहनेवाले समस्त देश और पुर आदिमें उन्होंने छत्तीस दिन सौ वर्ष कम पचपन हजारवर्ष पर्यंत विहार किया था। जबआयु के अंतमें केवल एक मासका समय वाकी रह गया उस समय वे भगवान जिनेन्द्र सम्मेद शिखर पहाड़पर जाकर विराजमान होगये ॥ १४१ ॥ वहांपर आकर भगवान जिनेन्द्रने अपनी दिव्य ध्वनि और योगको संकुचित कर दिया, निष्क्रिय हो गये एवं शेष चार अघातिया कर्म अर्थात् वेदनीय आयु नाम और गोत्र इन चारों कर्मोंको नष्ट करनेके लिये प्रतिमायोग धारण कर लिया। तथा जब तक आयुका अंत न हुआ तब तक उसी स्थानपर पांच हजार मुनियोंके साथ अपना आत्मामें सुक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक

॥ १४३ ॥ चतुर्थध्यानयोगेन मणिद्वीपसमेन स । शेषाघातीनि कर्माणि प्रहत्यैरण्डबीजवत् ॥ १४४ ॥ गुणस्थानातिम मुक्त्वा शरीरत्रयनाशतः लोकाग्रशिखरं सारं जगाम ज्ञानमूर्त्तिमान् ॥ १४५ ॥ फाल्गुनोज्वलपंचम्या पूर्वरात्रौ जिनाग्रणी. । भरण्याख्ये सुनक्षत्रे चोर्ध्वगनिस्वभावत ॥ १४६ ॥ अनन्तकालमासाद्य सम्यक्त्वादिगुणाष्टकं । सिद्धो भूत्वा स तत्रास्थाद् भुंजानोऽप्यंतवर्जितं ॥ १४७ ॥ निरौपम्यं सुख दिव्यं त्वक्षातीत निजात्मजं अक्षयं परम ह्यक्षातीत बाधातिग महत् ॥ १४८ ॥ तस्य निर्वाणपूजायै तदा जग्मुर्दिवौकस । सेंद्रा हि सपरीवारास्तद्भक्तिकरयोद्यता ॥ १४९ ॥ मत्वातिपावनं देह विभोर्निर्वाणसाधनं । कृत्वा महोत्सवेनाशु परार्द्धि शिविकार्पित ॥ १५० ॥ स्वर्गजै परमैद्रव्यैर्महासुगंधिकारिभिः । अभ्यर्च्य परया भक्त्या प्रणेमुः शिरसामरा ॥ १५१ ॥ अग्नीद्रमुकुटोद्भूतवह्निना तद्वपुस्तदा । पर्यायातरमेवाप सुगंधीकृतदिक्चयं ॥ १५२ ॥

तीसरे शुक्लध्यानको धारणाकर विराजमान हो गये ॥ १४२—१४३ ॥ वहां विराजमान होकर मणिमयोदीपक के समान व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामक चौथे शुक्लध्यानसे भगवान जिनेंद्रने चारों अघातिया कर्मों का सर्वथा नाश कर दिया । अयोग केवली नामके चौदहवें गुणस्थानमें उन्होंने औदारिक तैजस और कार्माण इन तीनों शरीरोंका सर्वथा नाश कर दिया एवं जिसप्रकार एरंडके बीजका स्वभाव बंधके नष्ट हो जानेपर ऊपरको ही जानेका है उसीप्रकार समस्त कर्मोंसे रहित आत्माका भी ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेसे वे ज्ञानमूर्ति भगवान जिनेन्द्र फागुन सुदी पंचमीके दिन जब कि भरणी नामका शुभ नक्षत्र था पूर्व रात्रिके समय लोकके अग्रभागमें जाकर विराजमान हो गये ॥१४४-१४६॥ सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंको प्राप्त कर और सिद्ध होकर अनन्तकाल पर्यन्त वहांपर विराज गये एवं उस अलौकिक सुखका अनुभव करने लगे जो कि अन्तरहित अनन्त है, उपमारहित है, दिव्य है, समस्त प्रकारके क्लेशोंसे रहित है, स्वाधीन है, विनाशरहित अविनाशी है, उत्कृष्ट है, इंद्रियोंसे जायमान नहीं है । समस्त प्रकारकी बाधाओंसे रहित है और महान् है ॥ १४७—१४८ ॥

जिससमय भगवान मुक्त हो गये देवोंको पता लग गया । भगवानकी भक्तिके करनेमें दत्तचित्त वे समस्त देव अपने इन्द्र और परिवारके देवोंके साथ शीघ्र ही उनकी निर्वाणभूमि सम्मेदाचल पर आगये । भगवान जिनेन्द्र उसी शरीरसे मोक्ष गये थे इसलिए उनका वह शरीर साक्षात् मोक्षका कारण होनेसे परम पवित्र था अतः देवोंने बड़ी भक्तिसे उनका शरीर अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान पालकीमें विराजमान कर दिया । महासुगंधित उत्तमोत्तम द्रव्योंसे उसे पूजा एवं अन्तमें देवोंने शिर झुकाकर बड़े विनयसे उसे

एवमस्त्वत्र नः शीघ्रमित्युक्त्वादाय भस्म तत्। स्वस्य भालेऽखिलागे च चक्रुस्तद्गतये सुरा. ॥ १५३ ॥ पुन: संभूय नाकेशा. त्रिधायानंदनाटकं। कृतकार्या अगु: स्वं स्वं स्थानं तद्गुणशसिनः ॥ १५४ ॥ इति सुकृतविपाकात्प्राप्य सौख्य परं यो नरसुरगतिजातं मल्लिनाथोऽनुभूत्वा। त्रिभुवनपतिसेव्यस्तीर्थराट् कर्म हत्वा निखिलचरणयोगै प्राप मुक्तिं स नोऽव्यात् ॥ १५५ ॥ यः प्राग्वैश्रवणाभिधो नृपवरो रत्नत्रयाख्यं व्रतं, कृत्वादाय च सयमं सुतपसा जातोऽहमिंद्रो महान्। दिव्यानुत्तरपचकेषु परमे सारे विमाने चतुर्थेऽतो मल्लिजिनोऽभवच्चिववधूभर्ता स वोऽस्तु श्रिये ॥१५६ ॥ यो मोहारिविधीन्निहत्य सुतपः खड्गेन बाल्येऽप्यहो प्राप्तो मुक्तिरमूमनतसुखदा श्रीमल्लिनाथो जिन. । तद्भूत्यै स मया स्तुतश्च

अग्निकुमार जातिके भवनवासी देवोंके मुकुटसे जायमान अग्निसे भगवा-नमस्कार किया॥ १४६—१५१ ॥ नका शरीर दूसरी पर्यायको प्राप्त हो गया अर्थात् भस्म हो गया। जिस समय वह दूसरी पर्यायको प्राप्त हो रहा था उस समय उसकी उत्कट सुगंधिसे समस्त दिशायें सुगंधित हो गई थीं। उनके शरीरकी जो भस्म हुई थी देवोंने यह कह कर कि "जिसप्रकार यह अवस्था भगवान मल्लिनाथकी हुई है उसी प्रकार हमारी भी हो" उसे भगवान मल्लिनाथके स्वरूपकी प्राप्तिकी अभिलाषासे अपने अपने मस्तक और समस्त शरीरसे लगा लिया पुनः समस्त इन्द्रोंने मिलकर आनन्द नाटक किया अन्तमें अपना समस्त कार्य समाप्त कर वे भगवान जिनेंद्रके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए अपने अपने स्थानोंपर चले गये॥ १५२-१५४ ॥

जिन मल्लिनाथ भगवानने पुण्यके तीव्र विपाकसे पहिले तो मनुष्य और देवगतिके अन्दर होनेवाले उत्तम सुखका सानन्द भोग किया। उसके बाद तीन लोकके इन्द्रोंद्वारा वन्दनीक परम पावन तीर्थ-कर पदवी प्राप्त की पश्चात् समस्त चारित्रको धारण कर ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष पद पाया वे श्रीमल्लिनाथ भगवान हमारी रक्षा करें ॥ १५५ ॥ जो भगवान मल्लिनाथ पहिले तो वैश्रवण नामके राजा हुए वहांपर रत्नत्रय नामका पवित्र व्रत आचरण:कर पीछे संयम ले उत्तम तपोंकी कृपासे दिव्य पांच अनुत्तर विमानोंमेंसे चौथे अपराजित नामके विमानमें महान ऋद्धिके धारक अहमिंद्र देव हुए फिर वहांसे चयकर मोक्षरूपी लक्ष्मीके भर्ता हुए वे भगवान मल्लिनाथ सदा तुम्हारा कल्याण करें ॥ १५६ ॥ बाल अवस्थामें ही जिन भगवान मल्लिनाथने उत्तम तपरूपी तीक्ष्ण खड्गसे मोह आदि समस्त कर्मोंका सर्वथा नाश कर अनंत सुख प्रदान करनेवाली मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया उन भगवान मल्लिनाथका इस मल्लिनाथपुराणमें जो मैंने स्तवन और विनय किया है वह उनकी

विनुतो ह्यं तच्चरित्रे सुद्द शीघ्रं मे कृपयाखिलान्निजगुणान् दद्यात्क्षयं कर्मणां ॥ १५७ ॥ सर्वे तीर्थकरास्त्रिलोकमहहिता सिद्धः शरीरातिगा, आचार्या सुविदोऽपरार्थनिपुणा दक्षा पराः पाठकाः। धीरा योगधराश्च घोरतपसो मोक्षोद्यता साधवः स्तुत्याः विश्वजनैर्मया च विनुता कुर्वंतु वो मंगल ॥ १५८ ॥ रहितनिखिलरागं धर्मसंवेगपूर्णं ह्यसमवरचरित्रं मल्लिनाथस्य यद्धि। सकलविमलकीर्तेः प्रादुरासीद्धरित्र्यां तदिह जयतु भव्यैर्यावदास्ते सुधर्मः ॥ १५९ ॥ स्वर्मोक्षैकनिबंधन व्यपहरं धर्मामृतैकार्णव विश्वानर्थनिवारकं सुखनिधिं भव्यौकचूडामणिं। अन्तातीतगुणाकरं सुपरम कर्मारिनाशाकरं वंदे तद्गुणसिद्धयेऽहमहनिशं मूर्ध्नात्र रत्नत्रयं ॥ १६० ॥ ये रत्नत्रयसद्विधिं बुधजना. कुर्वंति भक्त्या मुदा ते संप्राप्य सुखं

विभूतिकी प्राप्तिकी अभिलाषासे किया है। अब प्रार्थना यही है कि वे भगवान शीघ्र ही मुझे अपने समस्त गुणोंको प्रदान करें एवं उन गुणोंके विरोधी जितने भी कर्म हैं वे मेरे सर्वथा क्षीण हो जांय ॥ १५७ ॥ ग्रंथकार श्रीसकलकीर्ति भट्टारक अंत मंगलकी कामना करते हुए कहते हैं कि—

तीन लोकद्वारा पूज्य, समस्त तीर्थंकर शरीरके संबंधसे रहित अशरीरी सिद्ध, दूसरोंके प्रयोजन सिद्ध करनेवाले परम विद्वान आचार्य, शास्त्रोंके अर्थ निरूपण करनेमें चतुर और उत्कृष्ट उपाध्याय एवं धीर वीर, पूर्ण ध्यानके धरनेवाले घोर तपोंके तपनेवाले और मोक्ष प्राप्तिकेलिये सदा प्रयत्नशील साधुगण जिनकी कि समस्तलोक स्तुति और विनय करता है और मैंने भी इस ग्रन्थमें जिनकी स्तुति और विनय की है वे तुम्हारे मंगलके कर्ता हों, तुम्हें सर्व प्रकारसे मंगल प्रदान करें ॥ १५८ ॥ समस्त प्रकारके रागभावोंसे रहित, धर्मका स्वरूप और संवेग भावनासे परिपूर्ण अनुपम और उत्कृष्ट जो भगवान मल्लिनाथका चरित्र मुझ भट्टारक सकलकीर्तिके मुखसे इस पृथिवीपर प्रगट हुआ है वह जबतक संसारमें श्रेष्ठधर्म-जैन धर्मकी सत्ता विद्यमान रहे तबतक भव्य जीवोंके साथ जयवंता रहे ॥ १५९ ॥

इस संसारमें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप जो रत्नत्रय है वह स्वर्ग और मोक्षका प्रधान कारण है, समस्त पापोंको सर्वथा नाश करनेवाला है, धर्मरूपी अमृतका एक अद्वितीय समुद्र है, संसारके समस्त अनर्थोंका निवारण करनेवाला है, समस्त सुखका निधि है, भव्य लोगोंके लिये मस्तकपर धारण करनेके लिए एक अद्वितीय चूडामणि है, अनन्त गुणोंका आकर है और समस्त कर्मोंका नाश करनेवाला है वह रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो और उसके फलस्वरूप सारे गुण मेरे अन्दर आकर प्रगट हों इस अभिलाषासे

नृदेवगतिजं त्यक्तोपम तत्फलात्। हत्वा कर्मचयं महोग्रतपसा श्रीमल्लितीर्थेशवल्लभाचां त्रिजगज्जनैः शिवगतिं सयाति सिद्धैर्भृता ॥ १६१
असमगुणकरडो वदितो विश्वनाथैर्भवभुजगसुमत्रो दिव्यरत्नत्रयोऽस्तु। सकलदुरितहान्यै पूर्णरत्नत्रयाय मम परमसुमत्यै वदित. सस्तुतश्
॥ १६२ ॥ अस्य मल्लिचरित्रस्य सारा श्लोका भव त्यपि। सार्धं ह्यष्टशते सर्वेश्चतु सप्ततिसम्मिता •॥ १६३ ॥

से उस रत्नत्रयको रात दिन मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥ १६० ॥ इस पुराणके अन्दर जो रत्नत्रय
व्रतकी विधि बतलाई गई है उस उत्तम विधिको जो विद्वान महानुभाव भक्तिपूर्वक करते हैं वे उसके फल
स्वरूप मनुष्य देवलोक सम्बन्धी अनुपम सुखको प्राप्त करते हैं। उग्र तपसे समस्त कर्मोंको खिपाकर भग
वान मल्लिनाथके समान तीनों लोकके जीवोंसे पूजित होते हैं पश्चात् सिद्धोंसे चारों ओरसे भरी हुई मोक्ष
गतिको प्राप्त करते हैं ॥ १६१ ॥ संसारमे यह दिव्य रत्नत्रय असाधारण गुणोंका पिटारा है, तीनों लोकके
नाथोंसे वन्दनीक है, संसाररूपी महाभयंकर भुजंगको वश करनेवाला उत्तम मन्त्र है, उस परम पावन
रत्नत्रयकी मैंने जो इस ग्रंथमें वंदना और स्तुति की है वहसमस्त पापकर्मोंके नाशके लिये, पूर्ण रत्नत्रयकी
प्राप्तिके लिये और मुझे परम सुमतिकी प्राप्ति हो इस अभिलाषासे की है इसलिये मेरी यह सविनय प्रार्थना
है कि रत्नत्रयकी स्तुति और वन्दनासे मेरे समस्त दुष्कर्मोंका सर्वथा नाश हो। मुझे पूर्ण रत्नत्रयका लाभ हो
और मुझे परम सुमतिकी प्राप्ति हो ॥ १६२ ॥

इस मल्लिनाथ पुराणके अन्दर समस्त श्लोक आठसौ चौहत्तर हैं जो कि भगवान मल्लिनाथका चरित्र
वर्णन करनेके कारण सारभूत हैं ॥ १६३ ॥

इति श्रीमल्लिनाथपुराणे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते मल्लिनाथधर्मोपदेशनिर्वाणगमनवर्णनो नाम सप्तम परिच्छेद, ॥ ७ ॥

इसप्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी प० गजाधरलालजी न्यायतीर्थविरचित हिंदी वचनिकामें भगवान मल्लिनाथका धर्मोपदेश और निर्वाण गमन वर्णन करनेवाला सातवां परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ७ ॥